Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Kisaan Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत कृषक भारती

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

गौरवपूर्ण प्रकाशन-द्वितीय दशक की ओर अग्रसर

ISSN-2582-5976

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-20 अंक-07 | ग्वालियर, अक्टूबर -2025 | मूल्य 30 रुपए

जैविक खेती से बढ़ रहा किसानों का आत्मविश्वास

छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचलों में कई किसान जैविक खेती अपनाकर प्रेरणा बन रहे हैं। सक्ति जिला के ग्राम चिस्दा के कृषक बाबूलाल राकेश एक एकड़ क्षेत्र में बैंगन की सफल जैविक खेती कर रहे हैं। वहीं महिला किसान श्रीमती सुशीला गबेल अपने गृह बाड़ी में लौकी, कुंदरु और आम की जैविक खेती कर आसपास के किसानों के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं। इन प्रयासों से न केवल किसानों की आय बढ़ रही है, बल्कि समाज में जैविक उत्पादों के प्रति विश्वास भी मजबूत हो रहा है।

मध्यप्रदेशः धान उत्पादक किसानों को प्रोत्साहन राशि का अंतरण कार्यक्रम

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने बालाघाट के कटंगी में धान उत्पादक किसानों को प्रोत्साहन राशि अंतरण कार्यक्रम में हितग्राहियों को हितलाभ वितरित किया।

शुभ लाभ

जिस प्रकार हर-द्वार एवं हर सोपान पर दीप झिलमिलाते हैं, वैसे ही जीवन के हर आयाम एवं हर मोड़ पर आपके लिए खुशियां, आरोग्य, समृद्धि, भाग्य, यश, वैभव झिलमिलाते रहें ऐसी हमारी मंगल कामना है।

दीप प्रकाशोत्सव पर्व की सभी पाठकगणों को

हार्दिक शुभकामनाएं

श्री गणेशाय नमः
श्री सॉवलिया सेठ
किसान कृषि सेवा केन्द्र
Gmail
Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com
7692967419
9109726855
हमारी सेवाएँ:-
सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौंजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौप, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फुलो के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलो के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल ग्रेडर, कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।
कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते है।
उन्नत किस्म के नर्सरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।
स्थान- पुराना टॉकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मनासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110

कृषि दर्शन®
खेत-खलिहान का राजा
1988
थ्रेशर 35HP हापर मॉडल
हडम्बा कटर थ्रेशर
ऑटोफीडिंग थ्रेशर
मक्का थ्रेशर
मिनी कम्बाईन थ्रेशर
रेज बेड सिड ड्रील
स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल
मोटर लिफ्टर
सुदर्शन इण्डस्ट्रीज
विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882
वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

एक-एक दाना मोती जैसा क्वालिटी के धागे में पिरोया हुआ

एच.आई.-1650

वसुन्धरा सीड्स (TM)

प्रस्तुत करते हैं प्रमाणित (आधार-F/S)
बीजों की विशाल श्रृंखला

गेहूँ की सबसे नवीनतम किस्म
एच.आई.-1650 (पूसा ओजस्वी)

विशेषताएँ
- कम से अधिक सिंचाई में आने वाली किस्म (3 से 5 सिंचाई)।
- बीज दर काफी कम (लगभग 40 किलो/एकड़)
- 115-120 दिन में जल्दी आने वाली किस्म।
- कलर अच्छा होने से अधिक बाजार भाव। चपाती के लिए सर्वश्रेष्ठ किस्म।
- उत्पादन क्षमता अधिकतम (32-34 क्विंटल/एकड़) या 85 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक बम्पर उत्पादन देने वाली किस्म।

अधिक जानकारी के लिए
9301606161 पर hi मैसेज करें और सर्म्पूण जानकारी का लिंक प्राप्त करें।

गेहूँ की शरबती एवं शरबती जैसी किस्में

कम सिंचाई में उच्च उत्पादन क्षमता के साथ
सी.-306, एच.आई.-1655 (हर्षा), राज-4037
एच.आई.-1544 (पूर्णा), एच.आई.-1634 (पूसा अहिल्या), जी.डब्ल्यू.-513
गेहूँ की उच्च उत्पादन देने वाली लोकप्रिय किस्में
लोक-1, जी.डब्ल्यू.-322

गेहूँ की कठिया (ड्यूरम) या मालव राज किस्में
नवीनतम चमत्कारी किस्म एचआई.-8830 (पूसा कीर्ति)

एच.आई.-8759 (पूसा तेजस)
एच.आई.-8713 (पूसा मंगल)
एच.डी.-4728 (पूसा मालवी)

गेहूँ की उच्च उत्पादन देने वाली किस्में
(चपाती एवं बिस्किट के लिए उपयुक्त)
नवीनतम चमत्कारी किस्म-एच.आई.-1650 (पूसा ओजस्वी)
एच.डी.-3385, एच.डी.-3410

रायडा (सरसों) मटर, मैथी, बरसीम, रजका, जीरा, प्याज बीज (फुरसुंगी), तथा सुरजना (ड्रम स्टीक) के उत्तम किस्मों के बीज उपलब्ध

सम्पर्क
वसुन्धरा सीड्स (TM)
एक नाम एक संकल्प वसुन्धरा बायो-आर्गेनिक्स

52, राजस्व कालोनी, टंकी पथ,
उज्जैन-456010 (म.प्र.) फोन : (0734) 2530547
फैक्स : (0734) 2530547
मो. 93016-06161, 94253-32517
ई मेल- vasundharabio@yahoo.co.in

गोदाम एवं डिलेवरी का पताः बड़ी उद्योगपुरी, मक्सी रोड, महावीर तोल कांटे के पास, गोल्डन टाइम्स के सामने, उज्जैन (म.प्र.)

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें 0751-4070802

- वार्षिक ₹ 400
- द्विवार्षिक ₹ 750
- पंचवार्षिक ₹ 1800

वर्ष 20 ■ अंक 07 ग्वालियर, अक्टूबर 2025 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक
राजू गुर्जर (MJC)
94251-01132
94245-22090

प्रसार/मार्केटिंग टीम
डी.के. बरार
91791-85002, 70247-93010
महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय
***
डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
***
डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि. ग्वालियर (म.प्र.)
***
डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण), डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)
***
डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर
***
डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
***
डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना
कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)
***
तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
***
बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)
***
श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542
***
डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

- फेरोमोन जाल: कीटनाशक पर निर्भरता घटाने का साधन 12
- डेयरी गाय-भैंसों में एंटीबायोटिक के दुरुपयोग से बढ़ता प्रतिरोध:.. 13
- तना छेदक कीटों का जीवन चक्र और रोकथाम 14
- डेयरी पशुओं को बाह्य परजीवियों से बचाव एवं प्रबंधन 15
- बकरियों में गिड 16
- रेबीज? कारण, लक्षण और इलाज 17
- 'घर पर ही जानें-आपकी मिट्टी रेतीली, चिकनी या दोमट है?' 18
- दुधारू पशुओं में ट्रामेटिक रेटिकुलाइटिस 19
- पालतू पशुओं में: 'एनीमिया' 20
- ग्राफ्टिंग के माध्यम से सब्जी उत्पादन: .. 21
- पशुपालन में महिलाओं की सहभागिता 22
- चमत्कारी सहजन (मुनगा): .. 23
- धान के कीटों की पहचान एवं समन्वित प्रबंधन 24
- बकरियों में आनुवांशिक प्रबंधन एवं प्रजनन 25
- वन हेल्थ कांसेप्ट: मानव, पशु और पर्यावरण का साझा स्वास्थ्य 26
- बसंक्रामक बर्सल रोग 27
- पुष्प जगत के कुछ अनछुये तथ्य 28
- पशुओं के लिए पौष्टिक हरा चारे की स्रोत- जई 29
- अमरकंटक के आसपास मटर की फली .. 30

उत्तर प्रदेश

- खरीफ मौसम में उत्तर भारत में जैविक मक्का की खेती:.. 31
- मशरूम की खेती: पोषण, औषधीय एवं आर्थिक.. 32
- आदिवासी कृषि और स्वदेशी तकनीकी ज्ञान 33
- काशीफल की उन्नत खेती 34
- पेड़ी फसल- एक टिकाऊ कृषि पद्धति 35
- खोआ और उसके प्रकार: भारतीय व्यंजनों में उपयोगिता.. 36
- सोशल मिडिया: रिश्तों की प्रगाढ़ता या एकांत का आरंभ 37
- डिजिटल धर्म: भारत में कृत्रिम बुद्धिमता.. 38
- गेहूँ उत्पादन में खरपतवारनाशियों की भूमिका:.. 39
- मृदा सूचना प्रणाली 40
- चमत्कारी वृक्ष: सहजन 41
- आंवला में सक्रिय जैविक यौगिक और उनके मानव स्वास्थ्य.. 42
- छत पर सब्जी की खेती कर करें सही समय का उपयोग 43
- मृदा जलमग्नता-समस्या एवं प्रबन्धन 44
- रबी फसलों में बीजोपचार 46
- शरद ऋतु की सब्जियों की वैज्ञानिक खेती के सफल.. 47

राजस्थान

- हरित जीडीपी: सतत विकास की एक आर्थिक अवधारणा 48
- पर्यावरण कानून और सतत कृषि:.. 49
- राजस्थान की जलवायु क्षेत्रों में कस्तूरी मेथी की खेती 50
- राजस्थान की काचरी पोषक तत्वों के साथ आय का भी स्रोत 51
- कृषि के लिए भू-स्थानिक तकनीक निगरानी 52
- कृषि प्रदूषण नियंत्रण में प्राकृतिक .. 53
- धरती से सेहत तक : किसानों के लिए आयुर्वेद.. 54

हिमाचल प्रदेश

- प्राकृतिक खेती: रासायनिक कृषि का टिकाऊ विकल्प 55
- बढ़ती आबादी और पोषण सुरक्षा: सब्ज़ी बनाम फास्ट फूड 56

हरियाणा

- मधुमखी पालन से किसानों की आय एवं लाभ 57
- मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन 58
- रजोनिवृत्ति महिलाओं में विटामिन 'डी' का महत्व 59
- प्याज: कटाई उपरांत प्रबंधन एवं मूल्यवर्धन 60
- सतत खाद्य प्रबंधन: गृह विज्ञान और कृषि अर्थशास्त्र.. 61

बिहार

- हाइड्रोपोनिक्स- पशुधन के लिए हरा चारा.. 62
- तेल निष्कर्षण मशीनरी को अपनाने से किसानों.. 63
- नींबूवर्गीय फलों का तुड़ाई उपरांत रोगों का प्रबंधन 64

नई दिल्ली

- बैटरियों के उचित रख-रखाव से किसान कैसे .. 65

उत्तराखण्ड

- परवल की वैज्ञानिक खेती 66

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

जीएसटी की दरें कम होने से मिलेगी राहत

जीएसटी काउंसिल की 56वीं बैठक के बाद घोषित जीएसटी की नई दरें 22 सितंबर से लागू कर दी गई हैं। जिसमें अब 12 व 28 फीसदी के दो स्लैब को खत्म करके सिर्फ 5 व 18 फीसदी कर दिया गया है। कहा जा रहा है कि यह सरकार की ओर से आर्थिक सुधारों की कड़ी में एक नई पहल है, जिससे जीएसटी को तार्किक बनाने व आम जनता को महंगाई से राहत देने का प्रयास है। वहीं दूसरी ओर विलासिता आदि वस्तुओं के लिये चालीस फीसदी का एक नया स्लैब जोड़ा गया है। विपक्ष इसे देर से उठाया गया कदम बता रहा है, तो सरकार आर्थिक सुधार की दिशा में बड़ा कदम। वहीं कुछ अर्थशास्त्री इस कदम को ट्रंप के टैरिफ वॉर के परिप्रेक्ष्य में उठाया गया सुरक्षात्मक कदम मानते हैं। जिससे घरेलू खपत को बढ़ाकर निर्यात घाटे को कम किया जा सके। वहीं कुछ लोग इसे नवरात्र में दिवाली से पहले सरकार का तोहफा बता रहे हैं। माना जा रहा है कि सरकार की सोच है कि आर्थिक सुधारों के जरिये घरेलू उपभोग व निवेश को बढ़ाया जाए। निस्संदेह, इससे भारतीय अर्थव्यवस्था का विस्तार होगा। यही वजह है कि कुछ अर्थशास्त्री जीएसटी दरों को घटाने को साहसी व दूरदर्शी कदम बताते हैं, जो उपभोक्ता के उपभोग को बढ़ाएगा। उल्लेखनीय है कि सरकार ने एक जुलाई 2017 को पूरे देश में जीएसटी लागू किया था। उसके बाद समय-समय पर विभिन्न उत्पादों की दरों में परिवर्तन किए जाते रहे हैं। लेकिन इसके बावजूद विपक्षी दलों द्वारा शासित सरकारें कई उत्पादों पर जीएसटी दरें तार्किक बनाने की मांग करती रही हैं। जिसमें पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने स्वास्थ्य बीमा पर जीएसटी दर घटाने की मांग की थी। इतना ही नहीं, कुछ उद्योगों, विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों व जन-स्वास्थ्य से जुड़ी वस्तुओं के उत्पादकों द्वारा जीएसटी कम करने की मांग की जाती रही है। इसी तरह किसान संगठन भी कृषि उत्पादों पर कर कम करने की मांग करते रहे हैं।

वहीं दूसरी ओर जीएसटी दरों में बदलाव की टाइमिंग को लेकर सवाल उठाते रहे हैं। उनका मानना है कि इसकी पृष्ठभूमि में ट्रंप के टैरिफों को कम करने की कवायद भी है ताकि घरेलू उपभोग बढ़ाया जा सके और सस्ते निर्यात को बढ़ावा मिल सके। कालांतर इससे देश की अर्थव्यवस्था को गति मिल सकेगी। इसका संकेत प्रधानमंत्री ने पंद्रह अगस्त को लाल किले से संबोधन में भी दिया था। वहीं आगामी वर्ष मार्च में राज्यों को राहत देने वाले कम्पंसेशन सेस की समाप्ति से पहले राज्यों को राहत देने के लिये भी यह कदम उठाया गया हो सकता है। निस्संदेह, इस कदम से सरकारी खजाने में जीएसटी कम आएगा, लेकिन आर्थिक विशेषज्ञ मानते हैं कि विलासिता की वस्तुओं पर चालीस फीसदी का जीएसटी सरकार के घाटे की पूर्ति में किसी हद तक मदद करेगा।

।। समय होत बलवान ।।

प्रो. (डॉ.) भागचन्द्र जैन
उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय कृषि पत्रकार संघ (नाज) 20, महावीर नगर पोस्ट-रविग्राम, रायपुर-492001 (छत्तीसगढ़)

युगों- युगों से समय परिवर्तन की सम्पति हैं।
कहीं सुनहरा अवसर, कहीं-कहीं पर विपति है।।
वेदों में, पुराणों में, समय की महिमा बतायी।
प्रयन कीजिये, जिससे हो समय की भरपायी।।
समय के साथ चलिये, यही समय का तकाजा है।
समय से ही रक और समय से ही राजा है।।
बंधा है समय से भूतकाल, भविष्य, वर्तमान।
चंदा और सूरज समय से, समय होत बलवान।।

कर्म कीजिये, कर्तव्यों से बदल जाती तकदीर।
समय को समझिये, तब बन जाओगे वीर।।
हमारी-तुम्हारी दिनचर्या समय से, समय महान।
रुकता नहीं समय, समय, धन और धान्य।।
समय से गति-प्रगति समय से न रहो अनजान।
'डाल से चूका बंदर और वक्त से चूका किसान'।।
समय प्रतीक्षा नहीं करता, समय होत बलवान।

गीता में लिखा 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन'।
अर्थात् कर्म कीजिये, फल की इच्छा न करें सभी जन।।
समय हमारा है, तुम्हारा है, समय किसका है।
साथ न छोड़ो समय का, समय सभी का है।।
जुड़े है सभी समय से, फसले, मानव और प्राणि।
समय के साथ चलिये, दूर हो जायेगी परेशानी।।
समय को पहचानों, समय से आन-बान- शान।
मशीनीकरण के युग में भी, समय होत बलवान।।

समय से लक्ष्य साधो, बनाओं नये कीर्तिमान।
आगे बढ़ते रहिये, कीजिये सभी का कल्याण।।
समय के साथ चलिये, समय बनेगा वरदान।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)
रामप्रकाश रघुवंशी
98272-78063
***
नरसिंहपुर (म.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330

मुंगावली (म.प्र.)
भगवानदास चौबे
96854-88453
बलिया (उ.प्र.)
आर.एन. चौबे-94535-77732
पश्चिम बंगाल
राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा
समीर रंजन नायक
70422-31678
***
हापुड़ (उ.प्र.)
मयंक गौड़: 83848-66823

Online **मंगाएं साहित्य**

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है। -संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

किसान चिंता न करें प्रभावित हर खेत का होगा सर्वे: सीएम

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव प्रभावित फसलों का जायजा लेने पहुंचे खेतों में

भोपाल

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा है कि अतिवृष्टि से जहाँ भी फसलों को नुकसान हुआ है, वहाँ हर खेत का सर्वे कर किसानों को मुआवजा दिया जाएगा। किसान भाई चिंता न करें, राज्य सरकार उनके साथ खड़ी है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने शुक्रवार को रतलाम जिले की सैलाना तहसील के करिया गाँव में अतिवृष्टि एवं पीला मोजेक से प्रभावित फसलों का अवलोकन किया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने किसान मनोहर लाल मालवीय और राधेश्याम पाटीदार के खेतों में जाकर सोयाबीन की फसल का जायजा लिया और उन्हें आश्वस्त किया कि राज्य सरकार इस संकट से किसानों को उबारेगी।

हम आपका साथ में है, चिंता मत करजो। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने करिया गाँव में किसान राधेश्याम पाटीदार को ढांढस बँधाते हुए यह बात कही। मुख्यमंत्री ने राधे श्याम पाटीदार सहित अन्य किसानों के खेत में जाकर प्रभावित फसलों का मुआयना किया और कहा कि मुसीबत की इस घड़ी में सरकार किसानों के साथ में है और सरकार से हर संभव मदद दी जाएगी।

किसान चौपाल में किया संवाद

खेतों में फसल निरीक्षण के बाद मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने किसान चौपाल में किसान भाइयों से संवाद भी किया। उन्होंने कहा कि किसानों के प्रति केन्द्र एवं प्रदेश सरकार संवेदनशील है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा किसानों के हित के लिए किसान सम्मान निधि दी जा रही है। साथ ही प्रदेश सरकार द्वारा भी किसानों को सहायता राशि दी जा रही है। प्रदेश के 30 लाख किसानों को सोलर पंप प्रदान किए जायेंगे। गायों के लिए गौ शालाएं बनाई गई है जिससे निराश्रित गाय खेतों को नुकसान नहीं पहुंचा सकें। किसान भाई जरा भी चिंता न करें, सरकार हर कदम पर किसानों के साथ खड़ी है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि पूरे क्षेत्र में जहां भी नुकसान हुआ है हर खेत का पारदर्शिता के साथ पूरा सर्वे होगा। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने जिला कलेक्टर को खराब हुई फसलों का सर्वे कराए जाने के निर्देश दिए। किसानों की मांग पर ग्राम रियावन से ग्राम कालूखेड़ा की सड़क बनाने की घोषणा भी की। भ्रमण के दौरान जिले के प्रभारी एवं जनजातीय कार्य, लोक परिसंपत्ति प्रबंधन, भोपाल गैस त्रासदी राहत एवं पुनर्वास मंत्री डॉ. कुंवर विजय शाह, जावरा विधायक डॉ. राजेन्द्र पाण्डे, महापौर प्रहलाद पटेल, जिला पंचायत अध्यक्ष श्रीमती लालाबाई शंभुलाल चंद्रवंशी सहित जनप्रतिनिधि एवं प्रशासनिक अधिकारी उपस्थित थे।

केविके अम्बाला द्वारा गांव पिलखनी में पशु-स्वास्थ्य शिविर का आयोजन

अंबाला। कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बाला द्वारा पिलखनी गांव में पशु-स्वास्थ्य शिविर का आयोजन किया गया, जहां लगभग 50 से अधिक पशु-पालकों ने भाग लिया। शिविर में केन्द्र की वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रधान, डॉ. उपासना सिंह ने सबसे पहले उपस्थित महिलाओं को घर के अन्य कामो के साथ साथ पशुओं की देखरेख करने के लिए सराहा। उन्होंने पशु-पालको को दूध निकालने का सही तरीका बताया ताकि पशुओं के थनो को हानि न पहुंचे। पशुओं में समस्या आने पर पशु मोबाइल ऐप का सहारा लेते हुए पशुपालन विभाग से कैसे संपर्क करें इसके बारे में बताया। उन्होंने सामुदायिक स्तर पर एकजुट होकर डेरी पालन शुरू करके, वीटा मिल्क प्लांट इत्यादि को संपर्क करके दूध बेचने का सुझाव दिया व साइलेज प्लांट लगाने का अनुरोध किया। इस शिविर के दौरान केन्द्र के विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु पालन), डॉ. राजन मिश्रा द्वारा पशु-पालकों को उचित उपचार की सलाह एंव दवाईयों का वितरण भी किया गया। पशु-शिविर के दौरान पशु-पालकों के साथ बातचीत की गयी और यह पाया गया कि पशुओं में मुख्य समस्या समय से गर्मी में न आना, बार-बार फिर जाना और उनका शारीरिक विकास कम होना इत्यादि।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

केवीके जावरा द्वारा प्राकृतिक खेती विषय पर कृषि सखियों का पांच दिवसीय प्रशिक्षण

रतलाम

कृषि विज्ञान केन्द्र जावरा रतलाम द्वारा राष्ट्रीय मिशन ऑफ नेचुरल फार्मिंग के अंतर्गत वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ सर्वेश त्रिपाठी के मार्गदर्शन में आत्मा विभाग, कृषि एवं किसान कल्याण रतलाम के सहयोग से कृषि सखियों के लिए प्राकृतिक खेती विषय पर पांच दिवसीय प्रशिक्षण का आयोजन किया गया।

प्रशिक्षण के नोडल अधिकारी डॉ सी.आर. कांटवा द्वारा कृषि सखियों को प्राकृतिक खेती के उपयोग में आने वाले विभिन प्रकार के प्राकृतिक उत्पादों के बारे में जानकारी प्रदान की गई जिसमें बीजामृत, जीवामृत, घनजीवामृत, नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, अग्नियस्त्र और पांच पत्ती काढ़ा जैसे उत्पादों को तैयार करने की जानकारी प्रदान की गई। कृषि विज्ञान केन्द्र के विशेषज्ञों द्वारा प्राकृतिक खेती के अंतर्गत पशुपालन, कीट व्याधि नियंत्रण, फल/फूल उत्पादन, फसल उत्पादन, जल संरक्षण, वापसा, मार्केट लिकेंज एवं एफपीओ गठन पर जानकारी प्रदान की गई। केवीके में स्थापित प्राकृतिक खेती इकाई में नोडल अधिकारी द्वारा प्रायोगिक विधि से प्राकृतिक उत्पादों को बनाकर दिखाया गया एवं प्रशिक्षण के अंत में सभी कृषियों सखियों से प्राकृतिक उत्पादों को बनवाया गया। रतलाम जिले के 6 विकास खंडों से 50 कृषि सखी प्रशिक्षित होकर विभिन्न ग्रामों में किसानों के बीच में प्राकृतिक खेती के प्रति जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करेंगी। उपरोक्त कार्यकम में निर्भय सिंह नरगेस परियोजना संचालक आत्मा रतलाम, कृषि विज्ञान केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ सर्वेश त्रिपाठी, विशेषज्ञ-डॉ. बरखा शर्मा, डॉ रामधन घसवा, डॉ रोहिताश सिंह भदौरिया, डॉ सुशील कुमार, डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप तिवारी, डॉ. शिशराम जाखड़ एवं आत्मा विभाग से सभी बी.टी.एम., ए.टी.एम. ने उपस्थित रहकर प्रशिक्षण कार्यक्रम को सफल बनाया।

5 दिवसीय कृषि सखी प्रशिक्षण कार्यक्रम में जिले की कलेक्टर द्वारा मार्गदर्शन

नरसिंहपुर। राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती योजना अंतर्गत 50 कृषि सखियों के 5 दिवसीय प्रशिक्षण के दौरान जिले की कलेक्टर श्रीमति शीतला पटले द्वारा कार्यक्रम में उपस्थित समस्त कृषि सखियों/कृषकों को प्राकृतिक खेती के विषय पर हो रहे प्रशिक्षण की जानकारी ली। साथ ही उन्होंने कृषकों को जागरूक करने व खेती अपनाकर लागत कम करने व अपनी आय बढ़ाने के लिए प्रेरित किया।

कार्यक्रम में कृषि सखियों से प्रशिक्षण के दौरान सीखी प्राकृतिक खेती जैसे बीजामृत, जीवामृत, नीमास्त्र के बारे में चर्चा की उसके उपरांत उपसंचालक कृषि मोरिस नाथ एवं डॉ. विशाल मेश्राम, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख, प्रशिक्षण प्रभारी डॉ. निधि प्रजापति व श्रीमती शिल्पी नेमा द्वारा कलेक्टरको प्राकृतिक खेती अंतर्गत कृषि सखी प्रशिक्षण संबंधी स्मृति चिन्ह प्रदान किया। उसके उपरांत केन्द्र में प्राकृतिक खेती इकाई का भ्रमण किया व महिलाओं को कृषक मास्टर ट्रेनर कृष्णपाल लोधी, ग्राम चिरचिटा में प्रायोगिक प्रशिक्षण सह भ्रमण हेतु हरी झंडी दिखाई गई। इसके अंतर्गत प्रशिक्षु कृषि सखियों के द्वारा कृष्णपाल लोधी, एवं कृषि वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन में स्वयं करके सीखना सिद्धांत के आधार पर प्राकृतिक खेती में प्रयोग होने वाले जीवामृत, घनजीवामृत, नीमास्त्र, ब्रम्हास्त्र इत्यादि कैसे तैयार किये जाते है स्वयं के द्वारा निर्माण करके सीख सकेगीं। इस कार्यक्रम में केन्द्र के समस्त वैज्ञानिकों डॉ. विशाल मेश्राम, डॉ. निधि प्रजापति, डॉ. प्रशांत श्रीवास्तव, डॉ. एस.आर. शर्मा, डॉ. विजय सिंह सूर्यवंशी कृषि तकनीकी प्रबंध सस्था, आत्मा से श्रीमती शिल्पी नेमा, रूचि शर्मा, विवके उदैनिया, अरूण परतेती, अंजली आदि की सक्रिय भूमिका रही।

अक्षिता एग्रो

राघवेन्द्र सिंह
8959728253

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं

पता : अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

01/203-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

प्रदीप खडीकर 9301606161
वसुन्धरा सीड्स, उज्जैन (म.प्र.)

एचआई-1650 ओजस्वी गेहूँ वैरायटी

वसुन्धरा सीड्स द्वारा गेहूँ, चना, सोयाबीन, मूंग, उड़द, अरहर, प्याज आदि फसलों के उन्नत बीज अनुसंधान केन्द्र (रिसर्च स्टेशन) व कृषि विश्वविद्यालयों से सम्पर्क कर प्राप्त किए तथा क्षेत्र के किसानों से सम्पर्क कर प्राप्त बीज से क्षेत्र के श्रेष्ठ किसानों के यहां अनुशंसा एवं आदर्श कृषि कार्यमाला एवं खेती के आधुनिक तरीकों/तकनीकों से उनकी पैदावार लेकर उनके आंकड़े एकत्रित किए तथा प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार क्षेत्र के किसानों के लिए श्रेष्ठ किस्मों का चुनाव कर उन्हें किसानों को उपलब्ध कराया जा रहा है। वैज्ञानिकों एवं किसानों के यहां तकनीकी एवं व्यवहारिक दृष्टि से परखी गई श्रेष्ठ किस्म एवं जातियों का विवरण निम्नानुसार है-

गेहूँ एच.आई.-1650 (पूसा ओजस्वी)

गेहूँ किस्म एच.आई. 1544 (पूर्णा) के बाद किसान एक ऐसी चमत्कारी, असाधारण खाने वाली गेहूँ किस्म का इंतजार कर रहे थे जो कि पूर्णा या अन्य परंपरागत चपाती वाली किस्मों से अधिक उत्पादन, ज्यादा बाजार भाव, अच्छा सुडोल आकर्षक दाना, कम ऊंचाई व कम बीज दर व जल्दी व कम सिंचाई में भी आने वाली, बीमारियों के प्रति प्रतिरोधकता वाली ऐसे सभी गुणों से सम्पन्न आल इन वन किस्म जिसका डंका पूरे भारत में बजे ऐसी किसानों की अपेक्षा के अनुरूप गेहूँ अनुसंधान केन्द्र (IARI) द्वारा जो कि पूसा नई दिल्ली का एक सहयोगी संस्थान है। वर्षों के गहन अनुसंधान के 7 पश्चात गेहूँ की बॉयो फोर्टीफाइड किस्म एच.आई. - 1650 (पूसा ओजस्वी) देश के मध्यक्षेत्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, बुंदेलखंड क्षेत्र हेतु समय पर बोनी हेतु चपाती, ब्रेड, बिस्किट के लिये उपयुक्त हाल ही में जारी की है। गेहूँ की यह नवीनतम, एडवांस किस्म किसानों की सभी आवश्यकताओं एवं देश में बढ़ती ब्रेड, बिस्किट एवं चपाती वाले गेहूँ की मांग को पूरा करने में एक मील का पत्थर साबित होगी।

इस किस्म का गजट नोटिफिकेशन क्रमांक एस. ओ. 1056 (E) दिनांक 06.03.2023 है। गेहूँ की यह अतिविशिष्ट नई जनरेशन कि किस्म पर पूसा नई दिल्ली के द्वारा कई वर्षों के गहन रिसर्च एवं वैज्ञानिकों की टीम द्वारा भारी खर्च वाले अनुसंधान कार्य के पश्चात् इस किस्म को जारी किया गया जिसके कारण इस किस्म का प्रजनक (ब्रीडर) बीज जो कि सीमित मात्रा में था उसका पूरा व सही लाभ किसानों को मिले। इस हेतु एक विशेष अनुबंध (MOU) के तहत कुछ निर्धारित शर्तो पर कुछ चुनी हुई बीज उत्पादक कम्पनियों को इसका प्रजनक बीज, प्रगुणन (उत्पादन) एवं विक्रय के लिए दिया गया जिसके प्रथम क्विंटल की लागत पंजीयन/लायसेंस व रायल्टी सहित रूपये 1,25,000 थी। इसलिए किसान भाई गेहूँ अनुसंधान केन्द्र (IARI) द्वारा अधिकृत बीज उत्पादक कम्पनियों से ही बीज लेवें क्योंकि इस किस्म की भारी माँग होने से कई लोग इस किस्म से मिलती-जुलती किस्मों को पूसा ओजस्वी या 1650 के नाम से थोड़े कम दाम में बेचकर किसानों के साथ धोका कर रहे हैं। इससे किसान सावधान रहे। केवल पूसा, नई दिल्ली द्वारा अधिकृत कम्पनियों से ही बीज लेवें इसकी पुष्टि एवं सूचना आप गेहूँ अनुसंधान केन्द्र इंदौर से भी कर सकते हैं उनके द्वारा इसकी सूची यूट्यूब पर भी वीडियों के रूप में डाली गई है।

किसान भाई इस बात को भी समझें कि मूल प्रजनक बीज की लागत बहुत अधिक होने से बीज थोड़ा महंगा हो सकता है। किंतु अधिकृत उत्पादक कंपनी से बीज लेने पर ओरिजनल होने की ग्यारंटी रहेगी। साथ ही जहाँ तक लागत का प्रश्न है किसान भाईयों को यदि इस किस्म का आधार बीज एफ-1 बीज मिल रहा है तो उसका उपयोग वे 2-3 वर्ष तक कर सकते हैं। किसान भाई 1 वर्ष का बीज नहीं लें रहें है वे 2-3 वर्ष में इस लागत का आंकलन करेंगे तो उन्हें यह बीज बिलकुल महंगा नहीं लगेगा। साथ ही इस किस्म की बीज दर प्रति एकड़ 40 किलो जो कि अन्य किस्मों की तुलना में बहुत ही कम है। उदाहरण के लिए इस किस्म की बीज दर रूपये 12,500/- प्रति क्विंटल रहती है तो मात्र 5000/- रुपए एकड़ में गेहूँ की बीजाई हो जाएगी जो कि लगभग अन्य गेहूँ की किस्म की लागत के बराबर ही है। क्योंकि उनका बीज थोड़ा सस्ता हो सकता है किन्तु बीज दर या मात्रा अधिक लगने से उसकी लागत भी लगभग इतनी ही आएगी किन्तु बीज के रूप में गेहूँ-1650 की मांग अगले वर्ष भी बहुत अच्छी रहेगी जिससे किसान को इस किस्म के गेहूँ का जो भाव मिलेगा वह अन्य किस्मों के गेहूँ में कभी नहीं मिल सकता है। अतः किसान इस किस्म के भाव के बजाय इस किस्म से होने वाले लाभ पर ही ध्यान देवें। इसके अतिरिक्त किसानों को इस किस्म के बीज की जो अतिरिक्त लागत लग रही है। वह तो इस किस्म के फसल कटने पर निकलने वाले भूसे से ही निकल जावेगी । इस किस्म का बीज सिर्फ सीधे बीज उत्पादक कम्पनियों को ही विक्रय के लिये दिया गया है। किसी भी किसान या व्यक्ति को यह बीज उत्पादन या विक्रय के लिए नहीं दिया गया है। इसका विशेष ध्यान रखें। अधिकृत बीज कम्पनियों से ही बिल के साथ इस बीज का क्रय करें।

इस किस्म का दाना सुडोल, चमकदार, आकर्षक, लम्बाकार रंग अम्बर (सुनहरा), 1000 दानो का वजन लगभग 50 ग्राम, बाली में दाने खिरने की समस्या नहीं, बॉयो फोर्टिफाईड किस्म होने से इसमें जिंक (42.7), आयरन (39. 5) पी. पी. एम. एवं प्रोटीन (11.4%) होने के कारण इस किस्म में पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में है जो कि देश में कुषोषण की समस्या को दूर करने में भी यह किस्म एक महत्वपूर्ण योगदान देगी। इस किस्म की रोटी सफेद, मुलायम, स्वादिष्ट, ब्रेड, बिस्किट एवं अन्य बेकरी आयटम के लिये अत्यंत उपयुक्त किस्म है। क्योंकि इस किस्म की चपाती क्वालिटी एवं बिस्किट क्वालिटी इन्डेक्स लगभग 7.9 है तथा इस किस्म की सेडीमेंटेशन वल्यू (39.00ML) है जो कि इस किस्म को चपाती, ब्रेड, बिस्किट हेतु एक सर्वोत्तम किस्म होने के दावे की तकनीकी रूप से भी पुष्टि करती है।

इस किस्म की बाली सफेद, पत्तियां चौड़ी, सतह मोमी, मजबूत पर्ण झुके हुए तथा पौधा मध्यम ऊंचाई का लगभग 90-92 सेंमी. पौधा कम ऊंचाई का होने से आड़ा (लाजिंग) पड़ने की समस्या नहीं जिससे अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में बढ़ोतरी इस किस्म का पौधा भरा हुआ पत्तियां चौड़ी व टिलरिंग अधिक होने से किसानों को अधिक भूसा भी प्राप्त होगा जो कि किसानों को एक अतिरिक्ति आय का लाभ भी निश्चित रूप से देगा। इस किस्म की बीज दर 100 किलो हेक्टेयर या 40 किलो एकड़, लाईन से लाईन की दूरी 20 से.मी. 1 नवम्बर से 25 नवम्बर तक समय पर बोनी करने पर तथा संतुलित मात्रा में उर्वरक एन.पी.के. 120:60:40 तथा अनुशंसित मात्रा में

जिंक तथा समय-समय पर 4-5 सिंचाई देने पर आदर्श परिणाम। इस किस्म का अधिकतम उत्पादन आदर्श परिस्थिति में लगभग 73 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है पर व्यवहारिक रूप से कुछ किसानों द्वारा इस किस्म का चमत्कारी उत्पादन 17 क्विंटल बीघा तक भी लिया गया है। किसानी आंकड़ों व जानकारी ने अनुसार यह एक अर्ली किस्म अवधि लगभग 115 से 120 दिन होने से 2-3 सिंचाई में भी अच्छे मजबूत जड़ तंत्र होने के कारण इस किस्म ने अच्छा उत्पादन दिया है।

यह किस्म लगभग 23 सभी मुख्य स्टेम रस्ट एवं लीफ रस्ट के लिये प्रतिरोधक किस्म है तथा पाला अवरोधक किस्म होने पाला व बीमारियों से नुकसान की संभावना भी कम रहती है।

यह किस्म कम बीज दर, कम सिंचाई व कम दिवस में आने के कारण कम लागत पर अधिकतम उत्पादन व अच्छे बाजार भाव जिससे किसान को अधिकतम आय ऐसी हरफनमौला किस्म आज हर किसान की आवश्यकता है व बढ़ते जीवन स्तर के कारण अच्छी क्वालिटी के गेहूँ की चपाती, बिस्किट, ब्रेड मार्केट में बड़ी माँग के कारण इसके उत्पादन की असीम संभावनाएं हैं, इन सब असाधारण गुणों के कारण यह किस्म हर किसान की पहली पसंद बनकर पूरे क्षेत्र में शीघ्र ही अच्छादित हो जावेगी ।

गेहूँ-एच. आई. 1655 (पूसा हर्षा)

विगत कई वर्षो से शरबती किस्म अमृता, हर्षिता के बाद क्षेत्र के किसान इस बात का इंतजार रहे है कि उन्हें इन परम्परागत किस्मों से भी अधिक उत्पादन देने वाली, बेहतर, उच्च गुणवत्ता वाली, पानी की उपलब्धता के अनुसार कम से अधिक सिंचाई में आने वाली अर्ली एवं बिमारियों के प्रति प्रतिरोधकता वाली, जिसकी ऊँचाई थोड़ी कम रहे व उसकी काड़ी कड़क रहें जिससे आड़ा पड़ने (लाजिंग) की समस्या कम हो ऐसी बहुगुणी विशेषता वाली किस्म जो उन्हें अधिकतम उत्पादन के साथ-साथ ज्यादा बाजार भाव भी दिला सके, इस संबंध में किसानों का इंतजार खत्म हुआ। पूसा के सहयोगी संस्थान गेहूँ अनुसंधान केन्द्र (IARI) इंदौर द्वारा हाल ही में सुखा निरोधक, चमत्कारी गेहूँ किस्म एच. आई. 1655 (पूसा हर्षा) देश के मध्यक्षेत्र हेतु समय पर बोनी के लिये, चपाती, ब्रेड एवं बिस्किट हेतु सर्वश्रेष्ठ जारी की है, जिसका गजट नोटिफिकेशन क्र. 1056 (E) दिनांक 6.3.2023 है। यह एक उत्कृष्ट जल उपयोग वाली कुशल जीनो टाईप व बॉयो फोर्टिफाईड किस्म है ।

शरबती गेहूँ की यह किस्म अभी तक जारी सभी शरबती किस्मों की तुलना में एक चमत्कारी किस्म तथा अलग गुणों एवं विशेषताओं वाली किस्म होने से यह अन्य परम्परागत शरबती किस्मों से थोड़ी अलग है शरबती किस्मों जैसे सुजाता या अन्य में बीज दर, पानी/खाद आदि के असंतुलन के कारण अधिक ऊँचाई बढ़ने, आड़ा पड़ने व इसके कारण उत्पादन में

कमी की समस्या आम है किंतु इस चमत्कारी किस्म हर्षा (एच.आई. 1655) एक मध्यम ऊँचाई कि लगभग 90-95 से.मी. जो कि लगभग लोक-1 के बराबर है। इस कारण कम ऊंचाई व इसकी काड़ी कड़क होने से हवा चलने या वर्षा की स्थिति में इसके गिरने (लाजिंग) की संभावना कम रहती है, जिसके कारण कृषकों को उत्पादन व गुणवत्ता खराब होने के कारण होने वाले नुकसान की आशंका शरबती किस्म होने के बाद भी इसमें कम रहती है। पाला अवरोधी किस्म होने से अधिक ठंड या पाले की स्थिति में भी इस किस्में में नुकसान की संभावना बहुत कम रहती है। स्टेम एवं लीफ रस्ट के लिये यह किस्म प्रतिरोधी है। इस किस्म के अविश्वसनीय किन्तु सत्य गुणों के कारण शरबती किस्मों की खेती को एक नई परम्परा, एक नया आत्मविश्वास व एक नई दिशा मिलेगी।

इस किस्म के दानें सुडोल, चमकदार, आकर्षक, लम्बाकार, रंग अम्बर (सुनहरी), 1000 दानों का वजन लगभग 47 ग्राम, प्रोटीन (11.4%), जिंक (39.7), लोह तत्व (37.3) पी.पी.एम. है, इस किस्म की रोटी, ब्रेड एकदम सफेद, नरम, स्वादिष्ट तथा आवश्यक पोषक तत्वों से भरपूर है। इस किस्म का चपाती इंडेक्स (8.4) तथा सेडीमेंटेशन वेल्यू (42.6 ML) है जो कि तकनीकी दृष्टि से चपाती व इस किस्म की क्वालिटी की उच्चता की पुष्टि करती है।

इस किस्म कि पत्तियां चौड़ी, थोड़ी झुकी हुई बालियों का रंग सफेद, बाली पर रोए नहीं, इस किस्म की अंकुरण क्षमता अत्याधिक होने, सुडोल दानों से भरपूर बालियों वाला खेत कल्ले (टिलरिंग) का एक साथ बहुत अधिक फुटाव, सुंदर आकर्षक फसल बिना देखे अविश्वसनीय भी है। ऐसा इस किस्म को लगाने वाले किसानों का अभिन्न मत है सघन पौधा, अधिक चौड़ी पत्तियों की छत्र-छाया (अच्छादन) होने से यह भूमि के जल वाष्पीकरण को कम कर देती है व इसकी जड़ें गहरी होने से जमीन के नीचे के स्तर की नमी एवं तत्वों को खिंचकर पौधे को दे देती है जिससे पौधा कम सिंचाई में या सुखे की स्थिति में भी हरित अवस्था में बना रहता है जो कि इस किस्म की उच्च उत्पादन क्षमता का मूल रहस्य है। अच्छी वर्षा या सिंचाई पर्याप्त उपलब्ध होने पर किसान इस किस्म में 3 से 4 सिंचाई लगाकर भी अधिक उत्पादन भी प्राप्त कर सकते हैं।

इस किस्म की अवधि सुजाता या अन्य शरबती किस्मों से कम है यानि यह मात्र लगभग 115 से 120 दिवस है जबकि इसकी अधिकतम उत्पादन क्षमता लगभग 60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा व्यवहारिक परिस्थितियों में कुछ किसानों द्वारा इस किस्म का सर्वाधिक उत्पादन लगभग 13-14 क्विंटल बीघा लिया गया है जो कि अविश्वसनीय किंतु सत्य है तथा यह शरबती किस्मों में सर्वाधिक है व शरबती किस्मों में इसे प्रथम स्थान पर पहुचाने हेतु पर्याप्त है। इस किस्म के दाने सुडोल चमकदार होने तथा रोटी, ब्रेड, बिस्किट, बेकरी आयटम के लिए उत्तम होने से इसकी स्थानीय माँग काफी अच्छी रहेगी जिसके कारण किसानों को अधिकतम उत्पादन के साथ अधिक बाजार भाव ऐसे दोहरा लाभ प्राप्त होगा। इस किस्म का पौधा फैलावदार, सघन, कुचे वाला होने से इस किस्म में भूसे की मात्रा किसान को अधिक मिलेगी जो कि किसान को एक अतिरिक्ति आय देगी।

इस किस्म की बीज दर 108 किलो हेक्टेयर या लगभग 40 किलो एकड़ लाईन से लाईन की दूरी 20 से.मी. 20 अक्टूबर से 10 नवम्बर तक समय पर बोनी करने संतुलित खाद एन. पी. के. एवं जिंक 80:40:50 सही समय पर देने पर आदर्श परिणाम। गेहूँ की यह शरबती किस्म हर्षा अपने असाधारण गुणों के कारण अपना एक उच्च स्थान बहुत जल्दी बना लेगी तथा चपाती वाले गेहूँ के बाजार व बेकरी इंडस्टी की एक बड़ी आवश्कयता बन जाएगी । यह किस्म की पूसा नई दिल्ली व गेहूँ अनुसंधान के (IARI) द्वारा विशेष अनुबंध (MOU) के तहत सीमित मात्रा में कुछ कम्पनियों को ही लगभग 1,25,000 /- क्विंटल की लागत पर दी गई है। अतः किसान केवल अधिकृत कम्पनियों से ही इसे खरीदे ताकि किसानों के साथ कोई धोखा न हो ।

गेहूँ-एच.आई. 8830 (पूसा कीर्ति)

पूसा के सहयोगी संस्थान, गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, इंदौर द्वारा देश के मध्यक्षेत्र म.प्र. दक्षिण राजस्थान, बुंदेलखंड, गुजरात, छत्तीसगढ़ के लिए समय पर बोनी हेतु थुली, रवा, पास्ता हेतु अनुशंसित गेहूँ की यह नवीनतम बॉयो फोर्टिफाईड किस्म हाल ही में जारी की है, इसका गजट नोटिफिकेशन क्रमांक एस.ओ. 1056 (E) 6.3.2023 है। पूसा तेजस, पोषण व पूसा मंगल आदि कठिया किस्मों के बाद किसान इनसे भी उन्नत एक ऐसी ड्यूरम किस्म का इंतजार कर रहे थे, जिसमें कम अवधि में कम सिंचाई व कम बीज दर पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सके किसानों की इसी अपेक्षा को पूर्ण करने हेतु, पूसा नई दिल्ली के संस्थान व इंदौर क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र (IARI) द्वारा वर्षों के गहन रिसर्च के पश्चात् यह नई कठिया किस्म

एच.आई. 8830 (पूसा कीर्ति) जारी की है। अति विशिष्ट श्रेणी की यह ड्यूरम किस्म का प्रजनक बीज एच. आई. 1650 की तरह ही एक विशेष अनुबंध (MOU) के तहत बहुत ही सीमित बीज होने से कुछ चुनी हुई बीज उत्पादक कम्पनियों को ही बीज प्रगुणन/उत्पादन व विक्रय के लिये दिया गया है जिसकी वास्तविक लागत प्रथम क्विंटल पर 1,25,000/- ली गई है। अतः किसान अधिकृत लायसेंस प्राप्त कम्पनियों से ही बीज लेवें ताकि उनके साथ किसी प्रकार का धोखा न हो ।

इस किस्म का दाना आकर्षक, चमकदार, बोल्ड, रंग अम्बर (सुनहरा), थोड़ा कड़क, आकार दीर्घ वृत्ताकार (इलेप्टीकल), 1000 दानों का वजन लगभग 50 ग्राम बालियों में आरेकल ठोस (काम्पेक्ट) होने से खिरने की समस्या नहीं व परिपक्वता अवधि में थोड़ी वर्षा होने पर भी दाने का रंग खराब नहीं होता जिससे बाजार भाव अच्छे मिलते हैं। बॉयो फोर्टिफाईड किस्म होने से इसमें पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में जैसे जिंक (37.9) लोह तत्व (37.6) पी.पी.एम. तथा इसकी सेडीमेंटेशन वेल्यू (33.8 ML) होने से यह इसकी उच्चतम गुणवत्ता एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की क्वालिटी होने का एक तकनीकी प्रमाण है ।हमारे यहाँ प्रकृति ने कठिया (ड्यूरम) गेहूँ के उत्पादन हेतु अत्यंत आदर्श वातावरण एवं परिस्थितियाँ प्राकृतिक रूप से प्रदान की है जिसके कारण कठिया गेहूँ की इस किस्म की क्वालिटी अंतर्राष्ट्रीय स्तर की व उत्पादन अधिकतम प्राप्त होता है जिससे इस किस्म की बड़ी स्थानीय माँग एवं निर्यात की असीम संभावनाएँ बनी हुई है ।

इस किस्म का पौधा मध्यम ऊँचाई का ऊँचाई लगभग 90 सेंमी. पत्तियाँ चौड़ी, पर्ण कोण, सीधी सतह मोमी, मजबूत बालियाँ सफेद, बालियों पर रूए नहीं, काड़ी कड़क, ऊँचाई अधिक नहीं व जबरदस्त टिलरिंग होने के कारण इसके आड़ा पड़ने (लाजिंग) की समस्या नहीं। पौधा घना, फैलावदार व अधिक कुचे वाले होने के कारण किसानों को भूसा भी अधिक प्राप्त होता है, भूसे के भाव भी बहुत अच्छे मिलने के कारण किसान को लगने वाली गेहूँ की लागत का अधिकतम हिस्सा भूसे की आय में निकल जाता है । इस किस्म का अंकुरण बहुत अच्छा होने से व टिलरिंग (कल्ले) अधिक होने से बीज दर भी कम लगती है तथा फसल की अवधि लगभग 120 दिन होने से कम सिंचाई में भी अधिकतम उत्पादन देने में यह किस्म सक्षम है। बीमारियों के प्रति प्रतिरोधकता व पाले / ठंड के प्रति सहनशीलता के सभी गुण इस किस्म में अन्य उन्नत ड्यूरम किस्मों की तरह स्वाभाविक रूप से देखे गए है।

इस किस्म की बीज दर 113 किलो हेक्टेयर या लगभग 45 किलो एकड़ तथा लाईन से लाईन की दूरी 20 से.मी. रखने व 20 अक्टूबर से 25 नवंबर से पूर्व समय पर बोनी करने व अनुशंसित संतुलित

उर्वरक एन.पी.के. व जिंक की मात्रा समय पर 100:50:25 उपयोग करने पर आदर्श परिणाम ।

इस किस्म में एक यह अच्छी बात है कि सीमित सिंचाई 1 से 2 देने पर भी यह किस्म अच्छा उत्पादन देने की क्षमता रखती है । इस किस्म में किसानों द्वारा 3 से 4 सिंचाई में भी व्यवहारिक रूप गतवर्ष कि विपरित मौसम एवं अधिक तापमान की परिस्थिति में भी लगभग 17 क्विंटल बीघा का उत्पादन लिया गया है जो कि आश्चर्यजनक किंतु सत्य है । इस किस्म में किसान भाई दाने में दूध भरने (जीव पड़ने) की अवस्था लगभग 85 से 90 दिन के बाद सिंचाई रोक देगें तो फसल के आड़ा पड़ने व दाने के पोट्या (धान्या) होने की संभावना नहीं के बराबर रहेगी जिससे किसानों को अधिकतम उत्पादन के साथ अच्छे बाजार भाव दोनों का लाभ मिलेगा।

गेहूँ की यह अत्यंत उन्नत एडवांस जनरेशन की यह ड्यूरम किस्म एच.आई. 8830 (पूसा कीर्ति) अपने बहु आयामी गुणों के कारण अतिशीघ्र अपना एक विशिष्ट उच्च स्थान अतिशीघ्र बना लेगी तथा किसानों के लिये कठिया गेहूँ की खेती की एक नई परम्परा बनाते हुए उनके लिये वरदान सिद्ध होगी।

गेहूँ एच.डी. 3385

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान एवं (IARI) नई दिल्ली द्वारा यह विशिष्ट श्रेणी की अत्युतम गेहूँ की किस्म एक विशेष प्रक्रिया (PPVFRA) प्लॉट प्रोटेक्शन ऑफ वैरायटीज एण्ड फारमर्स राईट अथोरिटी के माध्यम से पंजीकृत किस्म है। इस किस्म की यह एक सबसे बड़ी विशेषता या कहे कि गुण यह है कि इस किस्म में बड़े हुए तापमान के प्रति असाधारण प्रतिरोधकता देखी गई है जो आज तक जारी समस्त किस्मों में सर्वाधिक है अर्थात् बढ़े हुए तापमान में भी यह किस्म अपनी उत्पादन क्षमता एवं गुणवत्ता दोनों को बनाये रखती है एवं बार-बार मौसम में होने वाले बदलाव तथा मौसमी तनाव (स्टेस) के प्रति सामान्य उत्पादन देने की क्षमता ने इस किस्म को आज की अनिश्चितता वाली मौसम एवं परिस्थितियों को देखते हुए सबसे सफल एवं व्यवहारिक किस्म होने का श्रेय प्राप्त है ।

इस किस्म की बोनी अक्टूबर माह में भी की जा सकती है क्योंकि अक्टूबर माह में अक्टूबर हिट याने बहुत गर्म वातावरण होता है चूंकि यह गर्मी के वातावरण को सहन कर लेती है व लम्बी अवधि की किस्म होने के बाद भी जल्दी बोवनी के कारण समय पर इसकी कटाई करना भी आसान है। इस किस्म की ऊँचाई 98 से.मी. है इसकी टिलरिंग काफी अधिक होने, काड़ी कड़क होने से इस किस्म में आड़ा पड़ने (लाजिंग) की समस्या नहीं के बराबर है जिससे उत्पादन स्वभाविक रूप से अधिक प्राप्त होता है ।

इस किस्म का दाना काफी आकर्षक, चमकदार एवं बहुत बोल्ड होने से बाजार की पहली पसंद बनने की इस किस्म में पूरी- पूरी क्षमता एवं अधिकतम बाजार भाव मिलने की पूर्ण संभावना, पीले, ब्राउन एवं ब्लेक रस्ट के प्रति उच्च प्रतिरोधी क्षमता। इस किस्म की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसमें कुंचे निकले अर्थात् टिलरिंग इतना अधिक है जो कि किसी अन्य किस्म में नहीं देखा गया है। जिसके कारण बीज दर लगभग 35-40 प्रतिशत कम जिससे लागत में कमी इस किस्म की उत्पादन क्षमता चपाती वाले गेहूँ में सर्वाधिक देखी गई है जो कि अधिकतम लगभग 74 क्विंटल प्रति हेक्टेयर किंतु व्यवहारिक रूप से किसानों के द्वारा 80 क्विंटल हेक्टेयर से भी अधिक उत्पादन लिया गया। इस किस्म में जबरदस्त टिलरिंग बहुत

अच्छी अंकुरण क्षमता के कारण बीज दर मात्र 20-25 किलो एकड़ या लगभग 80 किलो हेक्टेयर गर्मी सहन करने की असाधारण क्षमता के कारण खेत में बारिश की नमी का भी उपयोग करते हुए 5 अक्टूबर से नवम्बर तक अर्ली बोनी हेतु उपयुक्त सिंचाई 4-5 देने व एन.पी.के. 100:50:25 व अनुशंसित मात्रा में जिंक देने पर आदर्श परिणाम जल्दी बोनी की क्षमता के कारण मार्च माह में ही अन्य किस्मों की तरह कटाई के कारण सुविधाजनक। गेहूँ की यह एच.डी. 3385 किस्म अपने चमत्कारी गुणों के कारण किसानों की गेहूँ की परम्परागत खेती के बारे में सोच को ही बदल कर रख देगी व एक ऐसा उच्च स्थान प्राप्त करेगी जो आज तक किसी किस्म को प्राप्त नहीं हुआ। अंत में यह गेहूँ खेती करने वाले किसानों के लिए एक वरदान सिद्ध होगी।

गेहूँ एच.डी.-3410

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) द्वारा देश में मध्य क्षेत्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं समीपस्थ प्रदेशों के लिए चपाती हेतु उपयुक्त गेहूं की यह नई किस्म एच.डी.-3410 हाल ही में विशेष रूप से जल्दी बोने हेतु सिंचित क्षेत्र के लिए जारी की हे जो कि लगभग 130/135 दिन में कम सिंचाई में अधिकतम उत्पादन देने की क्षमता रखती हे इसका दाना आकर्षक चमकदार ,इसके पौधे की ऊंचाई लगभग 100 से. मि. है जो कि कम होने से आड़ा (लॉजिंग) पड़ने की समस्या नहीं। सूखा सहन करने की क्षमता भी होने से 3-5 सिंचाई में ही अच्छा उत्पादन देने की क्षमता उत्पादन लगभग 67 से 70 क्विंटल प्रति हैक्टेयर। बायोफोर्टी फाइड किस्म होने से यह किस्म उच्च प्रोटीन व पोषक तत्वों से भरपूर है जो कि देश में कुपोषण की समस्या से लड़ने के लिए भी एक बड़ा माध्यम बनेगी। बीमारियों से लड़ने उच्च प्रतिरोध के कारण उच्च उत्पादन क्षमता का गुण। गेहूं की यह किस्म ब्लैक ,भूरा व पिला रतुआ (rust) के लिए प्रतिरोधकता साथ ही तीनों रस्ट रोगों स्टेम,लीफ,स्ट्रिप रस्ट के लिए व करनाल बंट ,फ्लैग स्मट , फूस रॉट व अन्य रोगों के लिए उत्कृष्ट प्रतिरोधकता।

इस किस्म में चपाती इंडेक्स (80.8) व सेडिमेंटेशन वैल्यू अच्छी होने से चपाती, बिस्किट, पास्ता हेतु यह एक सर्वश्रेष्ठ किस्म। बायोफोर्टी फाइड किस्म होने से इस किस्म में प्रोटीन 12.6% जो की बाजार में प्रीमियम भाव दिलाता है इसमें जिंक 40.9 ppm आयरन 36 ppm व इसकी कठोरता हाय ग्रेन हार्डनेस इंडेक्स 80.8 है जो कि उच्च गुणवत्ता की पुष्टि करता हैं बाली की लम्बाई काफी अधिक, भरे हुई बोल्ड दाने होने। कम उंचाई व काफी अधिक टेलरिंग (कूचे) वाला पौधा अत्यंत आकर्षक होने से इस किस्म का खेत देखने में बहुत ही अच्छा लगता है। इस किस्म ने अपने समकक्ष पारंपरिक गेहूं किस्मों WH1270, 3086, DBW-303 से लगभग 24% से अधिक रिकॉर्ड उत्पादन ट्रायल में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार दिया गया है। यह किस्म अपने बहुआयामी गणों के कारण अति शीघ्र किसानों की पहली पसंद बनकर जल्द आगे आएगी व गेहूँ खेती का एक प्रमुख आकर्षण बनेगी।

5. गेहूँ-सी- 306

गेहूँ की यह शरबती किस्म एक काफी पुरानी किस्म है जिसका नोटिफिकेशन 24.09.1969 को हुआ। ओल्ड इज गोल्ड की उक्ति को चरितार्थ करते हुए आज भी बाजार की शरबती किस्मों में अपने आकर्षक दाने, चमक व स्वाद के कारण शरबती किस्म में यह किस्म सिरमौर है। सूखा निरोधक किस्म होने के कारण यह कम से कम पानी/सिंचाई की स्थिति में भी अच्छा उत्पादन देने की क्षमता रखती है। इसकी उत्पादकता 25-30 क्विंटल हेम्टेयर है। इसके 1000 दानों का वजन 45-48 ग्राम लगभग होता है। पकने की अवधि 140-145 दिन होने से व गर्मी हेतु सहनशील किस्म होने से इसकी बोनी अक्टूबर से ही प्रारंभ हो जाती है, इसकी उँचाई 120-130 सेंमी. है। बीजदर लगभग 100 किलो हेक्टेअर व 1 से 2 सिंचाई पर अच्छे परिणाम, बाजार में चपाती में आज भी सी-306 गेहूँ सबसे लोकप्रिय व सबसे महंगा बिकने वाला गेहूँ है, इस किस्म में कृषकों का उत्पादन कम होते हुए भी बाजार भाव अधिक मिलने के कारण व सिंचाई खर्च कम होने से इस गेहूँ किस्म की खेती काफी लाभदायक है ।

6. गेहूँ-एच. आई.-1605 (पूसा उजाला)

गेहूँ अनुसंधान केन्द्र द्वारा वर्ष 2017 में जारी चन्दोसी/शरबती किस्म पूसा उजाला का दाना आकर्षक, चमकदार, खाने में चपाती हेतु अत्यन्त उत्तम एवं स्वादिष्ट होने से तथा इसकी रोटी सफेद एवं नरम होने से तथा इसकी अवधि सुजाता गेहूँ से कम होने के कारण तथा सूखे की स्थिति में मात्र एक से दो सिंचाई देने पर भी उच्चतम उत्पादन देने की क्षमता। काड़ी कड़क होने के कारण आड़ा पड़ने की समस्या नहीं होने के गुणों के कारण यह किस्म पहली बार किसान के द्वारा बोनी के पश्चात प्राप्त होने वाले परिणाम देखकर किसानों को इस किस्म को बार बार लगाने के लिये मजबूर कर देगी। जिन कृषकों ने इस शरबती किस्म को गतवर्ष लगाया था वे इसकी उत्पादन क्षमता को देखकर आज भी अचम्भित है, कि एक शरबती किस्म 55 क्वि. प्रति हेक्टेयर से अधिक उत्पादन कैसे दे सकती है। यह एक आश्चर्यजनक किंतु सत्य है जो कि आप स्वयं इस किस्म को लगाकर आदर्श परिस्थितियों में प्राप्त कर सकते हैं। इस किस्म में दाने थोड़े कड़क, चमकदार, अण्डाकार आकार के होते हैं, 1000 दानों का वजन लगभग 45 ग्राम, पौधे की ऊँचाई लगभग 90 से.मी. अवधि लगभग 120 दिवस, पत्ती की चौड़ाई मध्यम थोड़ी सीधी, आवरण मजबूत - चिकनी बाली पर रोएं नहीं, बाली का रंग सफेद। इस किस्म में लाईन से लाईन की दूरी लगभग 10" (इंच) रखने, बीच दर 45 किलो एकड़ या 100 किलो हेक्टेयर रखने फर्टिलाईजर अनुशंसा N80P40 K40 किलो प्रति हेक्टेयर रखने तथा 1-2 सिंचाई देने पर आदर्श परिणाम व्यावहारिक रूप से 3 सिंचाई देने पर भी अधिक उत्पादन प्राप्त हुआ है। गतवर्ष रिकॉर्ड उत्पादन देने वाली यह चन्दोसी किस्म अपने विशिष्ट गुणों के कारण शीघ्र ही गेहूँ की चन्दोसी किस्मों की एक आदर्श पर्याय किस्म बना जावेगी ।

चना पूसा समृद्धि (IPCMB-19-3)

चना पूसा समृद्धि (IPCMB-19-3) भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) नई दिल्ली द्वारा सूखे एवं सिंचित दोनों स्थितियों के अनुकूल एक उन्नत किस्म समय पर बोने हेतु देश के मध्य क्षेत्र मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात व बुन्देलखंड क्षेत्र हेतु जारी की है इस किस्म में उच्च प्रतिरोधकता के कारण ऊकटा रोग (विल्ट) का प्रकोप नहीं देखा गया है जो की किसानों के लिए चने की खेती के लिए एक बहुत बड़ी समस्या व चुनौती बन गई है जिसका निदान करने में यह किस्म काफी हद तक सफल होगी इस किस्म में उत्पादन की अधिकतम क्षमता 9/11 क्विंटल एकड़ तक अधिकतम देखी गई है इस किस्म की अवधि 100 से 110 दिन है इसका दाना पीला,चमकदार बोल्ड, एवं आकर्षक होने से बाजार भाव अच्छे मिलते है। इसके 100 दानों का वजन 24.10 ग्राम है ।

चने की यह नवीनतम उन्नत किस्म अपने असाधारण गुणों के कारण चने की खेती में नए आयाम बना कर अतिशीघ्र किसानों की एक लोकप्रिय किस्म बन जाएगी

चना पूसा मानव

चना 'पूसा मानव' (Pusa Manav) एक भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) द्वारा विकसित उच्च उपज वाली चने की किस्म है, जो मध्य प्रदेश जैसे राज्यों के लिए अनुशंसित है. वसुंधरा सीड्स, उज्जैन एक बीज कंपनी है जो किसानों को बीज उपलब्ध कराती है,

उच्च उपज: यह किस्म अच्छी उपज क्षमता रखती है, और किसानों को रिकॉर्ड तोड़ पैदावार मिलने की उम्मीद होती है.

रोग प्रतिरोधी: यह फ्यूजेरियम विल्ट जैसे रोगों के प्रति प्रतिरोधी है और इसमें अन्य रोगों का प्रकोप कम होता है.

पकने का समय: यह एक तेजी से पकने वाली किस्म है, जो लगभग 108-110 दिनों में तैयार हो जाती है.

पोषक तत्व: इस किस्म में प्रोटीन की मात्रा लगभग 18.9% होती है.

बीज कहाँ से प्राप्त करें: उज्जैन में स्थित वसुंधरा सीड्स से सीधे संपर्क करके पूसा मानव चने के बीज की उपलब्धता के बारे में पूछ सकते हैं।

श्रद्धा परमार कीट विज्ञान विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर

डॉ. प्रद्युम्न सिंह कीट विज्ञान विभाग, बी.एम. कृषि महाविद्यालय खंडवा (म.प्र.)

श्रद्धा तारे कीट विज्ञान विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

फेरोमोन जाल: कीटनाशक पर निर्भरता घटाने का साधन

फेरोमोन जाल

दुनिया भर के कृषि पारिस्थितिकी तंत्र कीटों के प्रकोप की बढ़ती तीव्रता और आवृत्ति के कारण अभूतपूर्व चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, जो न केवल वैश्विक व्यापार के विस्तार के कारण, बल्कि कीट जीव विज्ञान और वितरण पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के कारण भी हो रहा है। ये कीट फसल उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता, दोनों को काफी हद तक प्रभावित कर सकते हैं, जिससे वैश्विक खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं के लिए एक गंभीर खतरा पैदा हो सकता है। रासायनिक कीटनाशकों के विकास में दशकों की प्रगति के बावजूद कीट प्रबंधन कीटनाशक प्रतिरोध, गैर-लक्ष्य विषाक्तता, पारिस्थितिक असंतुलन, और भोजन और पर्यावरण में रासायनिक अवशेषों पर नियामक सीमाओं से संबंधित बाधाओं से जूझ रहा है।

हालके दशकों में फेरोमोन-आधारित निगरानी और प्रबंधन का चलन लगातार बढ़ा है, क्योंकि ये उपकरण कई प्रमुख लाभ प्रदान करते हैं। ये फेरोमोन जाल कीटों की उपस्थिति के सामान्य प्रमाण प्रदान करते हैं, जिसमें सामूहिक प्रवास और अंडे देने की अधिकतम घटनाओं के संभावित समय की पहचान शामिल है। फेरोमोन जाल का उपयोग जाल के आसपास वयस्कों की उपस्थिति को उजागर करने के लिए एक %पूर्व चेतावनी% के रूप में सबसे अच्छा किया जाता है, और ये प्रवासी अंतर्वाह या डायपॉज़िंग प्रजातियों के स्थानीय उद्भव का पता लगाने के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं। चूँकि फेरोमोन अस्थिर होते हैं, इसलिए प्रभावकारिता बनाए रखने के लिए, ल्यूर का उपयोग किया जाता है। बागवानी में अधिक सामान्यतः उपयोग किए जाने वाले फेरोमोन ल्यूर वर्तमान में कई कीट प्रजातियों के लिए व्यावसायिक रूप से उपलब्ध हैं, जो ब्रॉडएकर फसलों में पाए जा सकते हैं, जिनमें हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा, हेलिकोवर्पा पंक्टिजेरा, फॉल आर्मीवर्म (स्पोडोप्टेरा फ्रुजीपरडा), डायमंडबैक मोथ (प्लूटेला ज़ाइलोस्टेला), क्लस्टर कैटरपिलर (स्पोडोप्टेरा लिटुरा) और ग्रीन मिरिड्स (क्रेओन्टियाडेस डाइल्यूट्स) शामिल हैं।

गहन कृषि प्रणालियों में, फेरोमोन का उपयोग सामूहिक जाल बिछाने और प्रजनन में बाधा उत्पन्न करके प्रत्यक्ष प्रबंधन उपकरण के रूप में किया जाता है। ध्यान दें कि फेरोमोन लिंग-आधारित होते हैं, जबकि आकर्षित करने और मारने के नियंत्रण विकल्प (जैसे मैग्नेट०) आकर्षक पदार्थों (जैसे पादप वाष्पशील) और उत्तेजक पदार्थों को कीटनाशक के साथ मिलाकर बनाए जाते हैं। इन्हें खेत में जगह-जगह या पट्टियों में लगाया जाता है ताकि उड़ने वाले परागकण खाने वाले वयस्कों (जैसे कीट पतंगे) को आकर्षित किया जा सके, और ये नर और मादा दोनों को आकर्षित कर सकते हैं।

फेरोमोन जाल के प्रकार

उत्तरी क्षेत्र में अनाज की फसलों में सबसे ज़्यादा इस्तेमाल होने वाले फेरोमोन जाल बाल्टी जाल हैं, लेकिन डेल्टा जाल का इस्तेमाल फेरोमोन ल्यूर के साथ भी किया जाता है। दोनों प्रकार के जाल कई तरह की फसलों में इस्तेमाल के लिए उपयुक्त हैं, इन्हें लगाना आसान है और इनका दोबारा इस्तेमाल किया जा सकता है (एकल-उपयोग वाले डेल्टा जाल को छोड़कर)। इनके अलावा फनल जाल और चिपचिपा जाल का भी उपयोग किया जाता है।

डेल्टा जाल: व्यापक रूप से निगरानी के लिए उपयोग किया जाता है। लेपिडोप्टेरान कीटों के लिए इसका उपयोग किया जाता है। डेल्टा जाल एक त्रिकोणीय प्रिज्म के आकार के होते हैं जिसमें एक चिपकने वाला लाइनर और एक ल्यूर रखने की जगह होती है। इसकी सरलता, पुनः प्रयोज्यता और फेरोमोन ल्यूर प्रतिस्थापन में आसानी इसे नियमित क्षेत्र निगरानी के लिए आदर्श बनाती है, खासकर अंगूर के बागों में।

फनल जाल: सक्रिय उड़ान वाले कीटों के लिए डिज़ाइन किया गया है। ऊर्ध्वाधर दृश्य संकेतों के प्रति प्रबल आकर्षण और तीव्र आकर्षण के कारण, फनल जाल आमतौर पर छाल भृंगों (स्कोलिटिनी) और वीविल्स (कर्कुलियोनिडी) के लिए उपयोग किए जाते हैं। इन जालों में आपस में जुड़े हुए फनल या पंखों की एक श्रृंखला होती है जो कीट को एक संग्रह कक्ष में ले जाती है, जिसमें अक्सर भागने से रोकने के लिए एक कीटनाशक पट्टी या डूबने वाला तरल पदार्थ लगा होता है।

बाल्टी जाल

फल मक्खियों के लिए विशेष रूप से प्रभावी (डिप्टेराः टेफ्रिटिडी)।

बाल्टी जाल में कीटनाशक-उपचारित कक्ष के ऊपर लटकाए गए फेरोमोन या खाद्य-आधारित आकर्षक पदार्थ का उपयोग करते हैं। ये जाल उच्च कीट धारण क्षमता प्रदान करते हैं और बाग -बगीचों और बागवानी प्रणालियों में वयस्क आबादी की निगरानी और नियंत्रण, दोनों के लिए उपयुक्त हैं।

चिपचिपा जाल

सबसे किफायती और बहुमुखी डिज़ाइन वाले, चिपचिपे जाल चिपकने वाली सामग्री से लेपित होते हैं और फेरोमोन ल्यूर से भरे होते हैं। हालाँकि ये शुरुआती पहचान और घनत्व के आकलन में बेहद प्रभावी होते हैं, लेकिन ज़्यादा संक्रमण की स्थिति में इनकी चिपकने वाली सतहें संतृप्ति का शिकार हो जाती हैं और इन्हें नियमित रखरखाव और बदलने की ज़रूरत होती है।

फेरोमोन जाल का उपयोग

स्थापित आबादी की निगरानी: फेरोमोन का सबसे व्यापक उपयोग स्थानिक कीट प्रजातियों की वयस्क आबादी की निगरानी के लिए किया जाता है। फेरोमोन निगरानी जालों ने एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) कार्यक्रमों में खुद को अमेरिका के साथ-साथ दुनिया भर में अन्य फसलों पर इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्थापित कर लिया है। इनके उपयोग को आईपीएम के एक मौलिक और सामान्य घटक के रूप में स्वीकार किया गया है।

आक्रामक प्रजातियों का पता लगाने और सर्वेक्षण कार्यक्रम: फेरोमोन जाल के उपयोग से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में तथा गैर-फसल क्षेत्रों से फसल क्षेत्रों में आने वाले वयस्क कीट प्रजातियों का पता लगाने में काफी सहायता मिलती है। काले कटवर्म जैसे कीटों की प्रवासी वयस्क आबादी के वार्षिक आगमन की व्यापक रूप से रिपोर्ट की जाती है तथा फेरोमोन जाल के ग्रिड का उपयोग करके सर्वेक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से उन पर नज़र रखी जाती है।

सामूहिक जाल बिछानाः नर या मादा द्वारा उत्पादित फेरोमोन के साथ सामूहिक जाल बिछाना, एक ऐसी तकनीक है जिसे पहले नजरअंदाज किया जाता था, कुछ कीट प्रजातियों की आबादी को नियंत्रित करने के लिए एक अत्यधिक प्रभावी, पर्यावरण के अनुकूल और उचित मूल्य वाला तरीका बन गया है, जिनकी फेरोमोन संचार प्रणाली और बायोनोमिक विशेषताएं उन्हें इस विधि के लिए अनुकूल बनाती हैं।

प्रजनन में बाधा: प्रजनन में बाधा डालने के लिए, फसल के विभिन्न हेक्टेयर क्षेत्रों में सेक्स फेरोमोन की भारी मात्रा फैला दी जाती है, और प्रजनन के लिए मादाओं को खोजने की नरों की क्षमता को दबा दिया जाता है। पहले, यह माना जाता था कि प्रजनन में बाधा डालने के लिए ज़्यादातर, अगर सभी नहीं, मादाओं को अकेला रहना होगा। हालाँकि, हाल के शोध से पता चला है कि मादाओं को अपने पहले और दूसरे प्रजनन को रोकने की बजाय, बस स्थगित करने की ज़रूरत होती है।

डेयरी गाय-भैंसों में एंटीबायोटिक के दुरुपयोग से बढ़ता प्रतिरोध: भारतीय दुग्ध उत्पादन और उपभोक्ता स्वास्थ्य पर प्रभाव

डॉ. शशांक विश्वकर्मा
डॉ. अभिषेक बिसेन, डॉ. पुष्कर शर्मा
पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. संजय शुक्ला, डॉ. रेणुका मेवाड़े पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय जबलपुर

डॉ. असद खान पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-हरियाणा

डॉ. पंकज उमर, डॉ. ज्योति डागर पशु चिकित्सा औषध एवं विष विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. अंजुल वर्मा पशु शल्य चिकित्सा एवं क्ष-रश्मि विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर

भारत दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध-उत्पादक देश है, इसलिए डेयरी पशुओं में दवा-उपयोग की गुणवत्ता सीधे खाद्य-सुरक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़ती है। फील्ड में गैर-पशु चिकित्सकों (क्वैक/कम-अनुभवी प्रदाताओं) द्वारा अत्यधिक व आंशिक डोज़ में एंटीबायोटिक प्रयोग-गलत दवा-चयन, मात्रा, अवधि और ÷विथड्रॉअल पीरियड÷ न मानना-रेजिस्टेंस को तेज करता है और दूध में अवशेष का जोखिम बढ़ाता है।

भारत के दूध उत्पादन के ताज़ा तथ्य

2023-24 में भारत ने 9239.3 मिलियन टन दूध उत्पादित किया; प्रति व्यक्ति उपलब्धता 9471 ग्राम/दिन रही। प्रजाति-अनुपात में गायों का योगदान 953.1% और भैंसों का 943.6% आँका गया-यह वैश्विक स्तर पर भी अत्यधिक उत्पादन है।

गैर-वेट द्वारा 'माल-प्रैक्टिस' क्यों नुक़सानदेह?

- **गलत निदान/ अनावश्यक -प्रिस्क्रिप्शन:** गैर-वेट अक्सर बुखार/मैस्टाइटिस जैसे लक्षणों पर ही "ब्रॉड-स्पेक्ट्रम" एंटीबायोटिक दे देते हैं; कल्चर-एंड-सेंसिटिविटी नहीं करते। भारत पहले से ही एंटीबायोटिक का सबसे बड़ा उपभोक्ता (वॉल्यूम) माना जाता है-ऐसी प्रथाएँ स्थिति को और बिगाड़ती हैं।
- **गलत डोज़/अवधि:** आंशिक उपचार और "स्टॉप-स्टार्ट" डोज़िंग रेज़िस्टेंट जीवाणु चुनती है।
- **विथड्रॉअल पीरियड की अनदेखी:** दुग्ध-दूहन जल्दी शुरू कर देने से दूध में दवा-अवशेष आते हैं, जो खाद्य शृंखला में पहुँचते हैं। FSSAI के राष्ट्रीय सर्वे (2018) में दूध के नमूनों का एक छोटा पर महत्वपूर्ण भाग एंटीबायोटिक अवशेषों के लिए पॉज़िटिव पाया गया।

मानव स्वास्थ्य पर संभावित प्रभाव

दूध/दुग्ध-उत्पादों में बचे एंटीबायोटिक अवशेष:

- आंत माइक्रोबायोटा में बदलाव और एंटी-माइक्रोबियल रेजिस्टेंस (रूक्र) का बढ़ता दबाव पैदा कर सकते हैं।
- एलर्जी/हाइपरसेंसिटिविटी, यकृत/गुर्दा-विषाक्तता जैसी प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ संभव हैं (संवेदनशील व्यक्तियों में अधिक जोखिम)।
- फर्मेंटेड डेयरी (दही/पनीर) की स्टार्टर कल्चर को दबा कर तकनीकी-गुणवत्ता घटा सकते हैं।

ध्यान दें: सामान्य उबालना/कम समय की हीट-ट्रीटमेंट कई एंटीबायोटिक्स को पूरी तरह नहीं हटाती; कई दवाएँ ऊष्मा-स्थिर रहती हैं। इसलिए अवशेष-नियंत्रण का सही तरीका विथड्रॉअल पीरियड का पालन है, न कि ÷उबाल देने÷ पर निर्भर रहना।

सरकार/नीतिगत पहल (वन-हेल्थ दृष्टि)

- भारत ने 2017 में नेशनल एक्शन प्लान ऑन AMR (NAP-AMR) शुरू किया; 2.0 संस्करण पर राष्ट्रीय परामर्श चल चुके हैं। पशुपालन विभाग ने 2024 में स्टैंडर्ड वेटरिनरी ट्रीटमेंट गाइडलाइन्स जारी कर विवेकपूर्ण एंटीमाइक्रोबियल उपयोग पर ज़ोर दिया है।

मैदान-स्तर पर क्या बदलना होगा?

किसानों/डेयरी-सहकारी समितियों के लिए

- 1.हमेशा पंजीकृत पशु चिकित्सक से ही उपचार; "ओवर-द-काउंटर" एंटीबायोटिक से बचें।
- 2.नमूना-आधारित निदान (C&S) को बढ़ावा दें; "वॉच/रिज़र्व" श्रेणी की दवाएँ अंतिम विकल्प हों।
- 3.हर दवा पर विथड्रॉअल पीरियड सख्ती से मानें; इस अवधि का दूध अलग रखें/नष्ट करें।
- **4.रिकॉर्ड-कीपिंग:** तारीख, दवा, डोज़, अवधि, विथड्रॉअल-सब लिखित रखें; थोक खरीद व बिना पर्ची बिक्री से बचें।
- **5.रोकथाम पर निवेश:** टीकाकरण, थन-स्वच्छता, मिल्किंग हाइजीन, सूखा-काल थेरैपी के मानक प्रोटोकॉल अपनाएँ (संक्रमण घटेंगे, दवा की ज़रूरत कम होगी)।

दूध-संग्रह/प्रोसेसर के लिए

- कलेक्शन पॉइंट पर रैपिड-रेज़िड्यू स्क्रीनिंग, पॉज़िटिव बैच का पृथक्करण; सप्लायर-एजुकेशन और पेनल्टी/इंसेंटिव मॉडल।
- ट्रेसबिलिटी और सप्लाई-चेन ऑडिट।

उपभोक्ताओं के लिए

- विश्वसनीय सप्लाई-चेन/ब्रांड चुनें; घर पर उबालना सुरक्षा की गारंटी नहीं-यह केवल सूक्ष्मजीव जोखिम घटाता है, अवशेष नहीं।
- भारत में डेयरी-उत्पादन विशाल है; उसी अनुपात में एंटीबायोटिक-रेज़िस्टेंस का जोखिम भी बड़ा हो सकता है। फील्ड- स्तर पर ÷माल-प्रैक्टिस÷ रोकना, केवल पंजीकृत वेट के निर्देशों से इलाज, विथड्रॉअल पीरियड का पालन, और सरकार की गाइडलाइन्स का क्रियान्वयन-यही टिकाऊ समाधान हैं। इससे पशु-कल्याण, दूध-गुणवत्ता और मानव स्वास्थ्य-तीनों की सुरक्षा संभव है।

12/2022-23

तना छेदक कीटों का जीवन चक्र और रोकथाम

✍ **डॉ. द्वारका** सहायक प्रोफेसर(अतिथि), कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)

✍ **निशा चढ़ार** एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड वि.वि., शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

✍ **डॉ. आनंद कुमार पाण्डेय** सह-प्राध्यापक, कीटशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी केम्पस, चन्द्र शेखर आजाद विश्वविद्यालय कृषि एवं प्रौद्योगिकी

✍ **डॉ. गगनदीप सिंह पटेल** सहायक प्रोफेसर (अतिथि), प्रसार शिक्षा एवं संचार विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)

तना छेदक और फल छेदक कीट दोनों ही किसानों के लिए गंभीर समस्या हैं, जो पौधों के विकास को रोककर उत्पादन और गुणवत्ता में गिरावट लाते हैं। तना छेदक तनों के भीतर छेद करके पोषण प्रणाली को प्रभावित करते हैं जबकि फल छेदक फल के भीतर अंडे देकर उन्हें सड़ा देते हैं। इन दोनों कीटों का जीवन चक्र अंडा, लार्वा, प्यूपा और वयस्क की अवस्था से गुजरता है और ये तेजी से फैल सकते हैं। इनका रोकथाम रासायनिक के बजाय जैविक उपायों द्वारा करना न केवल पर्यावरण के लिए अनुकूल है बल्कि टिकाऊ खेती के लिए भी आवश्यक है। जैविक विधियों जैसे ट्रैपिंग, नीम आधारित छिड़काव, फसल चक्र, परजीवी कीटों का प्रयोग, जैव कीटनाशकों और समय पर निगरानी से इन कीटों पर प्रभावी नियंत्रण संभव है। यह टिकाऊ कृषि और जैविक उत्पादों की सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है।

(1) तना छेदक

1. जीवन चक्र

तना छेदक कीट (जैसे-चावल का तना छेदक Scirpophaga incertulas गन्ने का तना छेदक Chilo auricilius, टमाटर या बैंगन का तना छेदक Euzophera perticella आदि) पौधों की मुख्य तनों को नुकसान पहुँचाते हैं। इनकी जीवन प्रक्रि या निम्न प्रकार से होती है:

अंडा

- मादा कीट पत्तियों की निचली सतह या तनों पर अंडे देती है।
- एक बार में 50-150 अंडे दे सकती है।
- अंडे छोटे, सफेद और गुच्छों में होते हैं।

लार्वा

- अंडों से निकलते ही लार्वा तने के अंदर घुसकर गूदे को खाने लगते हैं।
- यही अवस्था सबसे हानिकारक होती है।
- यह पौधे की पोषण-प्रणाली को बाधित कर देता है, जिससे पौधा सूख जाता है।

प्यूपा

- लार्वा तने के अंदर ही प्यूपा में बदल जाता है या मिट्टी में चला जाता है।
- कोषावस्था 5-10 दिन चलती है।

वयस्क

- प्यूपा से प्रौढ़ कीट निकलता है, जो तितली या पतंगे के रूप में होते हैं।
- इसके बाद यह नए पौधों पर अंडे देकर चक्र को दोहराता है।

2. रोकथाम के जैविक उपाय

खेत की सफाई और फसल अवशेष हटाना

- पुराने तनों, जड़ों और गिरी हुई सूखी पत्तियों को जलाना चाहिए।

फेरोमोन ट्रैप

- 10-12 ट्रैप प्रति एकड़ लगाएं जिससे नर कीट आकर्षित होकर फंस जाएं और प्रजनन चक्र टूटे।

बायो एजेंट्स

- Trichogramma chilonis (अंड परजीवी)- अंडों को परजीवित करके लार्वा बनने से रोकता है।
- Beauveria bassiana] Metarhizium anisopliae जैसे फफूंद लार्वा और प्रौढ़ अवस्था को मारते हैं।

नीम का अर्क

- 5 प्रतिशत नीम तेल या 10 प्रतिशत नीम खली घोल का छिड़काव सप्ताह में एक बार करें।
- फसल चक्र और मिश्रित फसल
- एक ही फसल को लगातार लगाना तना छेदकों के लिए अनुकूल होता है, इसलिए फसल चक्र अपनाएं।

निष्कर्ष

तना छेदक कीटों का जीवन चक्र अंडा, लार्वा, प्यूपा और वयस्क की अवस्था में पूरा होता है, जिसमें लार्वा अवस्था सबसे अधिक हानिकारक होती है क्योंकि यह तनों में छेद कर पौधे की पोषण प्रणाली को नुकसान पहुंचाता है। यह कीट पौधे को कमजोर कर देता है जिससे उसकी वृद्धि रुक जाती है या वह सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए खेत की सफाई, फसल अवशेषों का नष्ट करना, फेरोमोन ट्रैप का उपयोग, जैविक परजीवी जैसे Trichogramma की रिहाई, नीम आधारित कीटनाशकों का छिड़काव तथा फसल चक्र जैसे उपाय अपनाने चाहिए।

12/2022-23

निर्मला जमरा, अनंत कुमार जयराव
रिनेश कुमार, विवेक अग्रवाल
मुकेश कुमार शाक्य, रश्मि चौधरी स्वाती काली
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू, इन्दौर
नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय जबलपुर

डेयरी पशुओं को बाह्य परजीवियों से बचाव एवं प्रबंधन

पशु बहुत सारे बाह्य परजीवी (परजीवी जो परपोषी के शरीर के उपरी सतह पर रहते हैं।) एवं हानिकारक कीट से प्रभावित होते हैं जिससे कि पशुओं की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। पशुओं में बाह्य परजीवी का संक्रमण पशुपालन व्यवसाय के लिए अत्यंत चिंता का विषय है। पशुओं पर रहने वाले मुख्य बाह्य परजीवी किलनी, माइट्स, मक्खी एवं जूँ हैं जो कि पशु के त्वचा पर रहते हैं एवं शरीर के उपरी सतह या ज्वचा के अंदर जाकर अपना आहार लेते हैं। गर्म प्रदेशों में गर्मी के मौसम में किलनी एवम् मक्खी का प्रकोप अत्यधिक होता है जबकि माइट्स एवम् जूँ का प्रकोप सर्दी की महीनों में अधिक होता है। अगर इन बाह्य परजीवियों की संख्या को नियंत्रित नहीं किया जाता है तो पशुओं की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है तथा पशुपालकों को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है क्योंकि ये परजीवी पशुओं को प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष नुकसान देते है।

किलनी: किलनी रक्त चूसने वाले बाह्य परजीवियों का एक समूह है जो कि पशुओं के शरीर पर रक्त चूसने वाले अल्प समय (कुछ दिन) तक मौजूद रहते है। ये पशुओं में रक्त अल्पता, दुर्बलता, अन्य बिमारियों का प्रसार आदि करते हैं तथा खाल, ऊन एवं बाल का प्रत्यक्ष रूप से नुकसान करते है। किलनी का जीवन चक्र चार चरणों में पूरा होता है जैसे कि अंडा, लार्वा, निम्फ एवं वयस्क। लार्वा एवं निम्फ जीवन चक्र के अगले चरण में जाने से पहले परपोषी के शरीर से रक्त की आवश्यकता होती है। किलनी बहुत ही कठोर होते है एवं बिना आहार के लगभग दो साल तक जीवित रहने में सक्षम होते हैं। किलनी जब एक बार परपोषी के शरीर से संलगन होते हैं जो प्रजनन से सप्ताह भर पहले तक रक्त चूसते है। रक्त चूसने के बाद मादा किलनी अंडे देती है। किलनी को निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है।

(1) **एक परपोषी किलनी-** इस वर्ग के किलनी के जीवन चक्र का सभी चरण एक ही पशु पर पूरा हो जाता है। उदाहरण- बुफिलस प्रजाति, ऑटोवियस मेगनिन आदि। इस वर्ग के किलनी की संख्या को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

(2) **बहुल परपोषी किलनी-** इस वर्ग के किलनी अपना जीवन चक्र दो या अधिक पशुओं के शरीर पर पूरा करते है। जीवन चक्र के हरेक चरण को पूरा करने के बाद ये पशु के शरीर से अलग हो जाते हैं एवं अन्य पशु के शरीर से चिपक जाते हैं। विभिन्न चरण के लिए परपोषी समान या विभिन्न प्रजाति के भी हो सकते हैं। उदाहरण- इक्सोडीज जाति, रीपीसिफेलस जाति आदि। किलनी के दो प्रकार के वर्ग होते है कठोर किलनी एवम् नरम किलनी। कठोर किलनी का पृष्ठीय भाग कठोर होता है एवम् एक कड़ा आवरण मौजूद होता है। इसके विपरीत नरम किलनी का पृष्ठीय स्तर चमड़े की तरह लचीला होता है। किलनी द्वारा विभिन्न रोगों के रोगाणुओं को प्रसारित करने की क्षमता का विश्व स्तर पर महत्वपूर्ण आर्थिक महत्व है। कई विकासशील देशों में किलनी जनित रोगों का पशुओं के स्वास्थ एवम् प्रबंधन संबंधी एक प्रमुख समस्या का विषय है।

माइट्स- पशुओं मे माइट्स का संक्रमण चर्म रोग पैदा करता है जिसे खाज के नाम से भी जाना जाता है। यह परजीवी त्वचा के अंदर 0.5-1 इंच की गहराई तक जाकर वहीं पर अंडे देते हैं। माइट्स रक्त एवं लसीका चूसने के लिए बहिःत्वचा को बेध देते है। बाह्य त्वचा पर हुए जख्म से सीरम निःस्रावित होकर सतह पर आ जाते है और थक्के बनाता है और इस प्रकार त्वचा पर पपड़ी बन जाती है। माइट्स के अंडो से छः पैर वाला लार्वा निकलता है जो कि बाद में आठ पैरों वाला प्रोटोनिम्फ, ट्राइटोनिम्फ एवं वयस्क में परिवर्तित हो जाता है। ये अपना जीवन चक्र 14 दिनो मे पूरा कर लेते है। परपोषी के शरीर पर माइट्स के जीवनचक्र के सभी चरण एक साथ पाए जा सकते है। पशुओं में माइट्स का संक्रमण अव्यधिक खुजलाहट एवं असुविधा पैदा करते हैं जिसके कारण पशुओं के अहार अंतर्ग्रहण एवं उत्पादन में कमी हो जाती है। खुजली एवं रगड़ के कारण पशुओं के खाल एवं ऊन का अत्यधिक नुकसान होता है। अधिक खुजली के कारण त्वचा में पपड़ी पड़ कर दरार पड़ जाता है तथा त्वचा मोटी हो जाती है एवं संक्रमण के कारण फोड़ा या फुंसी निकल जाता है जो कि अत्यंत कष्टदायी होता है। विभिन्न प्रजाति के पशुओं में माइट्स का संक्रमण खाज पैदा करता है पर कुछ माइट्स प्रजाति परपोषी विशेष होते हैं एवं एक प्रकार के परपोषी प्रजाति में दूसरी परपोषी प्रजाति की अपेक्षा अधिक संक्रमण करते हैं।

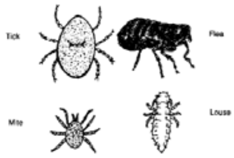

पशुओं में होने वाले विभिन्न प्रकार के खाज

(1) **सारकोप्टिक खाज-** यह प्रायः कुत्तों, भेड़, बकरी एवम् घोड़ों में मिलता है। यह अधिकतर पशुओं के माथे, गर्दन, सींग एवं पूँछ की जड़ में मिलता है। संक्रमित स्थान पर लाल दाने निकल आते है जो शीघ्र ही फोड़ो में बदल जाता है एवं इनके फूटने पर गाढ़ा-पीला तैलीय स्त्राव निकलता है तथा पशु जब संक्रमित स्थान को रगड़ता है तो वहाँ के बाल झड़ जाते हैं।

(2) **सोरोप्टिक खाज-** यह प्रायः भेड़ों में देखने को मिलता है। यह शरीर के गर्दन, पीठ, पूँछ की जड़ एवम् पैरों में होता है। ये परजीवी शरीर के ऐसे भागों की त्वचा पर रहते हैं जो बालों या ऊन से अच्छी तरह

(3) **कोरिओप्टिक खाज-** यह भेड़ों एवम् घोड़ो में देखने को मिलता है। यह शरीर के गर्दन, पीठ, पूँछ और पैरों में होता है। माइट्स की संख्या सर्दी के मौसम में सबसे अधिक होती है एवम् गर्मी के मौसम में इसकी संख्या में कमी आ जाती है।

जूँ- यह परजीवी अपना पूरा जीवन-चक्र एक ही पशु के शरीर पर पूरा करता है। यह सभी घरेलु पशुओं में विषेशकर ठंड के दिनो में शरीर पर बालों के बीच पाया जाता है। भारत में पशुओं में जूँ का संक्रमण बहुत ही सामान्य है। ये अपना पूरा जीवन चक्र एवम् जीवन चक्र के सभी चरण एक साथ ही पशु के शरीर पर बिताता है। जूँए को मुख्यतः दो वर्ग में विभाजित किया गया है। जैसे कि रक्त चूसने वाले जूँ एवं काटने वाले जूँ उदाहरण- चूसने वाले जूँए- लिग्लोकैंथस भिटुलि पिडेलिस काटने वाले जूँए-डैमालिनिया बोमिस ओविस पशुओं में जुओं का संक्रमण खुजलाहट पैदा करता है एवम् अत्यधिक रगड़ने एवं खुजलाने से शरीर पर घाव बन जाता है तथा खाल मोटी हो जाती है, जिससे खाल एवं ऊन की गुणवत्ता में कमी आ जाती है। काटने वाली जूँए त्वचा एवं बाल से अपना पोषण लेते है जबकि चूसने वाले जूँए रक्त को चूसकर खुद का पोंषण करते है। अधिक संख्या में जुओं के संक्रमण से पशुओं को अत्यधिक बैचेनी होती है तथा वे खाना पीना भी छोड़ देते हैं जिससे उनकी उत्पादन क्षमता एवं वृद्धि में कमी आ जाती है।

मक्खी- वयस्क मक्खी पशुओं के रक्त, पसीना, त्वचा से निकलने वाले स्त्राव, लार आदि की तरफ आकर्षित होते हैं एवम् इससे अपना भरण करते है। मक्खी बहुत सारे रोग जनित रोगाणुओं के वाहक भी होते है। मुख्यतः इसे दो वर्गो में विभाजित किया गया है। (1) काटने वाली मक्खी-सी-सी मक्खी, स्त्रेवल मक्खी आदि (2) बिना काटने वाली मक्खी-फेस मक्खी आदि बिना काटने वाली मक्खी आँख नाक एवं घाव से निकलने वाले स्त्राव के उपर निर्भर रहती है। ये पशुओं को सामान्यतः चरने एवं आराम करने के समय परेशान करती हैं जिससे पशुओं के उत्पादन एवम् वृद्धि में कमी आ जाती है। बिना काटने वाली मक्खी किसी विशेष रोगाणुओं के जैविक वाहक तो नहीं होते हैं लेकिन उनके भरण एवम् प्रजनन की आदत तथा मुँह एवं पैर की संरचना के कारण ये विभिन्न प्रकार के कृमि, विषाणु एवम् अन्य रोगाणुओं के यांत्रिक वाहक का कार्य करते हैं। काटने वाली मक्खी पशुओं को अधिक परेशान करती है एवम् बहुत सारे रोगाणुओं के जैविक वाहक भी होते है। चूँकि ये पशुओं के रक्त के उपर निर्भर रहते हैं अतः पशुओं में रक्त की कमी एवं अतिसंवेदनशीलता हो जाती है। सामान्यतः सभी घरेलू पशुओं को वृद्धि एवं उत्पादन मक्खियों के कारण प्रभावित होते हैं जिससे कि पशुपालकों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

नुकसान : यह परजीवियों द्वारा पशुओं को होने वाले कष्ट कष्ट एवम् असुविधा के कारण दूध उत्पादन एवम् शरीरिक वृद्धि दर में कमी आ जाती है। किलनी, माइट्स एवम् मक्खी खाल आदि का नुकसान करते है या फिर पशुओं को शरीर के रगड़ने तथा खुजलाने के कारण होने वाले घाव के कारण बाल, खाल की क्षति होती है। इन बाह्य परजीवियों के कारण पशुओं में खून की कमी, संक्रमण, खुजली, त्वचा में छेद आदि हो जाता है। किलनी द्वारा फैलाये गए रोग- बबीसियोसिस, एनाप्लाज्मोसिस, डरमैटोफिलोसिस, थिलेरियोसिस आदि मक्खी द्वारा फैलाये गए रोग- थनैला, ट्राइपैनोसेमियेसिस, किरैटोकंजक्टीवाइसिस आदि मिज द्वारा फैलाये गए रोग- ब्लुटंग, अफ्रीकन हॉर्स सीकनेस आदि।

रोकथाम एवं उपचार : बाह्य परजीवियों के संक्रमण के रोकथाम एवम् उपचार में उनके जीवन चक्र की अहम् भूमिका होती है। जैसे कि जूँ अपना पूरा जीवन चक्र पशु के शरीर पर व्यतीत करती हैं अतः रोकथाम के लिए केवल पशु का उपचार पर्याप्त है। लेकिन परपोषी के शरीर से अलग होने के बाद परजीवी यदि वातावरण में मौजूद रहते हैं तो रोकथाम के लिए पशु के साथ-साथ वातावरण का उपचार भी अनिवार्य है। अथवा संक्रमित स्थान का उपयोग पशुओं के लिए कुछ समय तक बंद कर देना चाहिए। बाह्य परजीवियों का संक्रमण पशुओं के पोषण स्तर, अनुवांशिकता एवम् तनाव के स्तर से काफी प्रभावित होती है। अतः बाह्य परजीवियों के संक्रमण से बचाने के लिए पशुओं को संतुलित आहार देना चाहिए। अच्छे पोषण से पशु की त्वचा साफ एवम् चमकीली रहती है तथा माइट्स एवं किलनी के संक्रमण की संभावना कम हो जाती है। पशुओं को अधिक भीड़ वाली जगह पर नहीं रखना चाहिए एवं प्रतियेक पशु को उनके सामान्य गतिविधि हेतु पर्याप्त जगह होनी चाहिए। पशुओं को धूप में रखना बाह्य परजीवी के संक्रमण से बचाने का सबसे सरल एवं आसान तरीका है। पशुओं के प्रतिस्थापित समूह को हमेशा स्वस्थ एवं स्वच्छ वातावरण में रह रहे जानवरों से ही लाना चाहिए। पशुशाला की दिवारों पर छिद्रों व दरार को बंद करे जिससे किलनी छिप ना सके। करना कर पशुशाला की सफाई नियमित रूप से करना चाहिए एवं गोबर एवं पेशाब को इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए।

जैविक रोकथाम: हल्दी एवं नीम के छाल का बारीक चूर्ण पशु के शरीर पर छिड़काव जूँओं की रोकथाम के लिए काफी प्रभावशाली होता है। कुछ तेल जैसे कि पुदीना के तेल का उपयोग भी पशुओं में बाह्यपरजीवी के संक्रमण को रोकने के लिए गंधक पाउडर या पाइरेथ्रिन पाउडर का पशुओं पर छिड़काव काफी प्रभावी साबित होता है। ये माइट्स के लार्वा को जो कि शरीर के उपरी सतह पर रहते हैं, नष्ट करता है।

बकरियों में गिड

✍ डॉ. क. निर्मलकर, डॉ. वाई. वर्मा
✍ डॉ. एम. जाटव, डॉ. ए. दुबे, डॉ. एम. स्वामी

पशु विकृती विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

गिड रोग

यह भेड़ और बकरियों में होने वाला एक कीड़े से जुड़ा रोग है। यह रोग एक विशेष कीड़े (टेपवर्म) के कारण होता है। यह कीड़ा असल में कुत्तों और लोमड़ियों की आंत में रहता है। जब इनकी गंदगी (मल) के साथ कीड़े के अंडे बाहर आते हैं और भेड़-बकरियाँ चारे या घास के साथ इन्हें खा लेती हैं, तो अंडों से निकले कीड़े (लार्वा), उनके शरीर में जाकर सिस्ट बना लेते हैं।

ज़्यादातर यह सिस्ट दिमाग में बनते हैं। इसकी वजह से जानवरों में तंत्रिका (नर्वस) सिस्टम से जुड़ी समस्याएँ दिखने लगती हैं। बीमार भेड़ या बकरी बार-बार चक्कर खाती है, एक ही दिशा में गोल-गोल घूमती है, कभी-कभी सिर दीवार या ज़मीन से दबाती है और चलते समय लड़खड़ाती है। इस रोग को ही किसान लोग गिड या स्टर्डी कहते हैं।

(बकरी के दिमाग में सिस्ट)

गिड रोग के लक्षण

- गिड रोग से ग्रसित भेड़ या बकरी अपना सिर अजीब तरह से ऊपर उठाती है और उसे बार-बार हिलाती है।
- इसमें सिर एक तरफ झुक जाता है और उसी दिशा में जानवर गोल-गोल घूमता है।
- कई बार जानवर को चलने-फिरने में कठिनाई होती है, वह लड़खड़ाकर चलता है या गिर जाता है।
- कुछ मामलों में भेड़-बकरियाँ अंधी हो जाती हैं।
- जानवर अक्सर झुंड से अलग-थलग हो जाते हैं ।
- जैसे-जैसे दिमाग में सिस्ट का आकार बढ़ता है, वैसे-वैसे चक्कर आना, सिर का झुकना, संतुलन बिगड़ना और अंधापन जैसे लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

(टेपवर्म के मेटा सिस्टोड)

गिड रोग का निदान

- गिड का पता लगाने के लिए सबसे पहले पशु की आयु और तंत्रिका तंत्र से जुड़े लक्षणों को देखा जाता है।
- अगर भेड़-बकरी चक्कर खा रही हो, सिर हिला रही हो, एक ही दिशा में घूम रही हो या अंधी हो रही हो तो यह गिड के लक्षण हो सकते हैं।
- पक्के तौर पर सिस्ट कहां है, यह जानने के लिए अल्ट्रासाउंड, एमआरआई और सीटी-स्कैन जैसी आधुनिक जांचें बहुत उपयोगी हैं। इनसे सिस्ट का सही स्थान दिमाग या रीढ़ की हड्डी में आसानी से देखा जा सकता है। इसके अलावा, कभी-कभी मस्तिष्कमेरु द्रव (CSF) की जांच भी की जाती है, जो कमर से लिया जाता है।

गिड का उपचार

दवाओं से इलाज

- 1.एल्बेंडाजोल :खुराकः 25 द्द्द प्रति किलो वजन, 5-6 दिन तक लगातार।
  (यह दवा दिमाग तक पहुँचकर कीड़े को मारती है।)
- 2.प्राजिक्वेंटेल :खुराकः 50-100 mg प्रति किलो वजन।

(इसे फेनबेंडाजोल के साथ देने पर असर ज्यादा अच्छा होता है।)

दवा से कीड़ा मर जाता है, लेकिन दिमाग में बना फोड़ा तुरंत नहीं मिटता, धीरे-धीरे असर दिखता है।

ऑपरेशन से इलाज

अगर दिमाग में सिस्ट एक ही जगह है और निकालना आसान है, तो ऑपरेशन करके निकाल सकते हैं। भेड़-बकरी में ऑपरेशन की सफलता लगभग 70-80% रहती है।

(सर्जरी से सिस्ट का निवारण)

गिड का रोकथाम और नियंत्रण

परजीवी नियंत्रण

- भेड़ या बकरी संक्रमित हो जाए तो उसे बाकी झुंड से अलग करके सही इलाज करवाना चाहिए।
- मरे हुए जानवरों को कभी भी खुले में न छोड़ें, बल्कि उन्हें सही तरीके से दफनाएँ या नष्ट करें ताकि कुत्ते उनका मांस न खा सकें।
- मरे हुए जानवरों के दिमाग में सिस्ट मिले तो उसे भी सुरक्षित तरीके से नष्ट करना चाहिए।

स्वच्छता

- बकरियों के रहने की जगह, चारागाह और पानी पीने के बर्तनों को साफ रखें।
- मल-मूत्र को नियमित रूप से साफ करें।
- पशुशाला में उचित हवा का बहाव सुनिश्चित करें।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

रेबीज? कारण, लक्षण और इलाज

✍डॉ. आयुषी चौरसिया
✍डॉ. राजेश कुमार शर्मा, डॉ. क्षेमंकर श्रमण
पशु भेषज एवं विष विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

रेबीज क्या है? : रेबीज एक वायरस जनित बीमारी है जो मुख्यतः जानवरों से मनुष्यों में संचारित होती है, यह बीमारी विशेषतः संक्रमित कुत्तों के काटने से होती है। विश्व भर में लगभग 59,000 लोग प्रति वर्ष रेबीज से मरते हैं, जिनमें से 95% मामला एशिया और अफ्रीका से हैं। भारत में रेबीज की स्थिति चिंताजनक है–यहाँ अनुमानित 18,000-20,000 लोग प्रति वर्ष इसी बीमारी के कारण मृत्यु पाते हैं, और इनमें से 30-60% मामले बच्चों के हैं। एक बार जब कोई व्यक्ति रेबीज के लक्षण दिखाना शुरू कर देता है और समय पर उचित उपचार न मिले तो यह रोग निश्चित मृत्यु का कारण बनता है। इस कारण से, जिन लोगों को रेबीज होने का खतरा हो सकता है, उन्हें सुरक्षा के लिए रेबीज के टीके लगवाने चाहिए।

रेबीज होने पर क्या होता है?: रेबीज वायरस का संक्रमण आमतौर पर किसी संक्रमित जानवर के काटने से होता है, जिससे वायरस शरीर में प्रवेश करता है। यह वायरस केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में नसों में बहुत धीरे-धीरे चलता है। जब यह मस्तिष्क तक पहुंचता है, तो यह तंत्रिका तंत्र से संबंधित समस्याओं का कारण बनता है। वहां से रेबीज वायरस संक्रमित व्यक्ति को कोमा और यह मौत की ओर ले जाता है।

रेबीज होने के क्या कारण हैं?: मनुष्यों में रेबीज का प्राथमिक कारण रेबीज वायरस है, जो लिसावायरस जीनस से संबंधित है। यह वायरस आमतौर पर संक्रमित जानवरों की लार के माध्यम से फैलता है। **रेबीज के संचरण के कुछ सामान्य तरीके यहां दिए गए हैं :-**

1.जानवरों का काटना: मनुष्यों में रेबीज संचरण का सबसे आम तरीका संक्रमित जानवर के काटने से होता है, विशेष रूप से कुत्ते, बिल्ली, चमगादड़, रैकून, लोमड़ी और स्कंक जैसे स्तनधारियों (mammals) के काटने से। रेबीज वायरस संक्रमित जानवरों की लार में मौजूद होता है और उनके काटने से फैल सकता है।

2.खरोंच और चाटना: रेबीज़ ज़्यादातर जानवर के काटने से फैलता है। लेकिन अगर संक्रमित जानवर की लार, टूटी हुई त्वचा या आँख, नाक, मुँह जैसी जगह के संपर्क में आते हैं, तो खरोंच या चाटने से भी यह रोग फैल सकता है।

3.एरोसोलिज्ड (वायुमंडलीय) वायरस का अंत:श्वसन: जंगली गुफाओं में जहाँ चमगादड़ रहती हैं, वहाँ जाने पर रेबीज वायरस साँस के माध्यम से शरीर में प्रवेश कर सकता है, जो बीमारी का कारण बन सकता है। इसके अलावा, दुर्लभ मामलों में माँ से शिशु में भी रेबीज वायरस का संक्रमण संचारित हो सकता है।

किस जानवर से रेबीज हो सकता है?: कोई भी स्तनधारी जानवर रेबीज वायरस फैला सकता है। रेबीज़ एक वायरल बीमारी है जो मनुष्यों सहित सभी स्तनधारियों को प्रभावित कर सकती है। कोई भी स्तनपायी संभावित रूप से रेबीज वायरस से संक्रमित हो सकता है। कई क्षेत्रों में, चमगादड़ रेबीज वायरस का एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक कारण हैं। वे काटने या खरोंच के माध्यम से वायरस को मनुष्यों और अन्य जानवरों तक पहुंचा सकते हैं। लोमड़ियाँ भी रेबीज़ वायरस से संक्रमित हो सकती हैं और इसे अन्य जानवरों या मनुष्यों तक पहुँचा सकती हैं। दुनिया के कई हिस्सों में कुत्ते रेबीज़ संचरण का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। टीकाकरण कार्यक्रमों ने घरेलू कुत्तों की आबादी में रेबीज को नियंत्रित करने में मदद की है। यदि किसी संक्रमित जानवर के काटने पर बिल्लियाँ भी संक्रमित हो सकती हैं और रेबीज़ फैला सकती हैं। बिल्लियों में भी रेबीज़ की रोकथाम के लिए टीकाकरण महत्वपूर्ण कदम है। गाय, घोड़े और सूअर जैसे पशुधन जानवरों को भी किसी रेबीज ग्रस्त जानवर द्वारा काटे जाने पर रेबीज हो सकता है। दुर्लभ मामलों में, चूहे रेबीज वायरस से संक्रमित हो सकते हैं, एवं संक्रमण फैला सकते हैं। भेड़िये और भालू जैसे अन्य जंगली मांसाहारी संभावित रूप से रेबीज से संक्रमित हो सकते हैं और रेबीज संक्रमण फैला सकते हैं।

रेबीज के जोखिम कारक क्या है?: कई कारक रेबीज के जोखिम और संचरण के जोखिम को बढ़ा सकते हैं। निवारक उपाय करने और यदि आवश्यक हो तो उचित चिकित्सा देखभाल प्राप्त करने हेतु इन जोखिम कारकों को समझना आवश्यक है। **रेबीज के सामान्य जोखिम कारकों में शामिल हैं :-**

1.संक्रमित जानवरों से: रेबीज के लिए प्राथमिक जोखिम कारक रेबीज वायरस से संक्रमित जानवरों के संपर्क में आना है। इसमें काटने, खरोंचने या संक्रमित जानवरों की लार के संपर्क में आना शामिल है।

2.भौगोलिक स्थिति: रेबीज़ का ख़तरा भौगोलिक स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। कुछ क्षेत्रों में, चमगादड़, रैकून, स्कंक और लोमड़ी जैसे कुछ जानवर भी वायरस के सामान्य वाहक हैं, जिससे जोखिम का खतरा बढ़ जाता है।

3.व्यावसायिक जोखिम: जो व्यक्ति जानवरों के साथ काम करते हैं, जैसे पशु चिकित्सक, पशु नियंत्रण अधिकारी, वन्यजीव शोधकर्ता और प्रयोगशाला कर्मचारी, संभावित रूप से संक्रमित जानवरों के संपर्क में आने के कारण रेबीज के जोखिम में वृद्धि हो सकती है।

4.पालतू जानवर और पशुधन: बिना टीकाकरण वाले पालतू जानवर, जैसे कि कुत्ते और बिल्लियाँ संभावित रूप से मनुष्यों में वायरस फैला सकते हैं। किसी रेबीज ग्रस्त जानवर के काटने पर पशुधन को भी रेबीज का खतरा हो सकता है।

5.वन्य जीवन की देखरेख: वन्यजीवों, विशेष रूप से असामान्य व्यवहार करने वाले या बीमार दिखने वाले जानवरों को संभालने से रेबीज के संपर्क में आने का खतरा बढ़ जाता है। वायरस के संभावित संचरण को रोकने के लिए जंगली जानवरों के सीधे संपर्क से बचना महत्वपूर्ण है।

6.टीकाकरण का अभाव: पालतू जानवरों, विशेष रूप से कुत्तों और बिल्लियों को रेबीज के खिलाफ टीका लगाने में विफलता से जानवरों की आबादी के भीतर संचरण और मनुष्यों के संपर्क में आने का खतरा बढ़ जाता है।

रेबीज के लक्षण : बुखार,थकान, काटने के घाव में जलन, खुजली, झुनझुनी, दर्द या सुन्नता, खाँसी, गला खराब होना, मांसपेशियों में दर्द, मतली और उल्टी और दस्त।

उग्र रेबीज लक्षण: आक्रामकता, बेचैनी, दौरे, मतिभ्रम, मांसपेशियों में मरोड़, बुखार, तीव्र हृदय गति, तेजी से सांस लेना, अत्यधिक लार आना, दो अलग-अलग आकार की आँख की पुतली, चेहरे का लकवा और पानी/पीने का डर (हाइड्रोफोबिया)।

पैरालिटिक रेबीज के लक्षण : बुखार, सिरदर्द, गर्दन में अकड़न, कमजोरी, विशेष रूप से शरीर के उस हिस्से से शुरू होकर जिसे काटा गया और शरीर के अन्य हिस्सों में बढ़ रहा, झुनझुनी, "पिन और सुई" या अन्य असाधारण संवेदनाएं, लकवा और कोमा।

रेबीज का निदान कैसे किया जाता है? अधिकांश बीमारियों के विपरीत, आपको रेबीज के निदान के लिए लक्षणों की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि आपको किसी जंगली जानवर या किसी पालतू जानवर ने काट लिया है या खरोंच दिया है, जिसे रेबीज हो सकता है, तो तुरंत अपने चिकित्सक से इस बारे में बताना चाहिए और उचित उपचार लेना शुरू कर देना चाहिए। चिकित्सक आपके घाव या खरोंच की जाँच करेंगे और आपसे जानवर के बारे में पूछेंगे। यदि आपको किसी पालतू जानवर ने काटा है तो चिकित्सक आपसे उसके निर्धारित टीकाकरण की जानकारी साझा करने के लिए कह सकते हैं। मिली जानकारी के अनुसार डॉक्टर आपको लार परीक्षण, त्वचा बायोप्सी, मस्तिष्कमेरु द्रव परीक्षण, रक्त परीक्षण, और एमआरआई जांच करवाने के लिए कह सकते हैं।

।। श्री गणेशाय नम ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार
खाद बीज एवं कृषि कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335
01/2023-24

'घर पर ही जानें-आपकी मिट्टी रेतीली, चिकनी या दोमट है?'

डॉ. मुकेश कुमार धाकड़ सहायक प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, आरएनटीयू, रायसेन (म.प्र.)

डॉ. दिनेश सिंह तोमर डीन, (पादप रोग विज्ञान), कृषि महाविद्यालय, जेएनकेवीवी, टीकमगढ़

डॉ. एच.डी. वर्मा डीन, (सस्य विज्ञान), कृषि संकाय, आरएनटीयू, रायसेन (म.प्र.)

डॉ. अशोक कुमार वर्मा (एसोसिएट डीन) कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि संकाय, आरएनटीयू, रायसेन

डॉ. ऋषिकेश मंडलोई सहायक प्राध्यापक, कृषि कीट विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, आरएनटीयू, रायसेन

डॉ. मनोहर सरयाम सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, कृषि संकाय, आरएनटीयू, रायसेन

डॉ. ब्रजकिशोर राजपूत सहायक प्राध्यापक, मृदा विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, आरएनटीयू, रायसेन

डॉ. धीरेन्द्र कुशवाह सहायक प्राध्यापक, सस्य विज्ञान, कृषि संकाय, आरएनटीयू, रायसेन (म.प्र.)

मिट्टी का पी एच जानना बहुत ज़रूरी है क्योंकि हर फसल अलग तरह की मिट्टी में अच्छी होती है। आपकी मिट्टी कितनी अम्लीय (खट्टी) या क्षारीय (मीठी) है। यह 0 से 14 तक के पैमाने पर मापा जाता है:

प्रस्तावना: खेत या गमले की उपजाऊ मिट्टी हर पौधे के लिए सबसे जरूरी आधार है। मिट्टी की बनावट–यानी उसमें रेत (सैंड), चिकनाई (क्ले) और गाद (सिल्ट) का अनुपात–पौधों की बढ़वार, जल धारण क्षमता, पोषक तत्वों के अवशोषण और फसल की पैदावार को सीधे प्रभावित करती है। अक्सर किसान या गार्डनर सोचते है कि क्या उनकी मिट्टी रेतीली, चिकनी या दोमट (loam) है, क्योंकि इसकी जानकारी होने से ही सही फसल, खाद/उर्वरकों की मात्रा और जल प्रबंधन तय किया जा सकता है।

इस लेख के माध्यम से हम बेहद आसान, घरेलू तरीकों से यह जानेंगे कि आपकी मिट्टी का प्रकार क्या है, और हर प्रकार की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं–ताकि आप अपने पौधों के लिए सही निर्णय ले सकें।

मुख्य विशेषताएँ:

* pH 7: तटस्थ मिट्टी (न ज्यादा खट्टी, न ज्यादा मीठी)। * pH 7 से कम: अम्लीय मिट्टी (जैसे pH 4, 5, 6)। * pH 7 से ज्यादा: क्षारीय मिट्टी (जैसे pH 8, 9, 10)। *ज्यादातर पौधों के लिए pH 6.5 से 7.5 सबसे अच्छा होता है, लेकिन कुछ पौधों को खास pH चाहिए।

यहाँ हम आपको दो आसान घरेलू तरीके बता रहे हैं, जिनसे आप मिट्टी की जाँच कर सकते हैं। ये तरीके इतने सरल हैं कि कोई भी किसान इन्हें आसानी से आजमा सकता है।

विभिन्न प्रकार कि मिट्टियों की जाँच करने की विधियाँ:

1. अम्लीय मिट्टी की जाँच कैसे करें- * 1 चम्मच मिट्टी * 1 चम्मच बेकिंग सोडा (खाने का सोडा) * थोड़ा पानी (अगर मिट्टी सूखी हो)

कैसे करें: * एक कटोरी में 1 चम्मच मिट्टी लें। * अगर मिट्टी बहुत सूखी है, तो उसमें थोड़ा सा पानी डालकर नम करें। * मिट्टी के ऊपर 1 चम्मच बेकिंग सोडा छिड़कें। * ध्यान से देखें कि मिट्टी में बुलबुले बन रहे हैं या नहीं। * अगर मिट्टी में बुलबुले बनते हैं, तो आपकी मिट्टी अम्लीय (pH 7 से कम) है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बेकिंग सोडा मिट्टी के अम्लीय

तत्वों के साथ मिलकर कार्बन डाइऑक्साइड गैस बनाता है, जो बुलबुले के रूप में दिखता है। * अगर बुलबुले नहीं बनते, तो मिट्टी अम्लीय नहीं है।

2. **क्षारीय मिट्टी की जाँच कैसे करें** * 1 चम्मच मिट्टी * थोड़ा सा सफेद सिरका (विनेगर)

कैसे करें: * एक कटोरी में 1 चम्मच मिट्टी लें। * मिट्टी के ऊपर थोड़ा सा सिरका डालें। * ध्यान से देखें कि मिट्टी में बुलबुले बन रहे हैं या नहीं। * अगर मिट्टी में बुलबुले बनते हैं, तो आपकी मिट्टी क्षारीय (pH 7 से ज्यादा) है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सिरका मिट्टी में मौजूद क्षारीय तत्वों (जैसे कैल्शियम कार्बोनेट) के साथ मिलकर बुलबुले बनाता है। * अगर बुलबुले नहीं बनते, तो मिट्टी क्षारीय नहीं है।

मिट्टियों के पी एच के आधार पर फसलों का चयन

अम्लीय मिट्टी (pH 7 से कम): ऐसी मिट्टी में ब्लूबेरी, अजेलिया, रोडोडेंड्रोन और आलू जैसे पौधे अच्छे उगते हैं। अगर आपकी मिट्टी बहुत ज्यादा अम्लीय है (जैसे pH 4 या 5) और आप दूसरे पौधे उगाना चाहते हैं, तो मिट्टी में चूना (लाइम) मिलाकर pH को बढ़ा सकते हैं।

क्षारीय मिट्टी (pH 7 से ज्यादा): ऐसी मिट्टी लैवेंडर, पत्तागोभी बीन्स और कई जड़ी-बूटियों के लिए अच्छी होती है। अगर मिट्टी बहुत ज्यादा क्षारीय है (जैसे pH 8 या 9), तो आप सल्फर या जैविक खाद (जैसे कम्पोस्ट) मिलाकर पी एच को कम कर सकते हैं।

तटस्थ मिट्टी (pH 6.5 से 7.5): अगर आपकी मिट्टी का pH 6.5 से 7.5 के बीच है, तो यह ज्यादातर पौधों हेतु अच्छी होती है। किसानों के लिए बहुत उपयुक्त और अधिक प्रभावी और व्यावहारिक सलाह

1.**सैंपलिंग विधि:** * खेत के प्रत्येक प्रमुख हिस्से से/3-4 जगहों से अलग-अलग सैंपल लें और उन्हें मिलाकर मिश्रित सैंपल तैयार करें। * हर नई फसल या हर दो साल में मिट्टी की जांच दोहराना बेहतर है।

2.**मिट्टी सुधार के लिए:** * जैविक खाद, गोबर, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट नियमित डालें। * कार्बनिक पदार्थों (press mud, हरी खाद/crop residue, mulching) का प्रयोग भी फायदेमंद है।

4.**मिट्टी की सेहत के लिए अतिरिक्त सुझाव:**

* **मल्चिंग (Mulching) करें:** सूखी घास या पत्तों की लेयर मिट्टी की सतह पर डालें, नमी और पोषक तत्व बने रहेंगे। * हर दो-तीन साल में फसल चक्र (Crop rotation) अपनाएं। *जरूरत हो तो जैविक उर्वरकों के साथ-साथ, संतुलित रासायनिक उर्वरक (NPK, सूक्ष्म पोषक तत्व) भी प्रयोग करें–लेकिन हमेशा मिट्टी की जांच के बाद।

5. **सरकारी व तकनीकी संसाधनों का लाभ उठाएं:** *मृदा स्वास्थ्य कार्ड (Soil Health Card) योजना के बारे में किसान भाइयों को जानकारी दें, जिससे पूरी रिपोर्ट और करेक्ट सुधार योजना मिलती है। फसल या मिट्टी के अनुसार पीएच की आवश्यकता जानें * हर फसल के लिए pH का उपयुक्त रेंज अलग होता है (जैसे, गेहूं के लिए 6.0 से 7.5, धान हेतु 5.5 से 7.0) पहले तय करें कि आपकी फसल/सब्जी के लिए कौन सा pH सही है, और उसी हिसाब से सुधार करें।

6. **मिट्टी में जैविक खाद की मात्रा और तरीका:** * जैविक खाद का नियमित प्रयोग करें–खरीफ और रबी दोनों सीजन से पहले/या फसल परिवर्तन के दौरान। * कम्पोस्ट, गोबर की खाद या वर्मी कम्पोस्ट को सतही या गहरी जुताई के समय मिलाएं। * जैविक खाद में स्थानीय सामग्री (नीम, गोमूत्र, छाछ आदि) भी सर्वोत्तम है।

7.**मिट्टी जाँच के बाद रिपोर्ट/परिणाम समझें** * pH टेस्ट रिपोर्ट के आधार पर उर्वरक/खाद का चयन करें। * समय-समय पर दुबारा जाँच जरूरी है, ताकि सुधार का असर जाना जा सके।

मिट्टी की गुणवत्ता से फसल रोगों पर नियंत्रण कैसे होता है

1.**स्वस्थ मिट्टी में जैव विविधता अधिक होती है:** मिट्टी में विभिन्न सूक्ष्मजीव, जैसे लाभदायक जीवाणु, कवक, और सूत्रकृमि रहते हैं जो हानिकारक रोगकारकों और कीटों से मुकाबला करते हैं। ये जीवाणु या कवक पौधों के रोगजनकों को रोकने या उनकी संख्या कम करने में मदद करते हैं। इसके अलावा, ये मिट्टी की पोषक तत्व चक्रण प्रक्रिया को बेहतर बनाकर पौधों को मजबूत बनाते हैं जिससे वे रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं।

01/2023-24

डॉ. अ. पाण्डेय, डॉ. वाई. वर्मा
डॉ. एम. जाटव, डॉ. ए. दुबे, डॉ. एम. स्वामी
पशु विकृती विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

दुधारू पशुओं में ट्रामेटिक रेटिकुलाइटिस

ट्रॉमेटिक रेटिकुलाइटिस (टीआरपी) जिसे आम भाषा में हार्डवेयर डिज़ीज़ भी कहा जाता है, ज़्यादातर गाय और भैंसों में पाया जाने वाला रोग है। यह तब होता है जब जानवर गलती से नुकीली चीजें जैसे कील, तार का टुकड़ा, सुई या आलपिन निगल लेता है। निगली गई

(दुधारू पशु के पेट में नुकीली वस्तुए)

नुकीली वस्तु पेट के दूसरे हिस्से यानी रेटिकुलम में फँस जाती है और वहां की दीवार को छेद देती है। धीरे-धीरे यह वस्तु पेट की और परतों को या कभी-कभी दिल तक भी पहुंच सकती है, जिससे सूजन और गंभीर तकलीफ हो जाती है।

इस बीमारी के मुख्य लक्षणों में चारा कम खाना, जुगाली रुक जाना, दूध उत्पादन कम होना और पेट दबाने पर दर्द दिखाना शामिल है। पशु अक्सर दर्द के कारण गर्दन आगे की ओर झुकाकर खड़े रहते हैं। सांस लेने में दिक्कत भी देखने को मिलती है, खासकर जब नुकीली चीज़ दिल तक पहुंच जाती है।

रोग का कारण

पशु अपने चारे को पहले चबाते नहीं है, केवल निगल जाते है तथा बाद मे फुसरत मे जुगाली करके चबाते है, इसलिए कई बार चारे के साथ कील, तार, सुई, आलपीन व कांच आदि के टुकडे भी चले जाते है और जाकर पशु के पेट में जमा हो जाता है। **आवारा पशु में ये ज्यादा देखने को मिलता है। इसके मुख्य कारण है-**

* निर्माण स्थल में पाई जाने वालो किलो और स्क्रू के कारण
* मशीनरी से निकलने वाले धातु के टुकड़े के कारण
* चारा बांधने वाले तार के कारण

इसके अलावा, कचरो के ढेर वाले स्थानों में चरने की वजह से ट्रॉमेटिक रेटिकुलाइटिस हो सकता है

रोग के लक्षण

1. पशु चारा ग्रहण करना बंद कर देता है।
2. पशु को चलने-फिरने मे तकलीफ होने लगती है एवं कराहने की आवाज करता है।
3. पशु पेट दर्द के लक्षण प्रदर्शित करता है।
4. पशु को सांस लेने पर तकलीफ व दर्द होता है एवं साथ मे असामान्य आवाज भी सुनी जा सकती है।
5. पशु को बुखार आता है।
6. पशु को बार-बार आफरा आता है।

(आम निकली वस्तुए जिससे पशु निगलता है)

निदान -

निदान के लिए ये सब तारिके उपयोग किया जा सकता है-

* एक्स-रे के माध्यम से पेट में धातु की उपस्थिति का पता लगा सकते हैं।

* **अल्ट्रासाउंडोग्राफी:** अल्ट्रासाउंड इमेजिंग पेरिकार्डियल इफ्यूशन और पेरिटोनियल सूजन का आकलन करने में मदद करती है।

रक्त परीक्षण के द्वारा भी हम सूजन के बारे में पता लगा सकते हैं

उपचार के विकल्प

टीआरपी के उपचार के निम्न तरीके है:

1.जब वस्तु अभी भी पेट में है, तब मुंह के माध्यम से पेट के अंदर चुंबक लगाने से धातु की वस्तु को आकर्षित करने और उसे स्थिर करने में मदद मिल सकती है। संक्रमण को रोकने के लिए एंटीबायोटिक्स भी पशुओ को दिया जाता हैं।

2.यदि वस्तु पेट की दीवार में घुस गई है, तब सर्जरी की सहायता से उससे निकाला जाता है।

रोकथाम की रणनीतियाँ-

टीआरपी को रोकने के लिए यह निम्न उपाय उपयोग किये जा सकते है:

1. आहार संबंधी अभ्यास: सुनिश्चित करे की चारे में कोई भी नुकीली वास्तु न हो ।
2. चुम्बकों का उपयोग: पशुओ में चुम्बक के उपयोग से पेट में गई धातुओं को स्थिर रखने में मदद मिल जाती है।

(उपचार में प्रयोग होने वाला चुम्बक)

3. शिक्षा और प्रशिक्षण: टीआरपी के जोखिमों और संकेतों के बारे में खेत मजदूरों को शिक्षित करें ताकि जल्दी पता लगाया जा सके और हस्तक्षेप किया जा सके।
4. नये निर्माण स्थलों से पशुओ को दूर रखें तथा यह सुनिश्चित करें कि सभी पुरानी इमारतें और लोहे का घेरा पूरी तरह हटा दी गई हों, ताकि नुकीली वस्तु तक पहुंच को रोका जा सके।

02/2023-24

पालतू पशुओं में : 'एनीमिया'

डॉ. वाई. सिंह, डॉ. वाई. वर्मा
डॉ. एम. जाटव, डॉ. ए. दुबे, डॉ. एम. स्वामी
पशु विकृती विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

पशुओं में खून की कमी को एनीमिया कहा जाता है। इसमें शरीर में खून की मात्रा कम हो जाती है या खून में हीमोग्लोबिन घट जाता है। इससे शरीर को पर्याप्त ताकत और ऑक्सीजन नहीं मिलती और पशु कमजोर पड़ने लगता है। खून की कमी पशुओं में आम समस्या है। अगर समय पर ध्यान न दिया जाए तो दूध उत्पादन, काम करने की क्षमता और पशु का जीवन : सब प्रभावित होता है।

खून की कमी सिर्फ पशु के शरीर को कमजोर नहीं करती, बल्कि किसान की आर्थिक स्थिति को भी नुकसान पहुँचाती है। जब पशु बीमार हो जाते हैं, तो यह न केवल उनके जीवन के लिए खतरनाक होता है, बल्कि किसान की आजीविका पर भी सीधा असर डालता है। दूध देने वाले पशुओं में उत्पादन घट जाता है, काम करने वाले पशु थककर बैठ जाते हैं, और गंभीर स्थिति में जानवर की जान भी जा सकती है। यही कारण है कि एनीमिया को समय पर पहचानना, उसका सही इलाज करना और उससे बचाव करना बहुत ज़रूरी है।

एनीमिया के कारण

1.खून बहना (रक्तस्राव):

* चोट लगना या किसी दुर्घटना के कारण भी अत्यधिक रक्तस्राव हो सकता है।
* आंत में कीड़े (कृमि) लगना, जैसे टेपवर्म और हुकवर्म, रक्त की कमी का एक महत्वपूर्ण कारण है।
* जूँ, किलनी और मक्खियाँ खून चूसकर भी एनीमिया का कारण बनती हैं।

2.बीमारी या अन्य कारण

* खून में लगने वाले परजीवी जैसे : बेबेसिया और थीलिरीया आदि गंभीर समस्या उत्पन्न करते हैं।
* कुछ जहरीले पौधे जैसे ब्रैकेन फर्न या ब्रैसिकेसी परिवार के सदस्य आदि ज्यादा खाने पर खून की कमी का कारण बनते हैं।
* लंबे समय तक बीमारी रहने पर भी पशु का शरीर कमजोर हो जाता है और खून की कमी हो जाती है।

3. पोषण की कमी

* खुराक में खनिज (लोहा, तांबा) और विटामिन की कमी , खराब गुणवत्ता वाला चारा आदि से भी एनीमिया होता है।
* अगर पशु को लंबे समय तक खराब चारा या केवल सूखा चारा खिलाया जाए तो खून बनने के लिए जरूरी पोषक तत्व नहीं मिल पाते।

एनीमिया से ग्रस्त गाय- सुस्त

लक्षण

* पशु का सुस्त और कमजोर होना खाने-पीने में कमी आ जाना और वजन घट जाना।
* दूध देने वाले पशुओं में दुग्ध उत्पादन का घट जाना
* जीभ, मसूड़ों और आँखों की झिल्ली का रंग लाल की जगह सफेद या फीका पड़ जाना।
* साँस तेज चलना और हृदय की धड़कन बढ़ जाना
* ज्यादा कमजोरी में पशु का गिर जाना या मृत्यु हो जाना (क्रॉनिक)
* परजीवी से होने वाले एनीमिया में बुखार, पीलिया और शरीर का पीला पड़ना भी देखने को मिलता है।

निदान

* पशु का मुँह खोलकर मसूड़ों और आँख की झिल्ली देखें : लाल की जगह सफेद या पीला रंग दिखेगा।
* काम करने की क्षमता अचानक घट जाए।
* बार-बार कमजोरी और दुग्ध उत्पादन में कमी होना।
* खून की जाँच से पुष्टि कि जा सकता है। सीबीसी टेस्ट में हीमोग्लोबिन और लाल रक्त कोशिकाओं के कम स्तर से एनीमिया का पता चलता है।

उपचार

1. अगर कीड़े या किलनी हैं तो उन्हें खत्म करने की दवा देना।
2. खून का बहाव हो रहा हो तो उसे रोकने का प्रयास करना चाहिए
3. पोषण देनाः हरा चारा, अच्छा दाना और मिनरल मिक्सचर खिलाना।
4. लोहे, तांबे और विटामिन की दवाई देना

बचाव के उपाय

* नियमित रूप से कृमिनाशक दवा (कीड़े मारने की) देना
* जूँ और किलनी से बचाव के लिए दवा और साफ-सफाई का ध्यान रखना।
* संतुलित और पौष्टिक आहार देना जिसमें हरा चारा, दाना और मिनरल मिक्सचर शामिल हो।
* चराई के लिए ऐसे खेत या जंगल से बचाना जहाँ जहरीले पौधे हों।
* समय-समय पर पशु की जाँच करवाना।

दिनेश शिवहरे
Mob. : 98263-55396
मध्य प्रदेश का पहला
श्री दयाल बन्धु केन्द्र
(हिनौतिया वालों की दुकान)
सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता
गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66yahoo.com
08/2023-24

ग्राफ्टिंग के माध्यम से सब्जी उत्पादन: एक नवीन तकनीक

अभिषेक यादव, मनीषा पाठक, रोहित कुमार यादव
(पीएचडी शोधार्थी) उद्यानिकी विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

सब्जी के पौधों की ग्राफ्टिंग एक अनूठी बागवानी तकनीक है, जिसका उपयोग दुनिया भर में मृदा जनित रोगों और कीटों पर काबू पाने के लिए और विभिन्न पर्यावरणीय तनाव स्थितियों जैसे लवणता, सूखा, बाढ़ और कम तापमान के तहत पौधों की शक्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है। ग्राफ्टेड सब्ज़ी पौधे "भौतिक संकर" होते हैं जो कम से कम दो किस्मों, एक मूलवंत (स्टॉक) और कम से कम एक कलम (सायन) के संयोजन से बनते हैं. पहला महत्वपूर्ण गुण प्रदान करने के लिए और दूसरा फल उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है। यह प्रक्रिया अंग प्रत्यारोपण के समान है, जिसमें मूतवंत और कलम की किस्में और पौधे संगत होने चाहिए, शल्य चिकित्सा कक्ष और रोगी स्वच्छ और रोगमुक्त होने चाहिए कलम लगाने वाले द्वारा उपयुक्त विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए और नए ग्राफ्ट किए गए पौधों को विशिष्ट परिस्थितियों में ठीक होने दिया जाना चाहिए।

ग्राफ्टिंग तकनीक: ग्राफ्टिंग तकनीक वह विधि है जिसमें दो अलग-अलग पौधों के कटे हुए तनों को लेते हैं इसमें एक जड़ सहित और दूसरा बिना जड़ वाला होता है। दोनों को इस तरह से एक साथ लाया जाता है कि दोनों तने संयुक्त हो जाते हैं और एक ही पौधे के रूप में विकसित होते हैं। इस नए पौधे में दोनों पौधों की विशेषताएँ होती हैं। जड़ वाले पौधे के कटे हुए तने को स्टॉक और दूसरे जड़ रहित पौधे के कटे हुए तने को सायन कहा जाता है। यह पोषक तत्वों को बढ़ाकर तथा उपयुक्त रूट स्टॉक्स के साथ मिट्टी जनित रोगों के प्रतिरोधक विकसित करके पौधों की वृद्धि करता है। ग्राफ्टिंग का उपयोग विभिन्न प्रकार के पौधों जैसे तरबूज, खीरा और टमाटर आदि में किया जाता है।

ग्राफ्टिंग तकनीक के फायदे * ग्राफ्टिंग से अपनी इच्छा अनुसार पैतृक वृक्ष से शाख का चुनाव करके उत्कृष्ट गुणों वाले पौधे तैयार किए जा सकते हैं। * ग्राफ्टिंग से तैयार पौधा अपने पैतृक वृक्ष के समान गुणों वाला फल देता है। * ग्राफ्टिंग द्वारा तैयार किया गया पौधा बीज द्वारा उगाए गए पौधे की तुलना में बहुत जल्दी फल देना प्रारंभ कर देते हैं। * कम गुणों वाले पौधे को उत्कृष्ट गुणों वाले पौधे में परिवर्तित किया जा सकता है। * ग्राफ्टिंग से तैयार किए गए पौधे बीज द्वारा उगाए गए पौधों की तुलना में छोटे होते हैं। जिससे प्रति हेक्टेयर अधिक पौधे लगाए जा सकते हैं तथा इनमें विभिन्न कर्षण क्रियाएं जैसे निराई गुड़ाई, दवाइयों का छिड़काव, फलों की तुड़ाई आदि कार्य करना आसान होता है। * किसी पौधे की उन्नत जाति जो किसी जगह विशेष के वातावरण में विकसित ना हो सके, उसे उस विशेष जगह की उसी जाति के देसी जाति के मूलवृत पर ग्राफ्टिंग द्वारा सफलता के साथ उगाया जा सकता है।

ग्राफ्टिंग की विधियां: ग्राफ्टिंग की बहुत से प्रकार अथवा विधियां है जिसे पोधों की अनुकूलता व सफलता के अनुसार अलग-अलग पौधों में अलग-अलग अपनाई जाती है जैसे

(1)साधारण, व्हीप या स्लाइस ग्राफ्टिंग - ग्राफ्टिंग की इस विधि में मूलवृन्त को 22.5 सेंटीमीटर (जमीन से) काट लिया जाता है। अब ऊपरी भाग को ढाई से 4 सेंटीमीटर की लंबाई में तेज ब्लेड या ग्राफ्टिंग चाकू से तिरछा ढलानदार काट लिया जाता है। फिर चुने गए इसी कुल व उसी मोटाई वाले शाख को उसके पैतृक वृक्ष से अलग कर जिस प्रकार मूलवृन्त पर कटान बनाया जाता है उसी के जैसा बराबर शाख पर भी कटान बनाते हैं। अब दोनों को आपस में अच्छी तरह मिलाकर रोपण पट्टिका से बांध दिया जाता है।

(2)नोच ग्राफ्टिंग - इस विधि को अपनाने के लिए उन पौधों को मूलवृन्त के लिए चुना जाता है जिनके तने मोटे अथवा जिनके तनों का व्यास 7-8 सेंटीमीटर से अधिक हो। अब इस मूलवृन्त को जमीन से लगभग 40-45 सेंटीमीटर छोड़कर काट दिया जाता है। फिर इस मूलवृन्त में 4-5 नोच तैयार किया जाता है। अब नोच की लंबाई व आकार के बराबर ही शाख पर नीचे की ओर कटान बनाया जाता है। अब इस शाख को एक-एक कर नोच में फिट किया जाता है तथा ग्राफ्टिंग अथवा रोपण मोम को रिक्त स्थानों में भर दिया जाता है। लगभग तीन चार महीने में पौधे तैयार हो जाते हैं।

(3)जिह्वा ग्राफ्टिंग - यह साधारण ग्राफ्टिंग या व्हीप ग्राफ्टिंग के समान ही है फर्क बस इतना ही है कि इस विधि में मूलववृन्त तथा शाख में साधारण कटान बनाने के बाद मूलवृन्त में ऊपर से तथा शाख में नीचे से जिह्वा आकार बना कर दोनों को आपस में फंसा कर बांध देते हैं।

(4) स्फान या दीर्ण ग्राफ्टिंग-यह विधि भी साधारण ग्राफ्टिंग से मिलता-जुलता है क्योंकि साधारण ग्राफ्टिंग में मूलवृन्त तथा शाख को एक एक तरफ से तिरछा ढलावदार कटान बनाया जाता है, लेकिन इसमें मूलवृन्त पर तेज चाकू अथवा ब्लेड की सहायता से ÷वी÷ आकार का बनाया जाता है,तथा शाख में उसके विपरीत दोनों तरफ तिरछा काट कर कटान बनाया जाता है। अब शाख को मूतवृन्त में भली प्रकार से फंसाकर बांध दिया जाता है।

बिमाटो: ग्राफ्टिंग के माध्यम से एक ही पोधे में बैगन और टमाटर पैदा करने की एक नवीन तकनीक

अंतर विशिष्ट ग्राफ्टिंग, जैविक और अजैविक तनावों के प्रति सहनशीलता बढ़ाने के साथ-साथ सब्जियों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक आशाजनक उपकरण के रूप में उभरी है। दोहरी या बहुत ग्राफ्टिंग एक नया तकनीकी विकल्प है, जिसमें एक ही परिवार के दो या दो से अधिक पौधों को एक साथ ग्राफ्ट करके एक ही पौधे से एक से अधिक सब्यियों प्राप्त की जाती है।

भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश में ग्राफ्टेड पोमैटो (आलू + टमाटर) के सफल प्रक्षेत्र प्रदर्शन के बाद, वर्ष 2020-21 के दौरान बैंगन और टमाटर (ब्रीमैटो) की दोहरी ग्राफ्टिंग का प्रदर्शन किया गया। बैंगन की संकर किस्म - काशी संदेश और टमाटर की उन्नत किस्म - काशी अमन को बैंगन के मूलवृंत - आईसी 111056 में सफलतापूर्वक ग्राफ्ट किया गया।

ग्राफ्टिंग प्रक्रिया तब की गई जब बैंगन के पौधे 25 से 30 दिन के थे और टमाटर के पौधे 22 से 25 दिन के। बैंगन के मूलवृंत - आईसी 111056 में लगभग 5% पौधों में दो शाखाएँ विकसित होने की प्रवृत्ति होती है। ग्राफ्टिंग पार्श्व/स्प्लिस विधि द्वारा की गई, जिसमें मूलवृंत और कलम दोनों में 5 से 7 मिमी के तिरछे कट (45° कोण) लगाए गए। ग्राफ्टिंग के तुरंत बाद, पौधों को नियंत्रित वातावरण में रखा गया, जहाँ शुरुआती 5 से 7 दिनों तक तापमान, आर्द्रता और प्रकाश को इष्टतम रखा गया, फिर अगले 5 से 7 दिनों तक आंशिक छाया में रखा गया। ग्राफ्टिंग प्रक्रिया के 15 से 18 दिन बाद ग्राफ्टेड पौधों को खेत में प्रत्यारोपित किया गया। शुरुआती विकास अवस्था के दौरान, बैंगन और टमाटर दोनों की कलमों में संतुलित वृद्धि बनाए रखने के लिए सावधानी बरती गई। इसके अलावा यदि ग्राफ्टिंग यूनियन के नीचे कोई अंकुर निकले, तो उन्हें तुरंत हटा दिया गया। उर्वरकों का प्रयोग 150:60:100 किलोग्राम एनपीके/हेक्टेयर की दर से किया गया, साथ ही 25 टन गोबर की खाद भी डाली गई। बैंगन और टमाटर दोनों ने रोपण के 60 से 70 दिन बाद फल देना शुरू कर दिया।

प्रायोगिक निष्कर्षों से पता चला कि टमाटर में प्रति पौधे लगभग 36.0 फल प्राप्त हुए, जिनकी उपज 2.383 किलोग्राम थी, जबकि बैंगन में प्रति पोधे 9.2 फल से 2.684 किलोग्राम उपज प्राप्त हुई। दोहरी ग्राफ्टेड ब्रिमेटो तकनीक शहरी और उपनगरीय क्षेत्रों के लिए बहुत उपयोगी होगी, जहाँ छत और परिसर में वर्टिकल गार्डन या गमले में सब्जियाँ उगाने के लिए सीमित स्थान उपलब्ध हैं। ग्राफ्टेड ब्रिमेटो के व्यावसायिक उत्पादन पर अनुसंधान आईसीएआर-आईआईवीआर, वाराणसी, उत्तर प्रदेश में जारी है। (स्रोतः आईसीएआर-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश)

कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद
बीज एवं कीटनाशक दवाईयां
उचित रेट पर मिलती है
प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094
भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
10/2023-24

पशुपालन में महिलाओं की सहभागिता

✍डॉ. अनिल कुमार गिरि सहायक प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

✍डॉ. लक्ष्मण सिंह शेखावत सहायक प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

✍डॉ. विजय कुमार सिंह प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

✍डॉ. बी. के. प्रजापति वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र, शहडोल (म.प्र.)

भारत की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है और अपनी आजीविका के लिए खेती-किसानी तथा पशुपालन पर निर्भर रहती है। पशुपालन न केवल दूध, मांस, अंडे और ऊन जैसे उत्पाद उपलब्ध कराता है, बल्कि यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था का भी महत्वपूर्ण स्तंभ है, खासकर महिलाओं के लिए यह आय का सशक्त साधन और आत्मनिर्भरता का मार्ग है। ग्रामीण भारत की महिलाएँ लंबे समय से पशुओं की देखभाल करती आ रही हैं। सुबह से लेकर शाम तक गाय-भैंस को चारा डालना, बकरियों को चराना, मुर्गियों की देखभाल, दूध दुहना, खाद बनाना आदि कार्य वे सहजता से निभाती हैं। शोध के अनुसार महिलाओं को काफी विषयों की जानकारी के आभाव में बहुत सारी समयस्याओ का सामना करना पड़ता है। आज का युग सूचना क्रांति का है जहां बहुत सारी सूचना संचार तकनीकियों द्वारा महिला पशुपालकों तक सूचना पहुचाने की कोशिश की जा रही है। वर्ष 2022-23 के दौरान पशुधन क्षेत्र ने राष्ट्रीय सकल मूल्य संवर्धन में 5.50 प्रतिशत का योगदान दिया। भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बेसिक एनिमल हसबेंड्री स्टैस्टिक्स (BAHS) 2024 के अनुसार, पशुधन क्षेत्र लगभग 80 मिलियन (8 करोड़) लोगों को रोजगार देता है, जो कुल भारतीय कार्यबल का लगभग 8% है । छोटे ग्रामीण परिवारों की आय में पशुधन का योगदान 16 प्रतिशत है, जबकि सभी ग्रामीण परिवारों का औसत 14 प्रतिशत है। पशुपालन की प्रमुख सामाजिक भूमिका लैंगिक समानता के रूप में है क्योंकि यह क्षेत्र महिलाओं के लिए अधिक से अधिक कमाई के अवसर पैदा करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ग्रामीण जीवन में महिलाओं की सहभागिता के बिना पशुपालन की कल्पना अधूरी है।

पशुपालन में महिलाओं की मुख्य भूमिकाएं: महिलाएँ पशुपालन से जुड़े अनेक कार्यों की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाती हैं। इनमें प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं-

1.दूध उत्पादन और दुहाई: अधिकांश घरों में गाय-भैंस का दूध दुहने और उसे संभालने का काम महिलाएँ करती हैं। यही कारण है कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश बना है।

2.चारा और पानी की व्यवस्था: पशुओं को समय पर चारा और पानी देना, खेत से हरा चारा काटकर लाना तथा पशुओं के लिए भूसा तैयार करना मुख्यतः महिलाओं का दायित्व होता है।

3.पशुओं की स्वास्थ्य देखभाल

बीमार पशुओं को पहचानना, प्राथमिक उपचार करना और पशु चिकित्सक को बुलाना भी महिलाएँ अच्छे से करती हैं। कई बार ग्रामीण महिलाएँ पारंपरिक जड़ी-बूटियों से पशुओं का इलाज भी कर देती हैं।

4.गोबर व खाद प्रबंधन

पशुओं के गोबर से खाद तैयार करना, गोबर गैस प्लांट चलाना और उससे घर के ईंधन की जरूरतें पूरी करना महिलाओं की जिम्मेदारी होती है। यह पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक है।

5.आर्थिक योगदान

महिलाएँ दूध, घी, दही, मक्खन, पनीर और अंडों की बिक्री करके परिवार की आय में सीधा योगदान करती हैं।

महिलाओं को होने वाले लाभ

आर्थिक सशक्तिकरण: पशुपालन से उन्हें नियमित आमदनी का स्रोत मिलता है।

पोषण सुरक्षा : परिवार को दूध, दही, अंडे और मांस जैसी पौष्टिक चीजें आसानी से मिलती हैं।

स्वावलंबन : महिलाओं का आत्मविश्वास और परिवार में निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है।

रोज़गार सृजन: विशेषकर भूमिहीन और गरीब परिवारों के लिए पशुपालन सबसे उपयुक्त आय का साधन है।

प्रमुख चुनौतियां

हालाँकि महिलाओं का योगदान बहुत बड़ा है, फिर भी उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है-

1. तकनीकी जानकारी और प्रशिक्षण की कमी।
2. पशुपालन से जुड़ी सरकारी योजनाओं की जानकारी न होना।
3. ऋण और वित्तीय सहायता तक सीमित पहुंच।
4. बाज़ार में उत्पाद बेचने के लिए उचित मंच का न होना।
5. पुरुषों की तुलना में मान्यता कम मिलना।

समाधान और सुझाव

प्रशिक्षण और जागरूकता: ग्रामीण स्तर पर महिलाओं हेतु विशेष प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए जाएं।

सरकारी योजनाओं तक पहुँच : महिलाओं को डेयरी सहकारी समितियों और पशुपालन योजनाओं से सीधे जोड़ा जाए।

स्वयं सहायता समूह (SHGs) : महिलाओं को छोटे-छोटे समूह बनाकर ऋण सुविधा और बाज़ार उपलब्ध कराया जाए।

पशुपालन आधारित उद्यमिता: पोल्ट्री, बकरी पालन, मत्स्य पालन और डेयरी प्रोडक्ट यूनिट्स से महिलाओं को जोड़ा जाए।

डिजिटल सशक्तिकरण : मोबाइल ऐप और ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से महिलाओं को पशुपालन की आधुनिक तकनीक और मार्केट जानकारी मिले।

रीवा (मध्य प्रदेश) का प्रेरणादायक उदाहरण

रीवा ज़िले की ग्रामीण महिलाएँ लंबे समय से पशुपालन को आजीविका का साधन बनाए हुए हैं। हाल के वर्षों में यहाँ की महिलाओं ने डेयरी सहकारी समितियों और स्वयं सहायता समूहों से जुड़कर उल्लेखनीय सफलता हासिल की है।

रीवा दुग्ध संघ (सांची डेयरी से संबद्ध)

* रीवा दुग्ध संघ के अंतर्गत कई महिला डेयरी समितियाँ संचालित हो रही हैं।
* इन समितियों से जुड़ी महिलाएं प्रतिदिन 200-500 लीटर दूध एकत्र कर सांची डेयरी को सप्लाई करती हैं।
* पहले महिलाएँ केवल 1-2 लीटर दूध बेच पाती थीं, लेकिन अब वे संगठित होकर 7-10 हज़ार रुपये प्रतिमाह तक की आमदनी प्राप्त कर रही हैं।

रीवा की महिला स्वयं सहायता समूहों का बकरी पालन मॉडल

* रीवा जिले के मनगवाँ और नई गढ़ी ब्लॉक की महिलाओं ने बकरी पालन को संगठित तरीके से अपनाया।
* उन्हें राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) और पशुपालन विभाग से प्रशिक्षण मिला।
* आज ये समूह बकरी के दूध, बच्चों और मांस की बिक्री से अच्छी नियमित आय अर्जित कर रहे हैं।
* कई महिलाएं पहले केवल घर की ज़िम्मेदारी निभाती थीं, अब वे अपने परिवार की आर्थिक रीढ़ बन गई हैं।

पोल्ट्री फार्मिंग में महिला सशक्तिकरण

* रीवा के त्योंथर क्षेत्र में महिलाओं के समूहों ने छोटे पैमाने पर मुर्गी पालन शुरू किया।
* अब वे न सिर्फ गाँवों में अंडे और चिकन बेच रही हैं, बल्कि स्थानीय बाज़ारों में भी सप्लाई कर रही हैं।
* इससे महिलाओं की मासिक आय में 5-8 हज़ार रुपये तक की बढ़ोतरी हुई है।

निष्कर्ष

पशुपालन भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और इसमें महिलाओं की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यदि उन्हें उचित प्रशिक्षण, बाज़ार तक पहुँच और योजनाओं का लाभ मिले तो वे न केवल अपने परिवार की आर्थिक स्थिति सुधार सकती हैं बल्कि ग्रामीण विकास और पोषण सुरक्षा में भी अहम योगदान दे सकती हैं ।

चमत्कारी सहजन (मुनगा): पोषण, औषधि और आय का खज़ाना: सिन्हा

सहजन (Moringa oleifera), जिसे ग्रामीण क्षेत्रों में सहजन, सजना अथवा मुनगा और अंग्रेज़ी में Drumstick tree या Miracle tree कहा जाता है, आज "चमत्कारी पौधा" के रूप में पहचाना जा रहा है। यह न केवल पोषण और स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है बल्कि किसानों के लिए आय का साधन और पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक है। वनस्पति दृष्टि से सहजन 6-10 मीटर ऊँचाई वाला पेड़ है जिसकी पत्तियाँ संयुक्त, फूल सफेद सुगंधित और फलियाँ लंबी पतली होती हैं।

हेमन्त कुमार सिन्हा
कृषि वैज्ञानिक

इसकी पत्तियाँ और फलियाँ विटामिन A, C, प्रोटीन, कैल्शियम तथा आयरन का उत्तम स्रोत हैं। इन्हें सुपर फूड की श्रेणी में रखा गया है। घरेलू स्तर पर इसकी फलियाँ सांभर, सब्जी और सूप में, जबकि पत्तियाँ चटनी, पराठा और पशु आहार के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

आयुर्वेद में सहजन को शिग्रु कहा जाता है। यह वातनाशक, पाचन सुधारक और सूजन निवारक गुणों से युक्त है। आधुनिक चिकित्सा में इसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हड्डी संबंधी रोग और कुपोषण जैसी समस्याओं के निवारण में लाभकारी माना गया है। कृषि एवं आर्थिक दृष्टि से सहजन किसानों के लिए कम लागत और अधिक लाभ देने वाली फसल है। इसके बीजों से प्राप्त बेन ऑयल का उपयोग खाद्य उद्योग, औषधि निर्माण और सौंदर्य प्रसाधनों में होता है। बीज का चूर्ण पानी को शुद्ध करने में भी उपयोगी है।

सहजन के फायदे

1. पोषणीय लाभ सहजन की पत्तियाँ और फलियाँ

विटामिन A, C, E, कैल्शियम, पोटैशियम, प्रोटीन और आयरन का उत्तम स्रोत हैं। यह बच्चों और महिलाओं में कुपोषण की समस्या दूर करने में कारगर है। पत्तियों का पाउडर "सुपर फूड" के रूप में विश्वभर में बेचा जा रहा है। नियमित सेवन से प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और शरीर को ऊर्जा मिलती है।

2. औषधीय लाभ मधुमेह

सहजन रक्त में शुगर लेवल नियंत्रित करने में मदद करता है।

उच्च रक्तचाप: इसमें मौजूद पोटैशियम रक्तचाप को सामान्य रखने में सहायक है।

हड्डी और जोड़ स्वास्थ्य: इसमें कैल्शियम और फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में होते हैं जो हड्डियों को मजबूत करते हैं।

सूजन व दर्द: सहजन में प्राकृतिक तत्व होते हैं जो सूजन, गठिया और दर्द कम करते हैं।

पाचन सुधारक : यह पाचन तंत्र को मजबूत करता है और कब्ज जैसी समस्याओं को कम करता है।

एंटीऑक्सीडेंट गुण: सहजन में शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट होते हैं जो शरीर को फ्री-रेडिकल्स से बचाते हैं और उम्र बढ़ने की प्रक्रिया धीमी करते हैं।

3. आर्थिक लाभ सहजन किसानों के लिए कम लागत और अधिक लाभ देने वाली फसल है। इसके बीजों से निकलने वाला बेन ऑयल (Ben oil) खाद्य उद्योग, औषधि और सौंदर्य प्रसाधनों में प्रयोग होता है। पत्तियाँ व फलियाँ बाजार में अच्छी कीमत पर बिकती हैं, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। सहजन पाउडर, चाय, कैप्सूल आदि के रूप में निर्यात उत्पाद बनकर किसानों और उद्यमियों के लिए नए अवसर प्रदान कर रहा है।

4. पर्यावरणीय लाभ सहजन शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है, जिससे सूखा-प्रभावित क्षेत्रों के लिए यह आदर्श फसल है। इसकी गहरी जड़ें मिट्टी को पकड़कर मिट्टी का कटाव रोकती हैं। पत्तियों और गिरी हुई सामग्री से भूमि की उर्वरता बढ़ती है।यह पौधा कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित कर पर्यावरण शुद्ध करने में योगदान देता है।

भावांतर योजना : किसानों को सोयाबीन में 5328 रु. प्रति क्विं. मिलेगा रेट

छतरपुर। म.प्र. सरकार द्वारा किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त एवं समृद्ध बनाने हेतु भावांतर योजना प्रारंभ की गई है। जिसका फायदा सोयाबीन का उत्पादन करने वाले कृषकों को मिलेगा। शुक्रवार को शहर के ऑडिटोरियम में किसान संगठनों और पंजीकृत व्यापारियों के साथ बैठक का आयोजन किया गया। जिसमें सभी को भावांतर योजना के फायदे एवं क्रियांवयन की जानकारी दी गई।

तदुपरांत छतरपुर विधायक ललिता यादव एवं कलेक्टर पार्थ जैसवाल ने योजना के प्रचार प्रसार के लिए ट्रैक्टर रैली को हरी झण्डी दिखाकर रवाना किया गया। रैली ऑडिटोरियम से शुरू होकर आकाशवाणी तिराहा, बस स्टैंड होते हुए कृषि विभाग के कार्यालय में समाप्त हुई। विधायक श्रीमती यादव ने कहा कि मंडियों में किसान सोयाबीन बेंचते हैं तो उस रेट से जो एमएसपी का रेट होगा उसके बीच के अंतर की राशि का भुगतान सरकार द्वारा किया जाएगा। उन्होंने किसान भाइयों से योजना में पंजीयन कराने की अपील की। विधायक ने कहा की राज्य एवं केन्द्र की सरकार किसानों के लिए विभिन्न योजनाएं चला रही है। जिससे खेती घाटे का नहीं लाभ का सौदा बन रही है। कलेक्टर श्री जैसवाल ने कहा की 3 अक्टूबर से पंजीयन प्रारंभ हो चुके हैं। जो 24 अक्टूबर 2025 तक चलेगें। योजना का लाभ लेने के लिए एमपी ऑनलाइन एवं सीएससी केन्द्रों के माध्यम से पंजीयन किए जा सकते हैं। उन्होंने संबंधित अधिकारियों को निर्देश देते हुए कहा कि अगर कोई बिचौलिया या अन्य व्यक्ति किसानों के हित को प्रभावित करेगा या योजना का लाभ कूटनीतिक तरीके से लेने का प्रयास करेगा उस पर कड़ी कार्यवाही की जाएगी। उन्होंने मंडियों में हेल्पडेस्क बनाने व्यापक प्रचार प्रसार करने के भी निर्देश दिए। कलेक्टर ने कहा किसानों को सोयाबीन विक्रय करने पर एमएसपी रेट 5328 रूपये प्रति क्विंटल मिलेगा। मंडी मॉडल रेट और एमएसपी के अंतर की राशि सीधे किसानों के बैंक खातों में आएगी। इस अवसर पर जिला पंचायत सीईओ नमः शिवाय अरजरिया, एडीएम मिलिंद नागदेवे, सहायक कलेक्टर आशीष पाटिल, डीडीए रवीश सिंह, किसान संगठन के पदाधिकारी अयोध्या प्रसाद पटेल, बृजेंद्र सिंह बुंदेला, नीलकंठ पटेल, खजांची पटेल, सहित अन्य गणमान्य नागरिक व्यापारी उपस्थित रहे।

डॉ. निधि प्रजापति (वैज्ञानिक)
डॉ. विशाल मेश्राम (वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख)
डॉ. एस.आर. शर्मा (वैज्ञानिक)
डॉ. विजय सिंह सूर्यवंशी तकनीकी सहायक
कृषि विज्ञान केन्द्र, नरसिंहपुर (म.प्र.)

धान के कीटों की पहचान एवं समन्वित प्रबंधन

धान में उपज कम होने के कई कारण हैं जिनमें धान में लगने वाले कीटों से लगभग 20 से 30% का नुकसान होता है। धान के कीट रोपाई से कटाई तक फसल को नुकसान करते रहते हैं। इन कोटों को नियंत्रित करके उपज में वृद्धि की जा सकती है, हमारे प्रदेश में औसत धान उत्पादन 25 से 30 क्विं. प्रति हे. है जो कि अन्य प्रदेशों से कम है। अतः नीचे दिए गए कीटों की पहचान व नियंत्रण करके उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

भूरा पौध फुदका: इस कीट के व्यस्क व शिशु पौधे के तने से रस चूसकर फसल को हानि पहुंचाते हैं। अधिक प्रकोप की अवस्था में खेत में सूखी फसल के गोलाकार क्षेत्र नजर आते हैं। इन लक्षणों को 'हॉपर-बर्न' कहते हैं, क्योंकि ये कीड़े पौधों के तनों पर रहते हैं इसलिए पत्तों पर नजर नहीं आते। इसी कारण फसल पर इस कीट की निगरानी बहुत जरूरी हो जाती है। दस कीट प्रति धानपुंज में पाये जाने पर कीटनाशक का प्रयोग आवश्यक है।

प्रबंधन 1.नाइट्रोजन का अत्यधिक प्रयोग न करें। 2.खेत में लगातार पानी भरकर न रखें तथा इसके सूखने पर ही दोबारा सिंचाई करें। 3.खेतों की मेंढ़ों पर खरपतवार नियंत्रित करते रहें। 4.प्रकाश-पाश से कीटों की निगरानी करें। 5.मित्र जीवों जैसे मकडियों, मिरिड बग व लेडी बर्ड भृंगो का संरक्षण करें। 6.जरूरत पडने पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल 150 मिली/हे. या बुप्रोफेजिन 25 एससी 500 मि.ली./हे. या थायोमेथाक्जाम 25 डब्ल्यूपी 150 ग्राम/हे. या क्लोरपायरिफॉस 20 ईसी 1000-1200 मिली/हे. से स्प्रे करें या दानेदार कार्बोफयूरान 3 जी 25 किलो/हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। 7.रसायन छिड़कते समय नोजल पौधों के तनों की तरफ रखें।

तना छेदक: इन कीटों की सुण्डियां ही फसल को हानि पहुंचाती हैं। सूण्डी तने में घुसकर केन्द्रीय पत्ती चक्र को काट देती हैं जिससे वह भूरेपन में बदलकर सूख जाता है, जिसे 'डेड हार्ट' कहा जाता है। फूलों के गुच्छे बनना शुरू होने के बाद कीटों के हमले से गुच्छे मुरझा जाते हैं जो 'सफेद बाली' कहलाते हैं। यदि खेत में 2 प्रतिशत सफेद बाली य 5 प्रतिशत डेडहार्ट दिखाई देने पर कीटनाशक का प्रयोग करें।

प्रबंधन: 1.रोपाई से पहले पौधों की चोटियों को काट दें। 2.नाइट्रोजन का अत्यधिक उपयोग न करें। 3.डेड हार्ट एवं सफेद बालियों को इकट्ठा कर नष्ट कर दें। 4.प्रकाश-पाश के उपयोग से पीले तना छेदक की संख्या पर निगरानी रखें। 5.रोपाई के 30 दिन के बाद ट्राइकोग्रामा जैपोनिकम 1-1.5 लाख प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह की दर से 2-6 सप्ताह तक छोड़े। 6.पौधों की कटाई जमीनी स्तर तक करें और फसल के ठूठों को नष्ट कर दें जिससे कीट की सूण्डी और प्यूपे नष्ट हो जाएँगे। 7.आवश्यकतानुसार दानेदार कीटनाशी जैसे कार्बोफयूरान 3 जी/25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर या कारटेप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी/20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर या क्लोरपाइराफॉस 20 ई.सी. 1000-1200 मि.ली./हे. एसीफेट 75 एस.पी. 1 कि.ग्रा/हे., क्लोरैनट्रैनिलिपरोल 20 एस.सी. 150 मिली/हे. या कारटेप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. 500 ग्राम/हे. 500 लीटर पानी मिलाकर छिड़काव करें।

पत्ती लपेटक: इस कीट के पतंगें संतरी भूरे रंग के होते हैं। इनके पंखों के बीच में टेढ़ी मेढ़ी रेखाएं होती हैं। पतंगे सुण्डी पत्ते के दोनों किनारों को सिलकर इसके हरे पदार्थ को खाती है। अधिक प्रकोप की अवस्था में पत्तों पर सफेद-सफेद धब्बे दूर से नजर आते हैं। यदि प्रत्येक गुच्छा में दो प्रभावित प्रत्तियां दिखें तो कीटनाशक का प्रयोग आवश्यक है।

प्रबंधन: 1.खेत व मेंडो की सफाई रखें तथा नाइट्रोजन का अत्यधिक उपयोग न करें। 2.खरपतवार नष्ट करते रहें। 3.प्रकाश-पाश के प्रयोग से कीट पर निगरानी रखें। 4. ट्राईकोग्रामा 1-1.50 लाख प्रति हेक्टेयर की दर से छोड़े। 5.परभक्षी जैसे रोव बीटल का सेरक्षण करें। 6.आवश्यकतानुसार क्लोरैनट्रैनिलिपरोल 20 एस सी 150 मिली/हे. या क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. 1200 मि.ली./हे. या कारटेप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. 500 मि.ली./हे. या एसीफेट 75 एस.पी. 1 कि.ग्रा./हे. या इन्डोक्साकार्ब 15.5 एससी 500 मि.ली./हे. 500 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करें।

गंधीबग: खेत में बड़े मच्छर जैसा कीट दिखायी देता है जिसे छूने पर दुर्गंध आती है। यह कीट खेत में दुर्गन्ध पैदा करता है इसलिए इसे गंधीबग कहा जाता है। शिशु और वयस्क दोनों ही दूधिया अवस्था में दानों के रस को चूसकर दनको खाली कर देते हैं। गंधीबग से ग्रसित दानों पर काले धब्बे नजर आते हैं। धान के बालियों में प्रभावित दाने सफेद दूर से ही दिखाई देते हैं। 1 बग प्रति गुच्छा पाये जाने पर कीटनाशक का प्रयोग करें।

1.नाइट्रोजन का अत्यधिक उपयोग न करें। 2. एक ही क्षेत्र के खेतों में बुवाई व रोपाई एक ही समय पर करें। 3.खरपतवारों जैसे एकानोकलोआ (श्याम घास) को खेतों व मेढ़ों से निकाल दें। 4.प्रकाश-पाश के प्रयोग से कीटों को पकड़ कर नष्ट कर दें। 5.आवश्यकतानुसार मैलाथियान 50 ई.सी. 500 मि.ली. या एसीफेट 75 एस.पी. 1 कि.ग्रा.या थायोमेथाक्जाम 150 ग्राम/हे. 500 ली. पानी के साथ छिड़काव करें या मैलाथियान धूल 25-30 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर ये भुरकाव करें।

हिस्पा: व्यस्क भौंरा नीले, काले रंग का होता है जो कि पत्तियों के हरे हिस्से को खा कर सीढ़ीनुमा सफेद लकीरें बना देता है। इस भौंरे की सूण्डियाँ पत्तियों के अंदर छेदकर भूरे रंग के क्षेत्र बना देती हैं। दो क्षतिग्रस्त पत्ते प्रति गुच्छा होने पर रासायनिक नियंत्रण अपनाएं।

1.पौधे की चोटियों को रोपाई से पहले काट दें एवं खरपतवारों को नियंत्रित रखें। 2.भौरों को एकत्र कर नश्ट करें। 3.खेत में कुछ अंतराल पर पानी की निकासी कर दें। 4.आवश्यकतानुसार क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. 1500 मि.ली. या ट्राइजोफॉस 20 ईसी 1 ली.या इंडोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. 500 मि.ली या एसीफेट 75 एस.पी. 1 लीटर/ हे. 500 लीटर पानी में छिड़काव करें या मैलाथियान धूल 25-30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

सैनिक कीट (झुण्ड में पाई जाने वाली सूण्डी): वयस्क कीड़ा मझोले कद का तगड़ा तथा स्लेटी-भूरे रंग का पतंगा होता हैं। इसके आगे के पंखों पर काले चकत्ते होते हैं। यह कीट नर्सरी के पौधों को कुछ इस तरह से कुतर-कुतर कर खा जाता है जैसे कि उन्हें जानवरों ने चर लिया हो। रोपी गई फसल में यह कीड़ा पत्तियों के बीच की शिराओं को छोड़ते हुए पूरी पत्तियों को चटकर नष्ट कर देते हैं।

प्रबंधन: 1.नाइट्रोजन का अत्यधिक उपयोग न करें। 2.गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें। 3.पौधशाला में बची-खुची पौध व खेत में खरपतवारों को नष्ट कर दें। 4. खेत से कुछ अंतराल पर पानी की निकासी कर दें। 5.प्रकाश-पाश का प्रयोग कर कीटों को एकत्र कर नष्ट कर दें। 6.आवश्यकतानुसार क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी 2.5 मि.ली. प्रति लीटर या डी.डी.वी.पी 76 ई.सी. 1.5 मिली/लीटर या इंडोक्सार्ब 14.5 एस.सी. 1 मि.ली./2 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें या मैलाथियान धूल 25-30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें। एक ही कीटनाशक का प्रयोग बार-बार न करें।

डॉ. प्रतिमा घृतलहरे, डॉ. केसर परवीन
डॉ. दीप्ति किरन बारवा, डॉ. के मुखर्जी
पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग, (छत्तीसगढ़)

बकरियों में आनुवांशिक प्रबंधन एवं प्रजनन

दूध के लिए बकरियों का चयन

भारत में बकरी पालन दूध ,मांस, रेशे आदि के लिए किया जाता है। हालांकि भारत की कई नस्ले मांस उत्पादन के लिए बेहतर मानी जाती है लेकिन सिरोही जमुनापारी, जखराना, बीटल, सूरती, जालावाड़ी जैसी नस्ले दूध उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। ये नस्ले एक ब्यात में 400-500 लीटर तक दूध देती है तथा एक ब्यात में लगभग 200 दिनों तक दूध देती है। हमारे देश में पशुपालकों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से बकरी पालन नहीं करने, पोषण की कमी तथा प्रबंध अच्छा नहीं होने के कारण एक ब्यांत में 150-200 लीटर ही दूध दे पाती है। दूध उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रायः रेवड़ में अच्छे बकरों की कमी होती है जिससे संताने अधिक उत्पादन करने वाली नहीं हो पाती हैं। अच्छी नस्ल के मेमनों को पशुपालक बेंच देते हैं जबकि कमजोर व कम वजन वाले को प्रजनन के लिए बीजू बकरे के लिए पाल लेते हैं। ऐसे बकरों से आने वाली कई पीढ़ियों में उत्पादन क्षमता कम होती है।

एक रेवड़ या समूह में एक ही बीजू बकरे को 2 वर्ष से ज्यादा नहीं रखना चाहिए लेकिन जागरूकता की कमी के कारण पशुपालक इन बकरों को 5-6 वर्ष तक रख लेते हैं। यहीं नहीं इसके बाद इसी बकरे के नर बच्चों को फिर से बीजू बकरे के रूप में तैयार कर प्रजनन के लिए चुन लेते हैं। इससे समूह में इन्ब्रीडिंग से संतानो की उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा बड़े समूह वाले भी एक ही बकरा रखते हैं जिससे सारी बकरियां सही समय पर गाभिन नहीं हो पाती हैं। इससे बकरियों की पहले ब्यांत पर उम्र और दो बयात के बीच लंबा समय हो जाता है। किसी भी जीव में संतान में आधे गुण माँ तथा आधे पिता से आते हैं प्रायः दुग्ध उत्पादन के लिए बकरी में ही इसके लक्षण देखें जाते हैं जबकि बकरे में भी इसके गुण होते हैं। एक बकरे से जितनी बकरियां गाभिन कराई जाती हैं उससे पैदा होने वाली संतानों में बकरे के गुण का भी बराबर का योगदान रहता है। इसलिए वैज्ञानिक तरीके से प्रजनन हेतु बकरी व बकरे का चयन करना चाहिए। बकरियों में दूध उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले बकरे व बकरी का चुनाव कर प्रजनन हेतु काम में लाना चाहिए।

प्रजनन के लिए बीजू बकरे का चयन

किसी बकरियों के समूह में बीजू बकरे का कई आधार पर चयन किया जाता है।

1. इसमें बकरे का चुनाव उसके खुद के गुणों के आधार पर किया जाता है। दूध उत्पादन के लिए बकरे की माँ द्वारा दिए गए दूध की मात्रा के आधार पर बकरे का चुनाव किया जाता है। यह सबसे सरल व ज्यादा व्यावहारिक तरीका है।

2. दूसरे तरीके में बकरे का चुनाव वंशावली के आधार पर किया जाता है। वैज्ञानिक नियमानुसार संतान में आधे-आधे गुण माता-पिता से आते हैं। इसलिए माता-पिता के गुणों के आधार पर बकरी व बकरों का चयन किया जाता है। कभी-कभी नाना-नानी तथा दादा-दादी के गुणों को भी ध्यान में रखा जाता है।

3. इस तीसरे तरीके में पशु का चुनाव अलग-अलग उम्र में उनके उत्पादन और गुणों के उधार पर किया जाता है। इसमें उम्र बढ़ने के साथ साथ अपेक्षाकृत कम उत्पादन व कम स्तर के बकरों को निष्कासित किया जाता है। शुरू में माता-पिता की वंशावली के बाद व्यक्तिगत तथा संतान के आधार पर चयन किया जाता है।

बकरों के चयन का वैज्ञानिक तरीका-

* 3 महीने के 50 नर मेमने * इनमें से 40 मेमने निष्कासित करें * 6 महीने के 10 नर बच्चे (मेमनें का रंग रूप, माँ बाप की उत्पादन क्षमता तथा वजन के आधार पर) * इनमें से 2 मेमने निष्कासित करें * 1 साल के 8 मेमने बचे * इनमें से दो बकरे कामुकता की कमी के कारण निष्कासित * साल के 6 बकरे बचे * 2 बकरे निष्कासित (कम गर्भधारण क्षमता एवं गुणों के आधार पर) * 3 साल के 4 बकरे बचे * 2 बकरे निष्कासित(बकरियों के औसत दूध उत्पादन आधार पर) * साल के 2 बकरे बचे

दूध उत्पादन के लिए बकरियों का चयन

अलग-अलग नस्ल की बकरियों की वंशानुगत दुध उत्पादन क्षमता अच्छी होती है लेकिन क्षमता को बनाये रखने या बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक ढंग से बकरियों का चयन होना चाहिए। इसके लिए भी निम्न गुणों का होना जरूरी है।

* बकरी का पहले ब्यात में दूध उत्पादन अधिक होना चाहिए।

* ब्यात में दूध देने के कुल दिन ज्यादा होने चाहिए।

अधिक दूध उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्रजनन के लिए प्रयोग में ली जाने वाली बकरियों का चयन भी बकरों की तरह वैज्ञानिक सरल व व्यावहारिक तरीके से करना चाहिए।

* इस तरीके में बकरियों का चयन खुद के दूध उत्पादन के आधार पर किया जाता हैं।

* इस तरीके में बकरियों का चयन उसके माता तथा नानी की दुध उत्पादन क्षमता और दूध देने के कुल दिन के आधार पर किया जाता है।

* एक अन्य तरीके में बकरों की तरह बकरियों का चयन विभिन्न अवस्थाओं में उनकी उत्पादन क्षमता के आधार पर किया जाता है। इसमें लगभग 50 मेमनों में से हर 3 माह बाद 5-5 मेमनें शारीरिक वृद्धि व माँ के दूध उत्पादन क्षमता पर निष्कासित किए जाते हैं और इस तरह 3 साल बाद 30 अच्छी बकरियो का चयन होता है।

* जिन बकरियों के दूध उत्पादन क्षमता अधिक हो तथा ब्यात में अधिक दिन तक दूध दें उनसे पैदा हुए नर मेमनों को शुरुआती चुनाव में प्राथमिकता देंवे।

प्रजनन के लिए बीजू बकरे का उपयोग

* एक 25-30 बकरियो के समूह में एक बीजू बकरा जरूर रखें

* एक बीजू बकरे को एक समूह में 2 साल से ज्यादा समय तक प्रजनन के लिए काम में नहीं लें

* जब एक बकरे को 2 साल बाद जब समूह से हटाते हैं तो नए बीजू बकरे का चुनाव अपने ही बकरियों के समूह से नहीं करें ऐसा करने पर एक ही परिवार की बकरियों में आप से प्रजनन यानी इन्ब्रीडिंग से संतानों में दोष आ जाते हैं

* एक बीजू बकरा हटाने पर किसी दूसरे समूह से अच्छी क्वालिटी का नर बकरा बदल कर प्रजनन के लिए काम में लें

बकरियों के वैज्ञानिक चयन का तरीका

* 3 महीने की 50 मादा मेमने

* 5 मेमने निष्कासित (नस्ल, शारीरिक वृद्धि तथा माँ के दूध उत्पादन के आधार पर)

* 6 महीने की 45 मादा मेमने

* 5 मेमने निष्कासित (शारीरिक वृद्धि के आधार पर)

* साल के 40 मादा मेमने

* 5 मेमने निष्कासित (पहले ब्यात में कम दूध व दूध देने के कम समय के आधार पर) साल की 35 मादा मेमने

* 5 मादाओ को ब्यात में कम दूध देने के आधार पर निष्कासित

* 3 साल की 30 मादा बकरियां

प्रजनन हेतु उत्तम बकरे की विशेषताएं

* बकरे का शरीर गठीला व शरीर का आकर्षक हो

* सिर व गर्दन बकरे के शरीर के अन्य भागों के अनुपात में हो

* बकरा जिस नस्ल का हो उस नस्ल के सभी गुण होने चाहिए

* पैर मजबूत हो तथा सही लंबाई व स्थान वाले हो

* पसलियों की गहराई अधिक होनी चाहिए

* बकरा स्वास्थ व चुस्त, फुर्तिला हो

* बकरे में नर के सभी स्वाभाविक गुण हो, कामुकता तेज हो

* अण्डकोष पुरी तरह से विकसित हो तथा दोनों एक जैसे आकार के हों

* बकरा ऐसी माँ की संतान हो जिसमें उच्च गुण हो तथा कोई गलत लक्षण नहीं हो

* बकरी की माँ अधिक दूध देने वाली हो

प्रजनन हेतु दुधारू बकरी के गुण

* थानों का अडर भारी तथा पूरी तरह विकसित हुआ हो
* अडर शरीर से अच्छी तरह जुड़ा हो तथा दुहने में नरम, लचीला, दुहने के बाद अच्छी तरह सिकुड़ने वाला हो
* थन लंबे तथा दुहने में मुलायम होने चाहिए
* अडर आगे की ओर विकसित हो ताकि ठंड व कांटो से बचाव हो सके
* पिछले पैरों की जांघो के जोड़ सीधे हो ताकि थनों को कांटो से बचाया जा सके
* सिर लम्बा, पतला और सामान्य आकृति का हो
* गर्दन लम्बी, पतली तथा मुलायम त्वचा वाली हो
* पीठ सीधी, मजबूत और मांसल हो
* पसलिया गहरी तथा चौड़ी हो अंतिम पसली पीछे की ओर मुड़ी हुई हो
* पुठ्ठे के आगे बड़े गड्ढे हो यह अच्छी पाचन शक्ति की निशानी है
* पुठ्ठा लम्बा हो तथा जिसकी ढाल कम हो
* जबड़े लम्बे तथा मजबूत हो तथा अगले पैरो की हड्डीयां मजबूत हो

वन हेल्थ कांसेप्ट : मानव, पशु और पर्यावरण का साझा स्वास्थ्य

डॉ. अभिषेक राजपूत शिक्षण सहयोगी, पशु चिकित्सा शरीर रचना विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, डीएसवीसीकेवी, दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. कशिश आफरीन आलम पशु चिकित्सक, मोबाइल पशु चिकित्सा इकाई, जगदलपुर

डॉ. आबशार आलम एम.वी.एससी. पशु चिकित्सा सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, डी.एस.वी.सी.के.वी., दुर्ग।

सारांश

मानव, पशु और पर्यावरण तीनों का आपसी संबंध बहुत गहरा है। यदि इनमें से किसी एक का स्वास्थ्य बिगड़ता है तो अन्य दो भी प्रभावित होते हैं। पिछले कुछ वर्षों में कोविड-19, बर्ड फ्लू, स्वाइन फ्लू और लम्पी स्किन डिजीज जैसी बीमारियों ने यह स्पष्ट कर दिया कि मानव और पशु स्वास्थ्य को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता। इसी सोच से जन्मा है वन हेल्थ कांसेप्ट–एक ऐसा वैश्विक दृष्टिकोण जो यह मानता है कि मानव, पशु और पर्यावरण का स्वास्थ्य परस्पर जुड़ा हुआ है और सभी का संरक्षण आवश्यक है। यह लेख किसानों और आम समाज के लिए वन हेल्थ अवधारणा के महत्व, उपयोग, चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है।

परिचय

भारत कृषि प्रधान देश है जहाँ अधिकांश ग्रामीण परिवार खेती और पशुपालन से जुड़े हैं। किसान परिवारों का स्वास्थ्य सीधे-सीधे उनके पशुधन और पर्यावरण पर निर्भर करता है। यदि पशु स्वस्थ होंगे तो दूध, मांस, अंडा जैसे उत्पाद सुरक्षित और पौष्टिक होंगे। यदि पर्यावरण स्वच्छ और प्रदूषण रहित होगा तो पशु और मनुष्य दोनों स्वस्थ रहेंगे।

पिछले कुछ दशकों में हमने अनेक बीमारियों का सामना किया है, जो इस संबंध को और भी स्पष्ट करती हैं। जैसे–

कोविड-19 (कोरोना वायरस) ने पूरी दुनिया को प्रभावित किया। बर्ड फ्लू ने कुक्कुट उद्योग को भारी नुकसान पहुँचाया। अफ्रीकन स्वाइन फीवर और लम्पी स्किन डिजीज ने किसानों को आर्थिक रूप से कमजोर किया। इन घटनाओं ने वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं को सोचने पर मजबूर किया कि स्वास्थ्य की समस्या का समाधान केवल मानव चिकित्सा या पशु चिकित्सा तक सीमित नहीं है। इसके लिए एक साझा दृष्टिकोण चाहिए, जिसे "वन हेल्थ" कहा गया।

वन हेल्थ कांसेप्ट क्या है?

वन हेल्थ (One Health) एक अंतरराष्ट्रीय अवधारणा है, जो यह मानती है कि—

"मानव स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य और पर्यावरण स्वास्थ्य परस्पर जुड़े हुए हैं और एक-दूसरे पर निर्भर हैं।" * इसका मूल उद्देश्य है कि इन तीनों को एक साथ देखकर ही स्वास्थ्य से जुड़ी नीतियाँ और प्रबंधन किए जाएँ। * यदि पशु बीमार हैं तो उनके उत्पाद दूषित होंगे और मनुष्य को बीमारी होगी। * यदि पर्यावरण प्रदूषित है तो पशु और मनुष्य दोनों प्रभावित होंगे। * यदि मनुष्य प्रकृति का अत्यधिक दोहन करेगा तो नई-नई बीमारियाँ जन्म लेंगी। * अतः वन हेल्थ का मतलब है साझा स्वास्थ्य–मानव + पशु + पर्यावरण।

जूनोटिक रोग और वन हेल्थ: जूनोटिक रोग (Zoonotic Diseases) वे बीमारियाँ हैं जो पशुओं से मनुष्यों में या मनुष्यों से पशुओं में फैलती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार, विश्व की लगभग 60% संक्रामक बीमारियाँ जूनोटिक हैं।

कुछ प्रमुख उदाहरण

रेबीज (Rabies): कुत्तों से फैलने वाला घातक रोग।

ब्रूसेलोसिस (Brucellosis): दूध से फैलने वाला रोग, जिससे गर्भपात भी हो सकता है।

क्षय रोग (Tuberculosis): गाय और मनुष्य दोनों में सामान्य।

बर्ड फ्लू (Avian Influenza): मुर्गियों से फैलकर मनुष्यों तक पहुँचने वाला।

लम्पी स्किन डिजीज (LSD): मवेशियों में गंभीर, अप्रत्यक्ष रूप से किसानों की आय पर असर डालने वाला।

इन बीमारियों से लड़ने का सबसे प्रभावी तरीका है— वन हेल्थ दृष्टिकोण अपनाना।

किसानों के लिए वन हेल्थ का महत्व

पशुधन की सुरक्षा: यदि किसान नियमित टीकाकरण और बायोसिक्योरिटी अपनाएँ तो पशु बीमारियों से बच सकते हैं। इससे दूध और मांस उत्पादन पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ेगा।

मानव परिवार की सुरक्षा: स्वस्थ पशु ही पौष्टिक और सुरक्षित दूध, मांस और अंडा देंगे।

रोग रहित पशु परिवार को भी संक्रमण से बचाएँगे।

आर्थिक लाभ

* रोगों के कारण होने वाले नुकसान में कमी।

* पशुधन से स्थायी और निरंतर आय।

पर्यावरण संरक्षण * गोबर और मूत्र का वैज्ञानिक उपयोग खाद और बायोगैस में। * जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने में सहायता।

वन हेल्थ से जुड़े प्रमुख क्षेत्र

1. **रोग नियंत्रण और टीकाकरण:** * पशुओं का समय-समय पर टीकाकरण। * बर्ड फ्लू, ब्रूसेलोसिस और रेबीज जैसे जूनोटिक रोगों की रोकथाम।

2. **खाद्य सुरक्षा (Food Safety):** * दूध, मांस और अंडे की गुणवत्ता नियंत्रण। * दूषित भोजन से बचाव और मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा।

3. **एंटीबायोटिक प्रतिरोध (AMR):** * पशुओं में दवाइयों का अत्यधिक प्रयोग मनुष्यों में भी असर डालता है। * वैकल्पिक उपचार पद्धतियों जैसे हर्बल औषधि और प्रोबायोटिक्स पर जोर।

4. **जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता:** * बढ़ती गर्मी और प्रदूषण से पशुधन प्रभावित होता है। * स्थानीय नस्लों का संरक्षण और वृक्षारोपण आवश्यक।

5. **पर्यावरण स्वास्थ्य:** * कचरा प्रबंधन, प्लास्टिक पर रोक, जल स्रोतों की सुरक्षा। * जैविक खेती और पशु अपशिष्ट का उपयोग।

* भारत में वन हेल्थ से जुड़े प्रयास

भारत सरकार और वैज्ञानिक संस्थाएं इस क्षेत्र में सक्रिय हैं:

राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम (NADCP): खुरपका-मुंहपका और ब्रूसेलोसिस पर रोक।

ICAR और ICMR की संयुक्त परियोजनाएँ: मानव और पशु रोग निगरानी।

राष्ट्रीय गोकुल मिशन: देशी नस्लों का संरक्षण, जिससे जलवायु सहनशील पशु मिलें।

गोबरधन योजना: गोबर और जैविक अपशिष्ट से ऊर्जा और खाद।

स्वच्छ भारत अभियान: पर्यावरण स्वच्छता में योगदान।

वैश्विक दृष्टिकोण

* WHO (विश्व स्वास्थ्य संगठन), FAO (खाद्य एवं कृषि संगठन) और WOAH (विश्व पशु स्वास्थ्य संगठन) मिलकर वन हेल्थ को बढ़ावा दे रहे हैं। * अमेरिका और यूरोप में One Health Task Force कार्यरत है। * कई देशों में मानव और पशु चिकित्सकों की संयुक्त टीम रोग नियंत्रण पर काम कर रही है।

चुनौतियां: * ग्रामीण स्तर पर जागरूकता की कमी। * पशु चिकित्सा सेवाओं का अभाव। * जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण का बढ़ता प्रभाव। * एंटीबायोटिक का अनियंत्रित उपयोग। * मानव और पशु चिकित्सकों के बीच समन्वय की कमी।

किसानों के लिए सुझाव: * पशुओं का समय-समय पर टीकाकरण कराएँ। * गोबर, मूत्र और अपशिष्ट का वैज्ञानिक प्रबंधन करें। * बिना डॉक्टर की सलाह के दवा न दें। * दूषित दूध या मांस का उपयोग न करें। * खेत-खलिहान और पशुशाला की स्वच्छता बनाए रखें। * पर्यावरण की रक्षा के लिए पेड़-पौधे लगाएँ।

निष्कर्ष: वन हेल्थ कांसेप्ट हमें यह सिखाता है कि मानव स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य और पर्यावरण स्वास्थ्य एक-दूसरे से जुड़े हैं और अलग-अलग नहीं देखे जा सकते। किसान, पशुपालक, पशु चिकित्सक और मानव चिकित्सक–सभी को मिलकर काम करना होगा। यदि पशु स्वस्थ हैं, पर्यावरण सुरक्षित है और मनुष्य जागरूक है, तभी समाज वास्तव में स्वस्थ और समृद्ध हो सकता है। यही वन हेल्थ की असली परिकल्पना है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

संक्रामक बर्सल रोग (IBD)

डॉ. पीयूष सिंह, डॉ. डी. के. जोल्हे
डॉ. आर. सी. घोष, डॉ. आर.एफ. कुजुर
डॉ. पी. सिंह, डॉ. दिव्या महिलाने
पशु विकृति विज्ञान विभाग पशु चिकित्सा व पशुपालन महाविद्यालय अंजोरा दुर्ग (छ.ग.)

संक्रामक बर्सल रोग जिसे गम्बोरो के नाम से भी जाना जाता है, युवा मुर्गियों आमतौर पर 3-6 सप्ताह की मुर्गियों का एक तीव्र और अत्याधिक संक्रामक रोग है। यह वायरस एविबिर्नावायरस ग्रुप से संबंधित है और दूषित फार्मो में महीनों तक जीवित रह सकता है, जिससे फार्मो के लिए एक बड़ा खतरा बन जाता है।

एक बार जब वायरस पक्षी में प्रवेश कर जाता है, तो यह प्रतिरक्षा प्रणाली के ऊतकों को प्रभावित करता है, विशेष रूप से बर्सा को, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिरक्षा दमन और अन्य संक्रमणों के प्रति संवेशनशीलता बढ़ जाती है, जैसे कि ई.कोलाई, साल्मोनेला, माइकोप्लाज्मा, कोक्सीडिया, मारेक रोग ओर अन्य।

रोग का प्रसार

1. गंबोरो रोग बहुत ही संक्रामक होता है। यह वायरस पोल्ट्री हाउस (मुर्गी पालन शेड) के वातावरण में लंबे समय तक जीवित रह सकता है, जिन शेड्स में संक्रमित पक्षी रहते हैं, वे 122 दिनों तक अन्य पक्षियों के लिए खतरनाक बने रहते है।
2. संक्रमण का मुख्य रास्ता मुँह है, लेकिन आँख और श्वसन तंत्र से भी संक्रमण हो सकता हैं
3. अंडे के माध्यम से यह वायरस नहीं फैलता।
4. जंगली पक्षी, इंसान, कीड़े-मकोड़े (जैसे जूँ, मच्छर), चूँहे जैसे जानवर और अन्य कीट भी इस वायरस को इधर-उधर ले जाकर फैलाते है।

लक्षण

1. मृत्युदर में अचानक वृद्धि, डिप्रेशन।
2. भूख कम लगना या भूख न लगना, कांपना और गंभीर रूप से थक जाना, सिकुड़ कर बैठना, उठने की अनिच्छा।
3. पंखे उलझे हुए (ruffled Feathers)
4. सफेद पानी जैसा दस्त।
5. आंखें बंद रखना, थकान और अंत में मृत्यु।

बहुत खतरनाक वायरस स्ट्रेन (VVIBDV) में मृत्यु दर 10-100% तक हो जाती है। हल्के रूप (Mild From) में अक्सर कोई स्पष्ट लक्षण नहीं दिखते, केवल विकास धीमा हो जाता है और दूसरी बीमारियाँ पकड़ने की संभावना बढ़ जाती है।

रोग का निदान

मरणोपरांत जाँच (Necropsy) निदान में मदद करती है, जो आमतौर पर इस तरह दिखाई देते है -

- मृत पक्षी निर्जलित दिखाई देते है।
- ब्रेस्ट की मांस पेशियाँ गहरे रंग की हो जाती है।
- अक्सर जाँघ (thigh) और ब्रेस्ट की मांस पेशियो में रक्त के धब्बे दिखाई देते है।
- बर्सा में अक्सर मृत कोशिकाओं के धब्बे पाए जाते है।
- तिल्ली (Spleen) बड़ी हो जाती है इसकी सतह पर छोटे-छोटे भूरे धब्बे पाए जाते है।
- प्रोवेन्ट्रिकुलस और गिर्जाड के जोड़ पर रक्त के धब्बे दिखाई देता है।
- किडनी-रोग के उन्नत चरणों या मरने वाली पक्षियों में किडनी सूजी हुई और सफेद दिखाई देती है। यह टयूब्यूल्स के फैलाव और यूरिक एसिड जमाव के कारण होता है।
- लीवर -लीवर हल्का सूजा हुआ होता है और किनारो पर मृत उत्तक दिखाई दें सकते है।

रोग का पुष्टिकरण निम्नलिखित प्रयोगशाला जाँच परिणाम के आधार पर किया जाता है -

1. सीरोलॉजी के लिए अगर जिल इम्यूनोडिफयूजन परीक्षण।
2. एंजाइम लिंक्ड इम्यूनोफ्लारेसेंस ऐसे (ELISA TEST)
3. हिस्टोपैथोलॉजी।

रोकथाम और नियंत्रण

उपचार - गम्बोरो रोग (IBD) के लिए अभी तक कोई उपचार उपलब्ध नही है।

नियत्रंण उपाय

पोल्ट्री फार्म के लिए जरूरी कदम -

1. फार्म गाँव-शहर की भीड़ से दूर और साफ जगह पर होना चाहिए।
2. अन्य वाहको जैसे कीड़े, मच्छर, चूहे आदि भी संक्रमण फैलाने में सहायक हो सकते है इसलिए इनका नियंत्रण जरूरी है।
3. नए खरीदे गए पक्षियों को पहले क्वारंटीन में रखें, फिर बाकी झुंड में मिलाएँ।
4. शेड, बर्तन, फीडर, पानी के बर्तन आदि की नियमित सफाई जरूरी है।
5. मृत पक्षियों को खुले में फेकने की बजाय गढ्ढे में दबाएँ या सुरक्षित तरीके से नष्ट करें।
6. फार्म के कर्मचारी हाथ धोएँ, साफ कपड़े और जूते पहनें।
7. गंदा या संक्रमित चारा-पानी बीमारियों का सबसे बड़ा कारण है।
8. झुंड को समय-समय पर टीका लगाना बहुत जरूरी है।
9. अगर अचानक मुर्गियाँ मरने लगे तो तुरंत पशुचिकित्सक को जानकारी दें।
10. गम्बोरो रोग का कोई इलाज नही है इसलिए रोकथाम ही मुख्य उपाय है।

किसानों के लिए संदेश

जैव सुरक्षा कोई 'महँगी तकनीक' नहीं हैं, बल्कि छोटी-छोटी सावधानियाँ है-जैसे सफाई, प्रतिबंध, टीकाकरण और जागरूकता, इससे न केवल आपके मुर्गियाँ बचेगी, बल्कि आपका रोजगार भी सुरक्षित रहेगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

पुष्प जगत के कुछ अनछुये तथ्य

✍ **रोमा वर्मा** शाक-सब्जी विभाग
महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी
विश्वविद्यालय, सांकरा, दुर्ग (छ.ग.)

पूरे विश्व में पुष्प जगत आठ लाख हेक्टर भूमि पर अपना अधिपत्व बनाये हुए हैं जिसकी नैसर्गिक सुन्दरता अद्वितीय है। आज मैं फूलों की दुनिया के कुछ अजूबे तथा अनछुये तथ्यों को आप के समक्ष रखूंगी जो निम्नलिखित हैं-

फूलों से मनचाही सुगंध

जल्द ही आप अब फूलों से मनचाही सुगंध प्राप्त कर सकेंगें। वाड़, आयरलैण्ड इंपीरियल कॉलेज की डॉक्टर हेजेल मैकटैविष का मानना है कि जीनियागरी की तकनीक से फूलों से मनचाही सुगंध प्राप्त की जा सकती है। उनके अध्ययन का एक पहलू यह जानना भी है कि पौधों और फूलों से निकलने वाली सुगंध अपने आपको हवा में कैसे मिश्रित कर देती है।

अनुवांशिक अभियांत्रिकी से अब नीले गुलाब खिलेंगे

ऑस्ट्रेलिया के अनुवांषिकविदों ने चार वर्षों के अथक प्रयासों के बाद फूलों में नीला रंग संश्लेषित करने वाले जीन को निकालकर लाल गुलाल के पौधों में प्रत्यारोपित करने में सफलता प्राप्त कर ली है। फूलों में नीला रंग डेलफिंड वर्णक के कारण होता है। इन वैज्ञानिकों ने इस वर्णक का जनक जीन पहले तो नीले डलकिंगम नामक फूल से और बाद में नीले पिटूनिया के फूलों से प्राप्त किया है। नीले फूल उत्पन्न करने के लिए जीन को प्राप्त करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। गुलाब के फूलों में यह जीन नहीं पाया जाता है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि फूलों में रंगों का विकास एक जटिल विषय है। एक पौधे से जीन निकालकर दूसरे में प्रत्यारोपित करना इस दिषा में एक छोटा सा कदम होगा। इसके अतिरिक्त पौधों में पाये जाने वाले अन्य वर्णक तथा मिट्टी में उपस्थित विभिन्न लवण भी फूलों के रंगों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

फूलों का जन्म से मनुष्य से संबंध

फूलों का मनुष्य से संबंध जन्म लेते ही जुड़ जाता है। परंतु साधारणतया हम नहीं जानते हैं कि यदि हमारा जन्म जनवरी महीने में हुआ है तो हमारे लिए कौन सा फूल शुभ होगा। **नीचे की सारणी में विभिन्न महीनों में जन्म लेने वाले व्यक्तियों के लिए शुभ-फूलों को दर्शाया गया है -**

जन्म के अनुसार शुभ फूल

क्रमांक	जन्म के महीने	शुभ-फूल
1.	जनवरी	आइस फ्लावर (स्नों ड्राप)
2.	फरवरी	प्राइम रोज
3.	मार्च	डैफोडिल
4.	अप्रैल	डेजी
5.	मई	हॉथार्न
6.	जून	गुलाब
7.	जुलाई	लार्कस्पर
8.	अगस्त	पॉपी
9.	सितम्बर	मार्निग ग्लोरी
10.	अक्टूबर	कैलेंडुला
11.	नवम्बर	गुलदाउदी
12.	दिसम्बर	हॉलीहांक

फूलों से बने सौन्दर्य-प्रसाधनों का विष्णु पुराण में वर्णन

प्राचीन भारत में भी फूलों का तथा इनसे बने सौंदर्य प्रसाधनों का इस्तेमाल युवतियाँ, अपनी सुन्दरता निखारने में किया करती थी। जल में सुगंधित पुष्प, चन्दन, केसर आदि सुगंधित द्रव्य डालकर स्त्रियों द्वारा स्नान करने की परंपरा राजाओं एवं महाराजाओं के परिवार में मुख्य रूप से चलन में था। स्नान के पश्चात् खस, तगर, गुलाब, केवड़ा तथा बेला आदि की पंखड़ियों को पीस कर उसके लेप लगाने का वर्णन विष्णु-पुराण में अंकित है। खस-खस, हल्दी संतरे के फलों के सूखे छिलके, केसर, केंवड़े, गुलाब और चमेली के फूलों की पंखुड़ियां गाजर तथा टमाटर के गुदे, मलाई तथा चने के बेसन इत्यादि का

पुष्प जगत का एक अद्भुत दृष्य

प्रयोग सौन्दर्य वृद्धि के लिए किया जाता था, आज इन्हीं वस्तुओं से हर्बल सौंदर्य प्रसाधनों का उत्पादन तथा इस्तेमाल जोरों पर है।

फूल खिलने का रहस्य

बीज बोने के कितने दिन बाद, उन पौधों पर फूल खिलेंगे यह बीज एवं प्रकृति के उपर निर्भर करता है। कुछ पौधों के बीजों को बोने के दो-तीन महीनों के बाद ही फूल खिलते हैं जबकि अन्य पर 2-3 वर्षों में। फूलों की दुनिया भी अजीब है, बीज बोने पर एक वर्ष से 400 वर्ष तक का समय लगता है, उन पर फूल आने में। नीचे की सारणी में कुछ पौधों पर फूल खिलने में लगे समय को दर्षाया गया है।

विभिन्न प्रकार के फूलों के फूल खिलने में लगी अवधि

फूलों के नाम	बीज बोने के बाद फूल खिलने की अवधि
एस्टर, बालसम, फ्लोक्स, कैन्डी टफ्ट	2-3 महीने
एलथीया फेसीफोलीया, डिजीटेलिस परपुरिया	12 महीने
फूलदार झाड़िया-जैसे, हरसिंगार, मेंहदी, रात की रानी, दिन का राजा इत्यादि	2-3 वर्ष
कुरीनजी (स्ट्रोविलैथस कुन्थीयानस)	12 वर्ष
कोरिफा अनब्राचीफेरा	60-70 वर्ष
एरूनडिनेरिया मेटाके	120 वर्ष
फोरक्रोया	400 वर्ष

रायपुर : महिला कृषकों के लिये उपयुक्त सहयोगी कृषि उपकरण पर प्रशिक्षण कार्यक्रम सम्पन्न

रायपुर। प्रदेश में "महिला कृषकों के लिये उपयुक्त सहयोगी कृषि उपकरण विषय पर आयोजित तीन दिसवीय प्रशिक्षण कार्यक्रम" सम्पन्न हुई। यह प्रशिक्षण कार्यक्रम विकासखंड धरसीवां के ग्राम सिलतरा में किया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम केन्द्रीय कृषि मशीनरी प्रशिक्षण एवं परीक्षण संस्थान, ट्रैक्टर नगर, बुदनी मध्यप्रदेश, राज्य स्तरीय कृषि यंत्र परीक्षण प्रयोगशाला रायपुर, कृषि विज्ञान केन्द्र रायपुर, एवं इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित की गई थी। प्रशिक्षण कार्यशाला के पहले दिन पंजीयन उपरांत प्रशिक्षण के रूपरेखा से अवगत कराया गया तथा बुदनी में वर्ष भर होने वाले आवासीय प्रशिक्षणों के संबंध में जानकारी दी गयी। कार्यशाला में बताया गया कि प्रशिक्षण प्राप्त करके ना सिर्फ महिलायें बल्कि गांव के युवा वर्ग ग्रामीण आजीविका का एक नया साधन स्वयं के लिये बना सकते हैं। ये प्रशिक्षण कार्यक्रम निशुल्क रहते हैं तथा तिथिवार प्रशिक्षण कैलेंडर संस्थान की वेबसाईट में उपलब्ध रहता है। यह संस्थान भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत आता है। प्रशिक्षण के दौरान बताया गया कि वर्ष 1955 से किसानों के हित व कृषि क्षेत्र में मशीनीकरण को बढ़ावा देने का कार्य इस संस्थान द्वारा किया जा रहा है। महिलाओं हेतु उपयोगी कृषि उपकरणों की भी जानकारी दी गई।

पशुओं के लिए पौष्टिक हरा चारे की स्रोत- जई

डॉ. छत्रपाल सिंह पुहुप, डॉ. वी.के. खुणे
डॉ. रूपल पाठक, डॉ. भारती साहू
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, अंजोरा, दुर्ग (छ.ग.)

परिचय

जई रबी मौसम की एक महत्वपूर्ण चारे की फसल है। रबी के चारे की फसलों में बरसीम के बाद इसका ही स्थान है। इसकी खेती सिंचित व कम सिंचाई वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसका हरा चारा बहुत ही स्वादिष्ट, पौष्टिक व पाचनशील होता है, इसलिए पशु इसे बड़ी रुचि से खाते हैं। सर्दियों में इसके हरे चारे को बरसीम या गेहूँ के भूसे के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाया जाता है। बहु कटाई वाली किस्मों के कारण इसके हरे चारे की उपलब्धता ज्यादा समय तक बनी रहती है। बहु कटाई वाली किस्मों से छत्तीसगढ़ में 2 से 3 कटाई ली जा सकती है। इससे 'हे' व 'साइलेज' भी बनाया जा सकता है। छत्तीसगढ़ के लिये यह फसल उपयुक्त है।

पोषण मूल्य

जई के हरे चारे में 8-10 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन, 18-23 प्रतिशत शुष्क पदार्थ तथा 60-70 प्रतिशत पाचनशीलता होती है। इसमें 55-56 प्रतिशत न्यूट्रल डिटरजेंट रेशा, 30-32 प्रतिशत अम्लीय डिटरजेंट रेशा, 22-23.5 प्रतिशत सेल्यूलोज एवं 17-20 प्रतिशत हेमीसेल्यूलोज पाई जाती है।

जलवायु

जई फसल के लिये ठंडी जलवायु उपयुक्त है। 15-20 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। गर्म एवं शुष्क जलवायु का इसके उपज पर विपरीत असर पड़ता है। अधिक तापमान एवं शुष्क वातावरण इसके बढ़वार व बीजोत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालते है। इसकी खेती 70-100 सें.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में की जा सकती है।

मृदा एवं खेत की तैयारी

जई फसल के लिए दोमट या बलुई दोमट मिट्टी के साथ अच्छे जल निकास वाली उपयुक्त होती है। खेत की जुताई देशी हल या हैरो या कल्टीवेटर से करके मिट्टी भुरभुरी कर पाटा चला लेना चाहिए। ऐसा करने से खरपतवार भी नष्ट हो जाते हैं। बीज की अंकुरण अच्छी तरह से होती है।

उन्नत किस्में

एकल कटाई: कैंट, हरिता (आर.ओ.-19), जे.ओ.-1.

दो या तीन कटाई: बुंदेल जई-822, बुंदेल जई-851, बुंदेल जई-2004, यू.पी.ओ. -212 एवं जे.ओ.-52.

बुआई का समय

बुआई का सर्वोत्तम समय अक्टूबर माह के अंत से नवम्बर माह के मध्य तक करनी चाहिये। समय से बुआई करने पर अधिक हरा चारा का उत्पादन किया जा सकता है। छत्तीसगढ़ में दो से तीन कटाई प्राप्त करने के लिये नवंबर के प्रथम पखवाड़े तक अवश्य बुवाई कर लेनी चाहिये।

बीज दर एवं बुआई विधि

जई की अच्छी उत्पादन हेतु बीज दर 80-100 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होती है। बीज की बुआई कतार या छिड़काव विधि से कर सकते हैं। कतार विधि से बुआई करने के लिए कतार से कतार दूरी 25 से.मी. व 3-4 से मी गहराई पर करनी चाहिए। बुआई हल के पीछे या सीडड्रिल द्वारा की जा सकती है। किसान इसकी बुवाई छिड़का विधि से भी करते है। अच्छी अंकुरण के लिए भूमि में पर्याप्त मात्रा में नमी का होना आवश्यक है।

बीजोपचार

बीज की उपचार हेतु थायरम / 2 ग्राम या कार्बेन्डाजिम 50% डब्लू. पी. / 2.0-2.5 ग्राम प्रति किग्राण् बीज की दर से उपचारित करना चाहिये। एजेटोबेक्टर कल्चर 5-10 ग्राम प्रति किग्रा बीज से उपचारित करें। उपचारित करने के लिए एक पैकेट (50 ग्राम) एजेटोबेक्टर 10 किग्राण् बीज के लिए पर्याप्त है। ध्यान रहे पहले फफूंदनाशक एवं उसके बाद जैव-एजेंट कल्चर से उपचार करें।

खाद एवं उर्वरक

जई उत्पादन हेतु गोबर की खाद 20-25 टन प्रति हेक्टेयर डालनी चाहिए। उर्वरक की मात्रा एकल कटाई वाले किस्म में 100:60:40 एवं बहु कटाई वाले किस्म में 140:60:40 कि.ग्रा. नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा बुआई के समय एवं शेष बची आधी मात्रा दो भागों में किस्म के आधार पर 20-30 दिन बाद एवं 50-60 दिन बाद करें। बहु कटाई वाली किस्मों में प्रत्येक कटाई के बाद 20 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें। बहु कटाई वाली किस्मों में तीन कटाई प्राप्त करने हेतु 140 कि. ग्रा. नत्रजन का प्रयोग 50 प्रतिशत भाग बुवाई के समय शेष 25 प्रतिशत नत्रजन प्रथम कटाई एवं 25 प्रतिशत नत्रजन को द्वितीय कटाई के उपरांत सिंचाई करते हुये प्रयोग करें।

सिंचाई प्रबंधन

जई की खेती के लिए 3-4 सिंचाईयाँ पर्याप्त होती हैं। कल्ले निकलने एवं दाना भरने की अवस्था में सिंचाई अवश्य करें। अच्छे अंकुरण हेतु बुवाई के तुरंत बाद सिंचाई करनी चाहिए। बहु कटाई वाली किस्म में प्रत्येक कटाई उपरान्त नत्रजन एवं सिंचाई का प्रयोग अवश्य करें।

खरपतवार प्रबंधन

गुणवत्ता युक्त हरा चारा प्राप्त करने के लिए खरपतवार नियंत्रण करना अति आवश्यक है। खेत में उगने वाले खरपतवारों की रोकथाम करने के लिए बुआई के तुरंत बाद 2-3 दिन बाद खरपतवारनाशी पेंडिमेथालिन / 0ण75 ली. सक्रिय तत्व को 500-600 ली. प्रति हेक्टेयर बुआई के छिड़काव करें। यह दवा खरपतवार की अंकुरण अवस्था में ही प्रभावी होती है और 30-35 दिन तक नियंत्रण देती है।

कीट एवं व्याधि नियंत्रण

एफिड के प्रकोप से बचाव के लिए इमिडाक्लोप्रिड 22 ई.सी. या डाइमिथोइट 30 ई. सी. 0.05 प्रतिशत को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना। खड़ी फसल में दवा छिड़काव के बाद 10 दिनों तक वह चारा पशुओं को नहीं देना चाहिए।

कटाई

एकल कटाई वाली किस्मों में 50 प्रतिशत बालियों आने पर कटाई करनी चाहिए। बहु कटाई वाली किस्म की पहली कटाई 50-55 दिनों पर, दूसरी कटाई पहली कटाई के 45 दिनों बाद तथा तीसरी कटाई 50 प्रतिशत फूल आने पर करनी चाहिए। बहु कटाई में कटाई जमीन से 8-10 से.मी ऊपर से काटना चाहिए ताकि जई का विकास जल्दी हो सके।

चारे की उपज

अच्छे फसल प्रबंध द्वारा एकल कटाई वाली किस्म से 350-400 क्विंटल हरा चारा प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है एवं बहु कटाई वाली किस्मों से 500-600 क्विंटल हरा चारा प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है।

प्रो. (डॉ.) भागचन्द्र जैन उपाध्यक्ष
राष्ट्रीय कृषि पत्रकार संघ (नाज), 20, महावीर नगर
पोस्ट-रविग्राम, रायपुर-492001 (छत्तीसगढ़)

अमरकंटक के आसपास मटर की फली का बढ़ता व्यापार

नर्मदा जी के उद्गम स्थल अमरकंटक के समीप पहाड़ी क्षेत्रों में भू-संरचना और जलवायु की विभिन्नता के कारण मटर की फसल तैयार होने में बहुत बड़ा अंतर नजर आता है। सामान्यतया सभी इलाकों में रबी फसल के रूप में मटर की बुआई अक्टूबर माह में शुरू होती है, तब अमरकंटक के समीपी पहाड़ी क्षेत्र रूसा-करंजिया के कृषक मटर की फसल तैयार कर लेते हैं और हरी फली के व्यापार में संलग्न होते हैं। अक्टूबर में फसल का तैयार होना क्षेत्रीय कृषकों के लिए महान उपलब्धि है। यह वे मौसम

खेती प्रकृति की देन है-ऐसा इस आदिवासी अंचल में माना जाता है। जबकि वास्तविकता यह है कि फसलों के विकास के लिए एक निश्चित मौसम की आवश्यकता होती है, भूमि में नमी और उपयुक्त तापक्रम की अंकुरण के लिए जरूरत होती है। जब तापक्रम, नमी जैसे कारकों को उपयुक्तता इस क्षेत्र में होती है-तब मध्य अगस्त से यह मटर की वर्षाकालीन खेती शुरू हो जाती है।

मध्यप्रदेश के आदिवासी बाहुल्य डिण्डौरी जिले में मटर की वर्षाकालीन खेती और पहाड़ों पर रामतिल की खेती आकर्षक का केन्द बनी हुई है। यह खेती अधिक लाभ भी देती है। जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर के आदिवासी कृषि अनुसंधान केन्द्र, डिण्डौरी द्वारा कृषि तकनीकी के प्रचार-प्रसार हेतु कदम उठाए जा रहे हैं, जिससे प्रभावित होकर किसानों ने अपनी आमदनी बढ़ायी है। अमरकंटक के समीपी पहाड़ी क्षेत्र रूसा-करंजिया में कृषि विकास की प्रबल संभावनाएं हैं, जिन्हें साकार करने के लिये कृषि अनुसंधान केन्द्र, डिण्डौरी तथा बैगा विकास परियोजना विशेष रूप से तत्पर है। ऐसी दुमट भूमि, जिसमें जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो मटर की वर्षाकालीन खेती के लिए उपयुक्त होती है। डिण्डोरी और शहडोल जिलों की भूमि बहुत उपयुक्त पायी गई है, परंतु इन जिलों की कंकरीली-पथरीली भूमि मटर हेतु अनुपयुक्त होती है। इस अंचल के कृषक आर्केल, जवाहर मटर 3 और जवाहर मटर 4 जातियों से हरी फली का उत्पादन करते हैं।

आर्केल

इसकी फली लंबी होती है जिसका स्वाद अधिक मीठा होता है। बुआई के लगभग 50 दिन बाद फली की पहली तुड़ाई सब्जी के लिए शुरू हो जाती है, इस जाति से हरी फली का उत्पादन 45 से 50 क्विंटल तक प्रति हेक्टेयर होता है।

जवाहर मटर 3

जवाहर मटर 3 की हरी फली बुआई के डेढ़ माह बाद आ जाती है तथा 50 क्विंटल तक हरी फली की उपज प्रति हेक्टेयर मिलती है।

जवाहर मटर 4

इसकी फली बड़े आकार की होती है, इसलिए अन्य जातियों की तुलना में इसे अधिक बाजार भाव मिलता है। बुआई के लगभग 55 दिन बाद हरी फली की तुड़ाई शुरू हो जाती है तथा यह जाति 60 क्विंटल तक प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

बुआई

एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 75 से 80 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। यहां मटर की खेती के लिए बुआई मध्य अगस्त में की जाती है। किसान मटर के बीज का उपचार बुआई पूर्व राइजोबियम कल्चर से करते हैं।

उर्वरक

मटर की खेती में यहां सामान्यतया 20 किलोग्राम नत्रजन तथा 50 किलोग्राम स्फूर प्रति हेक्टेयर दिया जाता है।

शुद्ध लाभ

डिण्डौरी जिले के करंजिया विकास खण्ड के अंतर्गत रूसा, बुंदेला, करंजिया गांवों के किसानों के सर्वेक्षण से जानकारी मिली है कि मटर की खेती में प्रति हेक्टेयर लागत 11368 से लेकर 13774 रूपये तक आती है, जबकि कुल प्रतिफल 57000 रुपए से 81250 रुपए प्राप्त हुआ है। मटर की इस वे मौसम खेती से प्रति हेक्टेयर लागत लाभ अनुपात 3.60 से 4.89 रुपए प्राप्त हुआ है।

तालिका 1: मटर की खेती में परिवर्तनशील लागत

(रुपये प्रति हेक्टेयर)

क्रमांक	विवरण	रूसा	बुंदेला	क्रंजिया
1.	खेत की तैयारी	2640	2300	2220
2.	खाद-उर्वरक	2046	1830	1752
3.	बीज	2250	2200	2200
4.	पौध संरक्षण	420	360	350
5.	देखरेख	900	1000	1000
6.	फली तुड़ाई	2500	2200	1920
7.	कार्यशील पूंजी पर ब्याज	646	594	566
कुल	परिवर्तनशील लागत	11402	10484	10008

मटर की वे मौसम खेती में किसान परम्परागत तरीके से खेती करते हैं, जिन्हें नई कृषि तकनीक के लिए प्रेरित करना होगा। इस अंचल से हरी फली का व्यवसाय मध्यप्रदेश के बाहर तक जुड़ा हुआ है। मध्य अक्टूबर में यहां से ट्रक लदकर दूर-दूर तक जाते रहते हैं तथा हरी फली की मांग की पूर्ति हेतु कृषक संलग्न रहते हैं। यदि किसान संगठित होकर विपणन हेतु प्रयास करें तो एक ओर जहां अधिक मूल्य प्राप्त होगा, वहां दूसरी ओर विपणन लागत में कमी आएगी।

तालिका 2: मटर की खेती से लाभ

(रूपये प्रति हेक्टेयर)

क्रमांक	**विवरण**	**रूसा**	**बुंदेला**	**करंजिया**
1.	परिवर्तनशील लागत	11402	10484	10008
2.	स्थिर लागत	1252	1280	1240
3.	विपणन लागत	1120	1120	1120
	कुल लागत	**13774**	**12884**	**12368**
4.	उपज (क्विंटल)	32.50	25.70	22.80
5	औसत बाजार भाव (रूपये प्रति क्विंटल)	2500	2500	2500
	कुल आमदनी	**81250**	**64250**	**57000**
6	शुद्ध लाभ	67476	51366	44632
7.	लागत लाभ अनुपात	1.00: 4.89	1.00: 3.98	1.00: 3.60

अमरकंटक के समीपी क्षेत्रों में मटर की खेती को बढ़ावा देने के साथ-साथ उसे विपणन सुविधाओं से जोड़ना आवश्यक है। यहां के कृषक बे-मौसम मटर की खेती को प्रकृति की अद्भुत देन मानते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा था-

तुलसी विरवा बाग के,सींचें से कुम्हलांय। राम भरोसे जो रहें,पर्वत पर हरयांय।।

बेमौसम मटर की खेती भी बिना सिंचाई के की जा रही है, जहां उन्नत कृषि तकनीक अपनाने के लिये किसान आगे आएं। सब्जी बाजारों से जुड़ने संगठित हों, ऐसा होने पर यह निश्चित है कि कृषि विकास की अपेक्षित दर प्राप्त करने में सफलता मिलेगी।

✍ **अनुराग सिंह, अदेश कुमार** आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

खरीफ मौसम में उत्तर भारत में जैविक मक्का की खेती : तकनीक, लाभ और प्रबंधन

1. प्रस्तावना

उत्तर भारत (उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखंड, राजस्थान के कुछ भाग) में खरीफ के मौसम (जून जुलाई से शुरू होकर सितंबर अक्टूबर तक) जैविक मक्का उत्पादन पर यह लेख केन्द्रित है। इसमें भूमि तैयारी, बीज, पोषण, कीट एवं रोग नियंत्रण, चुनौतियां, सरकार योजनाएं और आर्थिक पहलुओं की समग्र विवेचना की गई है।

2. खरीफ मौसमी जैविक मक्का का महत्व

- भारत में 85% मक्का उत्पादन खरीफ में होता है; यह चारा, फीड, फूड और औद्योगिक (जैसे स्टार्च, ईथेनॉल) उपयोगों में आता है।
- उत्तर भारत में विशेषकर उत्तर प्रदेश में मक्का उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है; 2024-25 खरीफ में यूपी ने मक्का की खेती 5 लाख हेक्टेयर में की, कुल खाद्य अनाज में योगदान 725 लाख टन रहा।
- जैविक उत्पादन का उद्देश्य रसायनों से बचाव, मिट्टी स्वास्थ्य, उपभोक्ता सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण है।

3. भूमि तैयारी एवं बीज चयन

भूमि तैयारी

- खेत को एक या दो बार हल चलाकर मुक्त करें, FYM लगभग 5 टन/हेक्टेयर और कम्पोस्टिंग बैक्टीरिया मिलाकर कम से कम 10 दिन तक छोड़ें, फिर ट्रैक्टर से तुल्य स्तर बनाएं।
- जैविक प्रणाली (Jaivik Krishi) में स्थानीय गोबर, पौष्टिक जलाशय और पंचगव्य आधारित जैविक इनपुट प्रयोग करने से भूमि की जैविक गतिविधियां बढ़ती हैं।

बीज चयन

- उत्तर भारतीय मैदानी इलाकों में ऑर्गेनिक प्रणालियों के लिए विशेष जांच में PMH 1 और PMH 3 किस्में बेहतर उत्पादन (>5त/है.) और लाभप्रद (B:C 1.79, रु. 66,759/हे.) साबित हुई ।
- Bihar में RPCAU द्वारा विकसित जैव फोर्टिफाइड 'Shaktiman 5%, Baby Corn 1, Pop Corn 1 जैसी किस्में ज़ोन विशेष के लिए उपयोगी हैं ।

बुवाई समय व दर

- खरीफ मास के लिए बुवाई आदर्श रूप से जून मध्य से जुलाई मध्य तक की जाती है; यूपी में 15 जून 15 जुलाई बुवाई सर्वाधिक उपयुक्त मानी गई है।
- बीज दर लगभग 20-25 किलो/हे. और गहराई 4-5 सेंमी रखी जाती है। Spacing 60-75 सेंमी व पौधों के बीच 20-25 सेंमी उचित रहता है।

4. पोषण प्रबंधन (न्यूट्रीशन)

जैविक उर्वरक

- FYM, कम्पोस्ट, जैव-तरल जैसे पंचगव्य, दासपर्णी आधारित slurry का प्रयोग करें। ये मिट्टी में कार्बन, सूक्ष्मजीव गतिविधि, एंजाइम सक्रियता बढ़ाते हैं।
- पट्टिका परीक्षण के आधार पर जैविक स्रोतों से NPK पोषण व्यवस्थित रूप से सुनिश्चित करें।

5. जल व्यवस्था एवं सिंचाई

- खरीफ मौसम में मानसून आधारित सिंचाई अपेक्षित होती है लेकिन सूखे या अनियमित मानसून की स्थिति में आवश्यकतानुसार वर्षा जल संचयन, खोड़ाघाट विधि या तालाबियों से सिंचाई की व्यवस्था करनी होती है।
- जैविक प्रणाली में जल को संरक्षित रखने के लिए मल्चिंग, अवशिष्ट पदार्थों का रोटेशन, जल संरक्षण तकनीकें अपनानी चाहिए।

6. खरपतवार, कीट एवं रोग नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण

- जैविक प्रणाली में रासायनिक दवा अनुप्रयोग नहीं होते; इसलिए सतह पर कुदाई, मैन्युअल हटाना, व मल्चिंग तकनीकें अपनायी जाती है।
- क्लोब तेल, दालचीनी तेल, लहसुन आयल, साइट्रिक एसिड या अमोनियम नोनानोएट जैविक रूप से स्वीकृत उर्वरक/कीटनाशक में शामिल हैं।

कीट एवं रोग प्रबंधन

- भूमि जुताई से Wireworm, cutworm जैसे कीटों की संख्या कम होती है; जैविक विधियों (जैव उत्पाद, पंचगव्य) से प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाई जा सकती है।

संतुलित पौष्टिक प्रबंधन और स्वस्थ पौधे की शक्ति से संक्रमण की संभावना घटती है।

7. कटाई एवं भंडारण

- फसल की कटाई तब करें जब नमी स्तर 12-14% हो ताकि अनाज सुरक्षित रख सकें।
- जैविक उत्पाद पर 'इंडिया ऑर्गेनिक' प्रमाणन के लिए APEDA द्वारा निर्धारित NPOP मानकों का पालन करना अतिशय आवश्यक है जिसमें भूमि संक्रमण अवधि (2-3 वर्ष) रसायन उपयोग बंद होना शामिल है।
- प्रमाणन हेतु FPO के माध्यम से आवेदन, निरीक्षण एवं मार्केटिंग सहायता ली जा सकती है।

8. उत्पादन, लाभ एवं चुनौतियां

उत्पादन एवं लाभ

- उत्तर पश्चिमी IGP में PMH 1 एवं PMH 3 जैसी किस्मों से 5 त/है. से अधिक उपज संभव; B:C अनुपात 1.8 और आर्थिक retorno रु. 66,000+ प्राप्त हुआ था।
- यूपी में आधुनिक तकनीक और अच्छी किस्मों के प्रयोग से कभी-कभी 100 रु. क्विंटल/हेक्टेयर तक भी उत्पादन संभव बताया गया है।

चुनौतियाँ

1. **प्रमाणन लागत**-जैव प्रमाणन महंगा और समय साध्य है।
2. **जैविक इनपुट की उपलब्धता कम और महंगी होती है;** जागरूकता की कमी है।
3. **स्थान-विशेष प्रौद्योगिकी की कमी**-हर क्षेत्र रबी/खरीफ का अलग मौसम, मिट्टी और जलवायु होती है।
4. **कीट नियंत्रण सीमित उपलब्धता**-जैविक किसानों में तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता।

9. सरकारी योजनाएँ एवं समर्थन

- National Food Security Mission (NFSM), Rashtriya Krishi Vikas Yojana (RKVY) के तहत मक्का संवर्धन और प्रशिक्षण योजनाएँ जारी हैं।
- Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana (PMFBY) से किसानों में फसल बीमा कवरेज उपलब्ध है, खरीफ मक्का भी शामिल है।
- Paramparagat Krishi Vikas Yojana FPO समूहों में जैविक खेती के लिए क्लस्टर-based समर्थन, प्रमाणन सब्सिडी (?20,000/एकड़ तीन वर्षों में) प्रदान करता है।

10. समेकित सुझाव और नीति मार्गदर्शन

- क्षेत्रीय प्रमाणित किस्में (PMH 1, PMH 3, Shaktiman 5) का प्रयोग करें।
- जैविक सामूहिक क्लस्टर (FPO) के माध्यम से सामूहिक प्रशिक्षण, इनपुट और विपणन प्रबंधन करें।
- पंचायत और विभाग के माध्यम से तकनीकी सहायता एवं किसान मित्र प्रणाली ज़रूरी है (जैसे पंजाब में 200 'किसान मित्र')।
- स्थानीय अनुभव, अनुसंधान (ICAR IARI, RPCAU आदि), एवं किसान प्रयोग आधारित प्रौद्योगिकियों को अपनाएं।
- **खेत से बाज़ार तक निगरानी**-प्रमाणन से लेकर मार्केटिंग और MSP दुकानों तक सीधी पहुंच सुनिश्चित करें।

11. निष्कर्ष

उत्तर भारत में खरीफ मौसम में जैविक मक्का उत्पादन एक संभावनापूर्ण और लाभकारी खेती का विकल्प साबित हो सकता है-मिट्टी का संरक्षण, उत्पादन की निरंतरता और पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित करेगा। भारत में जैविक कृषि का क्षेत्र अभी भी लगभग 2% से भी कम है, जबकि किसानों की संख्या अधिक है। यदि राज्य स्तर पर जागरूकता, प्रशिक्षण, प्रमाणन सहायता एवं मूल्य समर्थन प्रदान किया जाए तो जैविक मक्का खेती विस्तार के साथ मुनाफे और पर्यावरण सुरक्षा में सहायक सिद्ध होगी।

✍ **डॉ. नेहा चौधरी** शोध सहयोगी, वनस्पति विभाग, अनुसंधान एवं विकास प्रकोष्ठ, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

मशरूम की खेती: पोषण, औषधीय एवं आर्थिक दृष्टिकोण से एक वैज्ञानिक अध्ययन

परिचय

मशरूम की खेती पिछले कुछ दशकों में अत्यधिक वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक महत्व प्राप्त कर चुकी है। यह एक विशेष प्रकार का खाद्य कवक (Fungus) है, जो कृषि-अवशेषों, लकड़ी के बुरादे और अन्य लिग्नोसेलुलोजिक (Lignocellulosic) अपशिष्ट पदार्थों पर उगाया जा सकता है। पारंपरिक फसलों से भिन्न, मशरूम खेती न केवल पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराती है बल्कि अपशिष्ट प्रबंधन एवं पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मशरूम अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य केवल एक खाद्य पदार्थ उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि वैश्विक चुनौतियों–जैसे खाद्य असुरक्षा, कुपोषण, बेरोजगारी और अपशिष्ट प्रबंधन–के समाधान की दिशा में योगदान करना भी है।

मशरूम खेती पर शोध करने का औचित्य

1.पोषण संबंधी महत्व

मशरूम प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन (विशेष रूप से बी-कॉम्प्लेक्स और विटामिन D), तथा खनिज तत्वों (लौह, फास्फोरस, पोटैशियम, सेलेनियम आदि) से भरपूर होते हैं। यह वसा और कैलोरी में कम होते हैं। अनुसंधान के माध्यम से विभिन्न प्रजातियों की अधिक पौष्टिकता वाली खेती विकसित की जा सकती है।

2.औषधीय महत्व

मशरूम में पाए जाने वाले बायो-एक्टिव यौगिक (जैसे पॉलीसैकराइड, टरपेनॉयड और फिनॉलिक यौगिक) कैंसर-रोधी, एंटीऑक्सीडेंट, एंटीमाइक्रोबियल और प्रतिरक्षा-वर्धक गुण रखते हैं। शोध का उद्देश्य इन औषधीय तत्वों का उत्पादन बढ़ाने की दिशा में उचित परिस्थितियाँ ढूँढना है।

3.आर्थिक महत्व

यह कम लागत और कम भूमि में की जाने वाली लाभकारी कृषि गतिविधि है। शोध से सस्ते सब्सट्रेट, बेहतर बीज उत्पादन (स्पॉन प्रोडक्शन) और उन्नत तकनीकों की खोज संभव है, जिससे छोटे और सीमांत किसान भी इसका लाभ उठा सकें।

4.पर्यावरणीय महत्व

मशरूम कृषि-अवशेषों और बचे हुए कचरे को प्रयोग में लाकर न केवल प्रदूषण कम करते हैं, बल्कि जैविक खाद भी उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार मशरूम खेती टिकाऊ कृषि (Sustainable Agriculture) को बढ़ावा देती है।

5.खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण विकास

जनसंख्या वृद्धि के कारण पोषण संबंधी असुरक्षा बढ़ रही है। मशरूम प्रति इकाई सब्सट्रेट पर उच्च मात्रा में प्रोटीन और पोषण प्रदान करते हैं। यह ग्रामीण युवाओं और महिलाओं के लिए आय एवं रोजगार का साधन बन सकता है।

शोध के उद्देश्य

- विभिन्न मशरूम प्रजातियों (जैसे Pleurotus spp., Agaricus bisporus, Ganoderma lucidum) की खेती तकनीकों का मानकीकरण।
- तापमान, आर्द्रता, प्रकाश और वेंटिलेशन जैसे पर्यावरणीय कारकों का उत्पादन पर प्रभाव का अध्ययन।
- स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कृषि-अवशेषों का प्रयोग करके लागत कम करना और अपशिष्ट प्रबंधन करना।
- खेती की परिस्थितियों के अनुसार मशरूम की पोषण और औषधीय गुणवत्ता का मूल्यांकन।
- स्पॉन उत्पादन की नई तकनीकों का विकास करना।
- उत्पादन उपरांत (Post-harvest) संरक्षण, प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन के उपाय विकसित करना।
- रोग, कीट और संक्रमण की समस्याओं के समाधान हेतु प्रभावी विधियाँ विकसित करना।

शोध का महत्व

- **वैज्ञानिक योगदान:** कवक की जैविकी, पारिस्थितिकी एवं बायोटेक्नोलॉजी में नई जानकारी प्रदान करता है।
- **कृषि नवाचार:** किसानों को वैकल्पिक आय स्रोत उपलब्ध कराता है।
- **पर्यावरणीय लाभ:** कृषि अपशिष्ट कम करने और प्रदूषण रोकने में सहायक।
- **स्वास्थ्य और पोषण:** पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराकर कुपोषण से लड़ने में मदद।
- **सामाजिक-आर्थिक विकास:** रोजगार के अवसर उत्पन्न करता है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाता है।

भविष्य की संभावनाएं

- **बायोटेक्नोलॉजी और आनुवंशिक सुधार:** उच्च उत्पादन एवं रोग-रोधी किस्मों का विकास।
- **स्मार्ट खेती तकनीक:** IoT और सेंसर आधारित प्रणालियाँ।
- **औषधीय अनुप्रयोग:** औद्योगिक स्तर पर बायोएक्टिव यौगिकों का निष्कर्षण।
- **फूड प्रोसेसिंग और मूल्य संवर्धन:** मशरूम आधारित स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद एवं मांस विकल्प (Meat Alternatives) का विकास।
- **जलवायु अनुकूलन:** विविध जलवायु परिस्थितियों में खेती हेतु तकनीकों का विकास।

निष्कर्ष

मशरूम की खेती पर शोध का उद्देश्य केवल खाद्य उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पोषण सुरक्षा, ग्रामीण विकास, रोजगार सृजन, अपशिष्ट प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण जैसे अनेक आयामों से जुड़ा है। यह अनुसंधान सतत कृषि और स्वास्थ्यवर्धक समाज की दिशा में एक ठोस कदम है।

आदिवासी कृषि और स्वदेशी तकनीकी ज्ञान

जयश्री (पीएचडी शोधार्थी) सस्य विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

लक्ष्मन (पीएचडी शोधार्थी) सस्य विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

डॉ. नौशाद खान (प्राध्यापक) सस्य विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

प्रभा सिद्धार्थ (पीएचडी शोधार्थी) पादप रोग विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

परिचय: भारत की जनजातियां, जिन्हें "आदिवासी" कहा जाता है, पारंपरिक समाज का एक अभिन्न हिस्सा हैं और ये सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विशिष्ट हैं। जनगणना 2011 के अनुसार, भारत में 10.43 करोड़ अनुसूचित जनजाति सदस्य हैं, जो कुल जनसंख्या का 8.6% हैं, और इनका अधिकांश निवास ग्रामीण क्षेत्रों में है। भारत में लगभग 550 विभिन्न जनजातियां हैं, जिनका प्रमुख रूप से छत्तीसगढ़, ओडिशा, झारखंड, मध्य प्रदेश, पूर्वोत्तर राज्यों और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में निवास है। आदिवासी समाज अपनी जीवनशैली और खेती की पद्धतियों में स्थानीय ज्ञान और पारंपरिक तकनीकों का प्रयोग करता आया है। इन्हें सामूहिक रूप से **स्वदेशी तकनीकी ज्ञान** कहा जाता है। यह ज्ञान मौखिक परंपराओं के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होता रहा है और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुआ है।

आदिवासी क्षेत्रों में स्वदेशी तकनीकी ज्ञान (ITK): स्वदेशी तकनीकी ज्ञान आदिवासी संस्कृति की गहरी जड़ों में निहित है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलता आया है। आदिवासी कृषि पद्धतियाँ स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल होती हैं और किसानों के लिए सस्ती, पर्यावरणीय रूप से अनुकूल और सामाजिक रूप से स्वीकृत होती हैं। ये पद्धतियाँ कीट नियंत्रण, उर्वरक उपयोग, फसल चक्र और जल प्रबंधन जैसे पहलुओं में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। इन पद्धतियों में प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग किया जाता है, जिससे पर्यावरणीय स्थिरता बढ़ती है। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट के दौर में इन पारंपरिक ज्ञानों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है। **आदिवासी कृषि ज्ञान के उदारण जो उपयुक्त सन्दर्भ में तथ्य परक हैं-**

* आदिवासी किसान **फसल चयन और चक्र** में विशेष तकनीकों का पालन करते हैं। उदाहरण के लिए, वे हल्दी को दालों जैसे अरहर और उड़द के साथ चक्रीय पद्धति से उगाते हैं। यह न केवल मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में मदद करता है, बल्कि फसल विविधता से पोषण भी बढ़ता है। ऊँची भूमि पर वे कुइरी जैसे लघु बाजरे की खेती करते हैं, जो अल्प वर्षा और कठिन परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देता है तथा पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करता है। इसके अलावा, आदिवासी समाज प्राकृतिक संकेतों पर निर्भर रहते हैं, जैसे बारिश का समय या आम की बौर का आना, जिनसे वे आगामी फसल मौसम का अनुमान लगाते हैं। यह उनकी प्रकृति आधारित समझ और मौसम विज्ञान की पारंपरिक जानकारी को दर्शाता है।

* आदिवासी समुदायों की पारंपरिक **कीट नियंत्रण तकनीकें,** जैसे नीम और अदातोड़ा का उपयोग, पर्यावरणीय रूप से अनुकूल और सस्ती होती हैं। ये पद्धतियाँ कीट नियंत्रण, उर्वरक उपयोग, फसल चक्र और जल प्रबंधन में योगदान करती हैं। कास्टर और वैटीक्स (Vitex negundo) जैसे पौधों के अर्क का उपयोग प्राकृतिक कीटनाशक के रूप में फसलों पर किया जाता है, जो रासायनिक कीटनाशकों से अधिक सुरक्षित और पर्यावरण मित्र होते हैं। इन पारंपरिक तकनीकों का सतत उपयोग जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट के दौर में और भी महत्वपूर्ण हो गया है।

* आदिवासी समुदायों में पारंपरिक **मिश्रित खेती** की पद्धति अपनाई जाती है, जिसमें धान, मक्का, दालें और तिलहन जैसी विभिन्न फसलें एक साथ उगाई जाती हैं। इससे भूमि की उर्वरता बनी रहती है और कीटों व रोगों से सुरक्षा मिलती है। यह विविधता किसानों को आर्थिक रूप से भी सशक्त बनाती है, क्योंकि एक फसल में समस्या आने पर दूसरी से आय की संभावना रहती है।

* **बीजों की गुणवत्ता और दीर्घकालिक सुरक्षा** के लिए आदिवासी किसान पारंपरिक तकनीकों का प्रयोग करते हैं। सब्जियों के बीजों को हिंग या नीम के घोल में उपचारित किया जाता है, जिससे पौधे रोग-मुक्त और स्वस्थ रहते हैं। बीजों के संरक्षण के लिए लौकी के सूखे फल, नीम की पत्तियाँ, गन्ने या तिनके के बैग का उपयोग किया जाता है, जिससे लंबे समय तक बीज सुरक्षित रहते हैं। इसके अतिरिक्त, आदिवासी क्षेत्रों में बीज महोत्सवों का आयोजन किया जाता है, जहाँ किसान सामुदायिक रूप से स्वदेशी बीजों का आदान-प्रदान करते हैं। यह परंपरा न केवल जैव विविधता को संरक्षित करती है बल्कि किसानों को आत्मनिर्भर भी बनाती है।

* **मिट्टी की उर्वरता** बनाए रखने के लिए आदिवासी किसान विभिन्न जैविक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। इनमें गोबर खाद, राख, हरी खाद (धनिचा) और सड़ी हुई घास शामिल हैं। इसके अलावा, खेतों में पशुओं को कुछ समय के लिए बांधकर रखा जाता है ताकि उनकी मल-मूत्र मिट्टी में मिलकर पोषक तत्वों की आपूर्ति कर सके। नीम की पत्तियों का उपयोग खाद के रूप में किया जाता है, जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के साथ-साथ कीट नियंत्रण में भी सहायक होती हैं। यह तकनीकें सस्ती, पर्यावरण-अनुकूल और स्थायी मृदा प्रबंधन का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

* आदिवासी समुदाय अपनी **फसलों की सुरक्षा** और भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए पारंपरिक और जैविक तरीकों का पालन करते हैं। वे फसल अवशेषों जैसे राख, भूसी, और सड़ी हुई घास का उपयोग करते हैं, साथ ही जैविक उर्वरकों जैसे गोबर, हरी खाद, और घरेलू अपशिष्टों का इस्तेमाल करते हैं, जो मिट्टी के स्वास्थ्य को सुधारते हैं। नीम के पत्तों को उर्वरक के रूप में प्रयोग किया जाता है, जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के साथ-साथ कीटों से बचाव भी करते हैं। इसके अतिरिक्त, पशुओं को कुछ समय के लिए खेतों में बांधने से मिट्टी में पोषक तत्वों का समावेश होता है, जिससे उसकी गुणवत्ता में सुधार होता है। ये पारंपरिक पद्धतियाँ पर्यावरण के अनुकूल और संसाधनों के उचित प्रबंधन को सुनिश्चित करती हैं।

* निराई के लिए आदिवासी किसान "गाड़ी" जैसे पारंपरिक औजारों का उपयोग करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर हाथ से भी खरपतवार निकालते हैं। हल्दी की खेती में साल की लकड़ी की मल्चिंग की जाती है, जो मिट्टी की नमी बनाए रखती है और **खरपतवार नियंत्रण** में मदद करती है। यह तकनीक मिट्टी कटाव को भी रोकती है और पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती है।

* आदिवासी समुदायों ने **जल प्रबंधन** के पारंपरिक उपायों को अपनाया है, जैसे वर्षा जल संचयन, कुएं, तालाब, और नदियों का संरक्षण। ये उपाय जलवायु परिवर्तन और सूखा जैसी स्थितियों में फसलों के लिए पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में जल स्रोतों को बनाए रखने के लिए कई प्राचीन जल संरचनाएं और तकनीकें आज भी उपयोग में लाई जाती हैं, जो पर्यावरणीय स्थिरता और जल संसाधनों के संरक्षण में सहायक होती हैं।

* आदिवासी लोग सदियों से **प्राकृतिक औषधियों** का उपयोग करते आए हैं। आंवला, हल्दी, नीम, तुलसी, और बहेड़ा जैसे पौधे औषधीय गुणों के लिए प्रसिद्ध हैं, और इनका उपयोग शारीरिक समस्याओं और रोगों के उपचार में किया जाता है। इसके अलावा, आदिवासी समुदाय इन औषधीय पौधों का उपयोग न केवल मानव उपचार के लिए, बल्कि घरेलू उपयोग में भी करते हैं, जिससे उनकी जीवनशैली में प्राकृतिक उपचार की महत्वपूर्ण भूमिका है।

* आदिवासी समुदायों में **मौसम का पूर्वानुमान** करने के लिए प्राकृतिक संकेतों का उपयोग किया जाता है, जैसे आकाश की स्थिति, पक्षियों की गतिविधियाँ, और पेड़ों के फूलने का समय। इन संकेतों के आधार पर आदिवासी किसान फसल लगाने और सुरक्षा उपायों को सही समय पर अपनाते हैं, जिससे कृषि की उत्पादकता बढ़ती है और प्राकृतिक आपदाओं से बचाव में मदद मिलती है। यह पारंपरिक ज्ञान आज भी कृषि के लिए महत्वपूर्ण साबित हो रहा है।

* फसलों को पशुओं से बचाने के लिए गोबर का घोल छिड़का जाता है। बीजों और अनाजों को संरक्षित करने के लिए लौकी के सूखे फल और नीम की पत्तियों का उपयोग किया जाता है, जिससे लंबे समय तक 45-85% तक अनाज सुरक्षित रहता है। फसलोत्तर प्रथाओं में आम और कटहल जैसे फलों को सुखाकर संग्रहित किया जाता है, जिससे उनकी उपलब्धता पूरे साल बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, बीजों का उपयोग प्रोटीन और स्टार्च के स्रोत के रूप में भी किया जाता है। यह प्रथाएँ न केवल खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती हैं बल्कि संसाधनों के अधिकतम उपयोग का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

निष्कर्ष: आदिवासी कृषि पद्धतियाँ और स्वदेशी तकनीकी ज्ञान (ITK) न केवल परंपरा और संस्कृति का प्रतीक हैं, बल्कि आधुनिक समय की चुनौतियों के समाधान का आधार भी प्रस्तुत करते हैं। इन तकनीकों में प्रकृति के साथ सामंजस्य, संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग और जैव विविधता का संरक्षण निहित है। फसल चक्र, मिश्रित खेती, बीज संरक्षण, जैविक उर्वरक, जल प्रबंधन, औषधीय पौधों का प्रयोग और फसलोत्तर प्रथाएँ इस बात का उदाहरण हैं कि आदिवासी समाज ने संसाधनों का संतुलित उपयोग करते हुए टिकाऊ और किफायती कृषि मॉडल विकसित किया। आज जब जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों की कमी और खाद्य सुरक्षा जैसी चुनौतियाँ सामने हैं, तो आदिवासी समुदायों का यह ज्ञान और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। यह पद्धतियाँ किसानों के लिए व्यावहारिक और सस्ती तकनीक उपलब्ध कराती हैं, जबकि शोधकर्ताओं और नीति निर्माताओं के लिए एक सतत कृषि प्रणाली का मार्गदर्शन करती हैं। यदि इन पारंपरिक तकनीकों का दस्तावेजीकरण, वैज्ञानिक परीक्षण और मुख्यधारा कृषि में समावेश किया जाए, तो यह न केवल किसानों की आजीविका सुधार सकता है, बल्कि वैश्विक स्तर पर टिकाऊ कृषि और पर्यावरणीय स्थिरता में भी योगदान दे सकता है।

काशीफल की उन्नत खेती

पंकज कुमार, सूरज पासवान, एम. एल. मीणा
उद्यानिकी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (म.प्र.)

कद्दू या सीताफल या काशीफल (Pumpkin)
वानस्पतिक नाम- Cucurbita moschata
कुल-Cucurbitaceae

कद्दू का मूल जन्म स्थान अमेरिका है। इसकी खेती का ढंग बिल्कुल लौकी के समान है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ लौकी की वर्षा की फसल को छप्परों इत्यादि पर चढ़ा दिया जाता है, कद्दू की बेल भूमि पर ही रेंगने दी जाती है। लौकी और कद्दू में की खेती पास-पास नहीं करनी चाहिये, ऐसा लोगों का विश्वास है। इस बात में केवल इतना ही तथ्य है कि लौकी और कद्दू पर एक ही प्रकार के कीड़े-मकोड़े लगते हैं और एक फसल पर लगा कीड़ा दूसरी फसल को भी हानि पहुंचा सकता है अतः उन दोनों फसलों को अलग-अलग ही उगाना श्रेयस्कर होता है।

उन्नत किस्में

(1) स्थानीय किस्में बड़ा लाल, बड़ा गोल, पीले गूदे वाली, लाल गूदे वाली। (2) उन्नतशील किस्में पूसा विकास, पूसा विश्वास, पूसा रत्नाकर, पूसा अलंकार, सोलन बादामी, सीओ 1, सीओ 2, अर्का सूर्य मुखी।

पूसा अलंकार (F1) Hybrid)- यह भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली विकसित की गई है। यह अधिक उपज देने वाली संकर किस्म है।

अर्का सूर्यमुखी- इसके फल छोटे व गहरे नारंगी रंग के होते हैं, जिन पर भूरे रंग की धारियों होती हैं। गूदा अच्छी सुगन्ध वाला, सख्त चमकीले सुनहरे रंग का होता है। गूदे का रंग सब्जी पकाने के बाद भी ज्यों का त्यों बना रहता है। फलों का वजन 1 से 1.5 किलोग्राम होता है। फल आकार में गोल होते हैं लेकिन दोनों सिरे चपटे होते हैं। इस किस्म पर फल मक्खी का प्रकोप कम होता है। फसल 100 दिन में तैयार हो जाती है। इसकी औसत पैदावार 250-300 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

अर्का चन्दन - इसके फल मध्यम आकार (2.5 से 3.5 किग्रा.) गोल व दोनों सिरों पर कुछ दबे हुये होते हैं। इसका गूदा अच्छी सुगन्ध वाला, सख्त व चमकीला व सुनहरे रंग का हल्का हरा होता है। इसकी औसत उपज 300 से 325 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। फसल 125 दिन में तैयार हो जाती है।

कोयम्बटूर-1- यह पछेती किस्म है जो 175 दिन में तैयार होती है। इसकी बेल बहुत तेजी से बढ़ती है। इसके फल ग्लोब के आकार के, मध्यम बड़े (7-8 किग्रा0) तथा लुभावने होते हैं। इसमें बीज कम संख्या में होते हैं। एक बेल पर 7 से 9 तक फल लगते हैं। इसकी औसत पैदावार 280 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

कोयम्बटर-2- इसकी बेल कोयम्बटर-1 की अपेक्षा कम फैलती है। इसके फल आकार में छोटे मध्यम (2 किग्रा0) तथा नारंगी रंग के गरे वाले होते हैं। इसकी फसल 130-135 दिन में तैयार हो जाती है। औसत उपज 200 से 225 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

भूमिः कद्दू हेतु हल्की दोमट अथवा दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है। भूमि से पानी के निकास का समुचित प्रवन्ध होना चाहिये। भूमि कुछ-कुछ अम्लीय होने पर कद्दू की अच्छी उपज होती है।

भूमि की तैयारीः कद्दू की अच्छी फसल लेने के लिये भूमि की एक बार किसी मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई की जानी चाहिये। इसके बाद 4-5 जुताइयों देशी हल से की जानी चाहिये, प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पटेला घुमाकर मिट्टी को समतल कर देना चाहिये।

खाद और उर्वरकः काशीफल की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये उसे 300-400 कुन्टल गोबर या कम्पोस्ट खाद तथा 40-50 किग्रा. नाइट्रोजन, 40-50 किग्रा. फॉस्फोरस, 25-40 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर देना चाहिये।

(पी.एस. सिरोही और बी. चौधरी भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली के अनुसार संस्तुति)

गोबर की खाद बोने से 1 माह पूर्व खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिला दें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा फॉस्फोरस और पोटाश की पूर्ण मात्रा बुवाई के समय मिट्टी में मिला दें, शेष नाइट्रोजन को बोने के 1-1डु माह बाद टापड्रेसिंग के रूप में जड़ों के पास देना चाहिये।

बीज बोने का समय

(अ) मैदानी क्षेत्रों में

(1)ग्रीष्म काल (जायद) नवम्बर-मार्च। शीघ्र फसल के लिये इसे नवम्बर में आलू की मेड़ो पर भी बो देते हैं। नदियों के कतार पर दिसम्बर में बुवाई करते हैं। इस फसल की पाले से सुरक्षा करते हैं। अन्य स्थानों में जायद की फसल फरवरी-मार्च में बोते हैं।

(2)बरसात की फसल (खरीफ) जून-जुलाई।

(ब) पर्वतीय क्षेत्रों में मार्च-अप्रैल।

बीज की मात्राः कद्दू की जायद फसल के लिये 6-7 किग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर आवश्यक होता है। जुलाई में बोई जाने वाली फसल के लिये 4-5 किग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है।

बीज बोने का ढंगः काशीफल को गड्ढों (थालों) में और नालियों में बोते हैं। काशीफल को 2.5-3 मीटर म 75-100 सेमी0 (पंक्ति × पौधे) की दूरी पर बोते हैं।

ग्रीष्म फसल 2.5.75 मी. या 3×0.6 मीटर

वर्षा फसल 3 × 1.0 मीटर

उपरोक्त दूरी पर घाला बनाकर एक स्थान पर 3-4 बीज 2.5-3 सेंमी. की गहराइ पर बोने चाहिये। बाद में एक स्वस्थ पौधा ही चढ़ने के लिये छोड़ते हैं। नालियों में बोने पर नालियाँ निर्धारित दूरी पर 50 सेंमी. चौड़ी 25-30 सेंमी. गहरी बनाई जाती हैं। जिनमें खाद लगाकर 60 से 75 सेंमी. की दूरी पर बीजों को बो दिया जाता है।

सिंचाईः जायद फसल में प्रति सप्ताह सिंचाई की आवश्यकता होती है। पानी पहले नालियों में दिया जाता है और पौधों की बेल फैल जाने पर बेल फैलने की सारी जगह में पानी फैलाया जाता है। खरीफ की फसल में सिंचाई वर्षा न होने पर आवश्यक होती है। सामान्य होने पर प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। वर्षा का फालतू पानी खेत से बाहर निकालते रहना चाहिये।

निकाई-गुड़ाईः जायद की फसल में 2-3 बार निकाई करने की आवश्यकता होती है। जब तक बेल फैलकर भूमि को भली-भाँति ढंक नहीं लेती, निकाई-गुड़ाई की जाती रहती है। खरीफ ऋतु में बोई जाने वाली फसल में खरपतवार अधिक जोर पकड़ते हैं। अतः उन्हें नियन्त्रण में रखने के लिये 3-4 बार निकाई-गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। कद्दू की लतायें जमीन पर ही फैलायी जाती हैं। अतः फल भूमि पर ही लगते हैं।

उपजः काशीफल की औसत उपज 250-300 कु0 प्रति हैक्टेयर होती है ग्रीष्म कालीन फसल की उपज 400 कु0 तक हो दिये जाते हैं।क्योंकि ग्रीष्म कालीन फल 20-25 किलो तक का हो जाता आलुओं के साथ काशीफल के बीज (नवम्बर) में बो दिये जाते हैं। वर्षा कालीन फसल से कम उपज मिलती है क्योंकि बेल को ऊपर नहीं चढ़ाया जा सकता।

बीज लेनाः कद्दू के बड़े आकार के उत्तम फल छाँट कर बेल पर ही पकने के लिये छोड़ दिये जाते हैं। इन फलों के पूरी तरह पक जाने पर इन्हें तोड़ लिया जाता है और 1-1.5 महीने तक उन्हें हवादार स्थानों में रखा रहने दिया जाता है। तत्पश्चात् कद्दू को चीर कर बीज निकाल कर उन्हें सुखा लिया जाता है और सावधानी से रखा जाता है।

कद्दू के कीट तथा रोग

कद्दू का लाल कीटः यह कीट लाल, चमकदार और लम्बे आकार का होता है। यह फलों में छेद कर देता है। इसके बच्चे फसल को जड़ों में छेद करके खाते हैं। इसकी रोकथाम के लिये सेविन धूल का 10-15 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुरकाव करें। साइपरमेथ्रिन 0.15 प्रतिशत का छिड़काव बहुत ही कारगर सिद्ध हुआ है।

कद्दू की मक्खीः इस कीट की मादा कद्दू के फल के छिलके के अन्दर अण्डे देती है। इससे छोटे-छोटे कीट पैदा होकर अन्दर ही अन्दर फलों को खाते व सड़ा देते हैं। इनकी रोकथाम के लिये सेविन धूल का 0.2% का घोल बनाकर छिड़काव करें।

पाउडरी मिल्ड्यूः इस रोग के कारण पत्तियों की ऊपरी सतह तथा तनों पर सफेद पाउडर जैसा पदार्थ जम जाता है जिसके फलस्वरूप पत्तियां समय से पहले गिर जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिये फसल पर 0.06 प्रतिशत केराथेन (60 ग्राम दवा 100 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें। सूटोक्स 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करने से आशातीत लाभ मिलता हैं।

पेड़ी फसल– एक टिकाऊ कृषि पद्धति

सुरेश हरितवाल (अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन)
कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड वि. वि. झांसी (उ.प्र.)

युवराज कुमावत यंग प्लांट ब्रीडर, मास्टर्स इन जेनेटिक्स ऍंड प्लांट ब्रीडिंग, जोबनेर, जयपुर, (राजस्थान)

रैटून (पेड़ी) फसल क्या है?

रैटून फसल एक प्रकार की खेती है जिसमें पहले से कटी हुई फसल के अवशेषों से दूसरी फसल उगाई जाती है। इसे स्टबल फसल भी कहा जाता है क्योंकि नए पौधे कटी हुई फसल के अवशेषों से उगते हैं। इस विधि का उपयोग गन्ना, अनानास और केले जैसी फसलों में किया जाता है। रैटूनिंग का उपयोग अनिश्चित काल तक नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक चक्र के साथ उपज और गुणवत्ता कम होती जाती है। उदाहरण के लिए, गन्ने में, नई फसल लगाने से पहले दो या तीन रैटूनिंग फसलें उगाई जा सकती हैं।

पेड़ी फसल - उपयुक्त फसलें

गन्ना के अलावा, पेड़ी फसल कई अन्य फसलों में भी एक व्यावसायिक गतिविधि है। कपास, पुदीना, बाजरा, अरहर, रेमी, चावल और ज्वार इसके कुछ उदाहरण हैं। पेड़ी फसल का उपयोग उन पौधों पर व्यापक रूप से किया जाता है जिनका उपयोग आवश्यक तेल, रेशा और दवाइयाँ बनाने में किया जाएगा। पेड़ी फसल के लिए सबसे लोकप्रिय फसलें वे हैं जो आमतौर पर तीन वर्षों तक लगातार उपज देती हैं। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक रबर के विकल्प के रूप में, लकड़ीदार रेगिस्तानी झाड़ी ग्वायुले की पहली कटाई दो साल की उम्र में की जाती है और फिर हर बसंत में पेड़ी फसल की कटाई की जाती है जब तक कि शीर्ष और जड़ों की अंतिम फसल तैयार न हो जाए। चावल एक मोनोकार्पिक वार्षिक पौधे के रूप में उगाया जाता है। इसके विपरीत, यह उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में बारहमासी के रूप में उग सकता है, जहाँ यह पेड़ी फसल पैदा कर सकता है और 30 वर्षों तक चल सकता है।

पेड़ी फसल के लाभ

पेड़ी फसल के लाभों में कम लागत, कम श्रम, शीघ्र फसल परिपक्वता और बेहतर संसाधन दक्षता शामिल हैं, जिससे अधिक लाभप्रदता और स्थायित्व प्राप्त होता है। चुनौतियों में संभावित रूप से कम और असंगत उपज, फसल चक्र के अभाव के कारण कीटों और रोगों के प्रति बढ़ी हुई संवेदनशीलता, कटाई में कठिनाई, समय के साथ मिट्टी का क्षरण, और उपयुक्त किस्मों और विशिष्ट प्रबंधन पद्धतियों की आवश्यकता शामिल है।

खेती की लागत में कमी: इसका मुख्य लाभ उत्पादन लागत में कमी है क्योंकि इसमें दोबारा रोपाई की आवश्यकता नहीं होती, जिससे बीज और शुरुआती रोपण लागत में कमी आती है।

कम श्रम और इनपुट आवश्यकताएँ: नई फसल बोने की तुलना में पेड़ी फसल के लिए कम श्रम की आवश्यकता होती है, जिससे श्रम लागत में उल्लेखनीय बचत होती है। डीजल और बिजली जैसी चीजों की इनपुट लागत भी कम होती है।

संसाधन उपयोग दक्षता में वृद्धि: पेड़ी फसल भूमि और तापीय ऊर्जा उपयोग दक्षता में सुधार करती है, खासकर जहाँ खेती का मौसम सीमित होता है।

तेज परिपक्वता: पेड़ी फसलें मुख्य फसल की तुलना में जल्दी

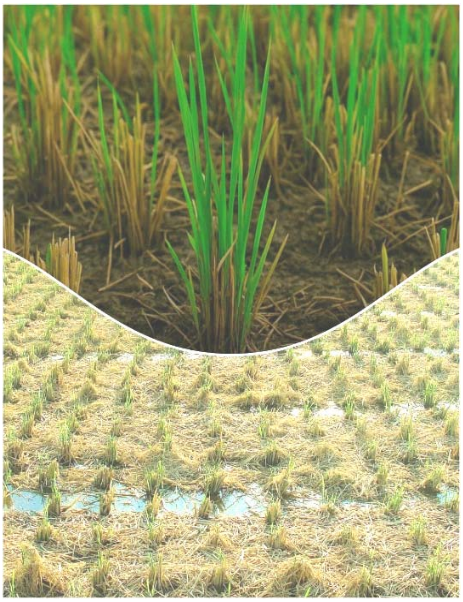

पक जाती हैं, जिससे खेत जल्दी खाली हो जाते हैं।

बेहतर लाभप्रदता: लागत कम करके और भूमि उपयोग बढ़ाकर, पेड़ी फसल किसानों की लाभप्रदता को बढ़ा सकती है।

स्थायित्व और पर्यावरणीय लाभ: यह पद्धति ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम कर सकती है, इनपुट लागत कम कर सकती है और टिकाऊ कृषि में योगदान दे सकती है।

मृदा स्वास्थ्य सुधार: मौजूदा जड़ प्रणाली मृदा संरचना को बनाए रखने में मदद करती है और मृदा अपरदन को कम करती है।

रैटून फसल की चुनौतियाँ

कम रैटून उपज: रैटून फसलों की उपज आमतौर पर मुख्य फसल की तुलना में कम होती है, हालाँकि प्रबंधन पद्धतियाँ इसे बेहतर बनाने में मदद कर सकती हैं।

कीट और रोग भेद्यता: स्थापित जड़ प्रणाली कीटों और रोगों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ा सकती है, खासकर बिना फसल चक्रण के।

विशिष्ट किस्मों की आवश्यकता: सफलता उपयुक्त, उच्च रैटूनिंग क्षमता वाली चावल की किस्मों की उपलब्धता पर निर्भर करती है।

विशिष्ट उपकरण: रैटून फसलों हेतु विशेष यांत्रिक हार्वेस्टरों की कमी व्यापक रूप से अपनाने में एक महत्वपूर्ण बाधा है।

मृदा क्षरण: लंबे समय तक रैटून फसल उगाने से समय के साथ मृदा उर्वरता कम हो सकती है।

ताप और जल प्रबंधन: मुख्य फसल की कटाई के दौरान उच्च तापमान पुनर्जीवित कलियों और टिलर्स को नुकसान पहुँचा सकता है जिससे सावधानीपूर्वक जल प्रबंधन महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रबंधन पद्धतियाँ: उच्च उपज प्राप्त करने के लिए उपयुक्त किस्म के चयन, प्रभावी मृदा और जल प्रबंधन, और संचालन के उचित समय सहित अनुकूलित प्रबंधन पद्धतियों की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

उपोष्णकटिबंधीय भारत में अक्सर कम तापमान के कारण, नवंबर से मध्य जनवरी तक काटी जाने वाली फसलें आमतौर पर अच्छी तरह अंकुरित नहीं होतीं, जिसके परिणामस्वरूप अगले वर्ष प्रतिकूल रैटून फसल होती है। ठूंठ पर कलियाँ सुप्त अवस्था में होती हैं और केवल फरवरी में ही अंकुरित होती हैं जब परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं। इसे कटाई से पहले पौधे की पत्तियों पर वृद्धि नियामक लगाकर या फसल की हाल ही में काटी गई ठूंठ का उपचार करके नियंत्रित किया जा सकता है।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

खोआ और उसके प्रकार : भारतीय व्यंजनों में उपयोगिता और महत्व

इंजी. विशाल कुमार (सहायक प्राध्यापक) डेयरी प्रौद्योगिकी विभाग, कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण महाविद्यालय, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौ. विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

इंजी. अनु कुमारी सहायक प्राध्यापक, डेयरी इंजीनियरिंग विभाग, कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण महाविद्यालय, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

परिचय

खोआ भारतीय मिठाईयों की दुनिया में एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। यह मुख्य रूप से दूध को उबालकर उसमें से पानी सुखाकर बनाया जाता है। खोआ का उपयोग विशेष रूप से भारत में बनी पारंपरिक मिठाइयों जैसे रसगुल्ला, पेड़ा, कलाकंद, बर्फी आदि में किया जाता है। खोआ को 'मावा' भी कहा जाता है और यह भारतीय उपमहाद्वीप में दशकों से मिठाई उद्योग में अपना विशेष स्थान रखता है। स्वादिष्ट मिठाइयों में खोआ की मलाईदार बनावट और मिठास उन्हें और भी लुभावना बनाती है।

खोआ कैसे तैयार होता है

खोआ तैयार करने की प्रक्रिया बहुत ही सरल लेकिन मेहनती होती है। इसमें ताज़ा दूध को खुले बर्तन में धीमी आंच पर लगातार चलाते हुए गरम किया जाता है ताकि उसका पानी वाष्पित होकर खत्म हो जाए और केवल घना दूध अवशिष्ट रहे। यह प्रक्रिया कई घंटे तक चलती है। कभी-कभी खोआ तैयार करने के दौरान उसमें चीनी या अन्य स्वाद भी मिलाए जाते हैं, जिससे उसका स्वाद और भी बढ़ जाता है।

खोआ का गुणवत्ता अच्छी तरह से तैयार किया गया होना चाहिए, ताकि मिठाई की बनावट में सुधार हो और स्वाद भी उत्कृष्ट बना रहे।

खोआ के प्रकार

खोआ की मुख्य रूप से चार प्रमुख श्रेणियाँ होती हैं, जो उसके पानी की मात्रा और बनावट के आधार पर विभाजित की जाती हैं। प्रत्येक प्रकार का उपयोग अलग-अलग मिठाई बनाने में किया जाता है।

1-बुना खोआ

यह खोआ सबसे सघन और सूखा होता है। इसमें दूध को अधिक समय तक पकाया जाता है ताकि उसका सारा पानी निकल जाए। बुना खोआ कठोर होता है और इसे बर्फी, पेड़ा, कलाकंद जैसी मिठाइयों में अधिक इस्तेमाल किया जाता है। इसकी संरचना इतनी सघन होती है कि इसे काटकर उपयोग किया जाता है।

2-पिस्ता खोआ

यह प्रकार विशेष रूप से सुगंधित और स्वादिष्ट बनाया जाता है। इसमें पिस्ता और अन्य मेवे मिलाकर खोआ को तैयार किया जाता है। इसका उपयोग मुख्यतः त्योहारों के समय विशेष मिठाईयों जैसे पिस्ता पेड़ा में किया जाता है।

3-द्रव खोआ

द्रव खोआ थोड़ा नरम और गाढ़ा होता है, जिसमें पानी की मात्रा थोड़ी अधिक होती है। इसका उपयोग रसगुल्ला और कुल्फी जैसे मिठाईयों में किया जाता है। इसकी बनावट इतनी मुलायम होती है कि वह आसानी से छाने या मोल्ड में ढालने के लिए उपयोगी होता है।

4-चिपचिपा खोआ

यह प्रकार भी थोड़ा सूखा होता है लेकिन बनावट में थोडा अधिक टूट-फूट वाला होता है। इसका उपयोग विशेष रूप से बर्फी और हलवा बनाने में किया जाता है। यह खोआ आमतौर पर कच्चे या हल्के पके हुए दूध से तैयार किया जाता है।

खोआ का महत्व और उपयोग

खोआ भारतीय मिठाईयों में एक आवश्यक सामग्री के रूप में उपयोग होता है। इसकी मलाईदार बनावट मिठाईयों को विशेष स्वाद और बनावट प्रदान करती है। पारंपरिक भारतीय त्योहारों जैसे दिवाली, होली, ईद आदि पर खोआ आधारित मिठाईयों की मांग बहुत अधिक रहती है। इसके अलावा, खोआ का उपयोग केवल मिठाईयों में ही नहीं बल्कि कुछ व्यंजनों में भी किया जाता है।

आजकल खोआ का वाणिज्यिक उत्पादन भी बड़े पैमाने पर होने लगा है, जिससे इसकी उपलब्धता हर जगह हो गई है। लेकिन घर पर ताजगी से बना खोआ हमेशा विशेष माना जाता है, क्योंकि उसका स्वाद और गुणवत्ता वाणिज्यिक खोआ से कहीं बेहतर होती है।

निष्कर्ष

खोआ भारतीय मिठाईयों की आत्मा है। इसका स्वाद और बनावट हर मिठाई को खास बनाते हैं। सही प्रकार का खोआ चुनना मिठाई बनाने में सफलता की कुंजी है। चाहे त्योहार हो या कोई पारिवारिक समारोह, खोआ आधारित मिठाइयाँ हमेशा सबके दिल को भाती हैं। खोआ का विविध प्रकार और उसकी उपयोगिता भारतीय भोजन परंपरा की मिठास को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला–ग्वालियर (म.प्र.)
04/2023-24

सोशल मीडिया: रिश्तों की प्रगाढ़ता या एकांत का आरंभ

डॉ. सुमेधा चौधरी, आयुषी मिश्रा मानव विकास और पारिवारिक अध्ययन विभाग सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कानपुर

भूमिका: वर्तमान समय में तकनीक ने मानव जीवन के हर पहलू को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया है। जिस गति से डिजिटल प्रगति ने हमारे दैनिक जीवन में प्रवेश किया है, उसने न केवल हमारी जीवनशैली को बदला है, बल्कि हमारे सोचने, समझने और दूसरों से जुड़ने के तरीकों को भी पूरी तरह से रूपांतरित कर दिया है। खासकर संचार के क्षेत्र में इस बदलाव का असर सबसे अधिक देखने को मिला है। वो समय अब इतिहास बन चुका है जब लोग एक-दूसरे से संपर्क साधने के लिए चिट्ठियाँ लिखा करते थे, या लंबी दूरी की बातचीत के लिए टेलीफोन बूथ का सहारा लेते थे। पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों को निभाने का आधार आमने-सामने का संवाद हुआ करता था, जिसमें भावनाएँ, हावभाव और आत्मीयता स्पष्ट रूप से झलकती थीं। आज यह सब कुछ बहुत हद तक बदल गया है। सोशल मीडिया, जिसने बीते कुछ वर्षों में संचार जगत में क्रांति ला दी है, अब हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सऐप, ट्विटर (अब एक्स), टेलीग्राम और स्नैपचैट जैसे प्लेटफ़ॉर्म ने व्यक्ति को न केवल वैश्विक स्तर पर जोड़ा है, बल्कि एक ऐसी आभासी दुनिया भी तैयार की है जहाँ हर कोई "कनेक्टेड" तो है, पर क्या वास्तव में "जुड़ा" भी है?

प्रश्न यह है कि क्या यह डिजिटल जुड़ाव सच में हमें सामाजिक रूप से और अधिक सशक्त बना रहा है, या फिर यह केवल एक सतही और दिखावटी संबंधों का जाल है, जिसमें हम बिना एहसास के उलझते जा रहे हैं? क्या यह तकनीकी सहूलियतें हमारे बीच की भावनात्मक गहराइयों को खत्म कर रही हैं? आज हम एक ऐसे मोड़ पर खड़े हैं जहाँ सोशल मीडिया का प्रभाव इतना व्यापक हो चुका है कि यह हमारी सोच, भावनाओं और संबंधों की प्रकृति को ही नियंत्रित करने लगा है। ऐसे में यह विश्लेषण करना आवश्यक हो गया है कि यह माध्यम हमारी सामाजिकता को नया आयाम दे रहा है या फिर हमें चुपचाप एक अदृश्य अकेलेपन की ओर ढकेल रहा है।

सोशल मीडिया: संबंधों की नज़दीकी की ओर एक कदम: सोशल मीडिया के प्रभाव को केवल नकारात्मक दृष्टिकोण से देखना उचित नहीं होगा। तकनीक के इस युग में, सोशल मीडिया ने ऐसे अनेक अवसर प्रदान किए हैं जिनके माध्यम से लोग एक-दूसरे के नज़दीक आए हैं। यह प्लेटफॉर्म केवल संचार के साधन नहीं, बल्कि भावनाओं, विचारों और सहयोग के पुल बन गए हैं। इसके कुछ मुख्य सकारात्मक पक्ष निम्नलिखित हैं।

1. **भौगोलिक सीमाओं का अंत : दूरी अब बाधा नहीं रही:** सोशल मीडिया की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसने दूरी की दीवारों को तोड़ दिया है। पहले जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे शहर या देश में चला जाता था, तो परिवार और दोस्तों से संपर्क बनाए रखना कठिन हो जाता था। पत्र या टेलीफोन के माध्यम से संवाद में समय और संसाधनों की सीमाएँ थीं। लेकिन आज, सोशल मीडिया ने यह दूरी लगभग समाप्त कर दी है। चाहे कोई व्यक्ति विदेश में हो या किसी गांव में, एक क्लिक पर हम उसके जीवन की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, उससे बात कर सकते हैं, उसकी तस्वीरें देख सकते हैं, वीडियो कॉल कर सकते हैं। माँ-बाप अपने बाहर पढ़ रहे या काम कर रहे बच्चों से हर दिन जुड़ सकते हैं। रिश्ते अब केवल स्थान पर निर्भर नहीं हैं : वे तकनीक से बंधे हुए हैं।

2. **पुराने रिश्तों को फिर से जोड़ने का माध्यम:** जीवन की आपाधापी में हम कई बार अपने बचपन के, स्कूल के या पुराने मित्रों से संपर्क खो बैठते हैं। लेकिन सोशल मीडिया ने इन संबंधों को फिर से जीवित करने का एक अनमोल अवसर प्रदान किया है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, लिंक्डइन जैसे प्लेटफॉर्म पर जब कोई पुराना परिचित या सहपाठी वर्षों बाद सामने आता है, तो वह केवल एक नाम नहीं होता, बल्कि एक याद, एक जुड़ाव, एक भावनात्मक पुल बनकर लौटता है। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जहाँ लोग सोशल मीडिया के माध्यम से अपने बिछड़े मित्रों, संबंधियों या सहकर्मियों से पुनः मिल पाए हैं, और उन रिश्तों को फिर से जिया है।

3. **सूचना, भावनाएँ और विचार :** तुरंत साझा करने की सुविधाः सोशल मीडिया की तेज़ गति ने संवाद को अत्यंत त्वरित और प्रभावशाली बना दिया है। पहले जहाँ कोई खबर या अनुभव साझा करने में समय लगता था, अब कुछ ही पलों में हम अपनी खुशियाँ, ग़म, अनुभव और विचार दुनिया भर के लोगों तक पहुँचा सकते हैं।

कोई दुखद समाचार हो या जीवन की किसी उपलब्धि की ख़ुशी — सोशल मीडिया पर साझा करने से लोग तुरंत सहानुभूति, शुभकामनाएँ या समर्थन प्रकट करते हैं। यह जुड़ाव न केवल संवाद को गति देता है, बल्कि इंसान को यह एहसास कराता है कि वह अकेला नहीं है, कि उसकी भावनाओं को समझने और साझा करने वाले लोग मौजूद हैं।

4. **रुचियों पर आधारित समुदायों का निर्माण:** सोशल मीडिया का एक और बड़ा सकारात्मक पक्ष यह है कि यह लोगों को केवल व्यक्तिगत संबंधों के स्तर पर नहीं, बल्कि विचारों और रुचियों के आधार पर भी जोड़ता है। कला, संगीत, शिक्षा, किताबें, फिल्में, समाज सेवा, मानसिक स्वास्थ्य, फिटनेस जैसी अनेकों रुचियों और विषयों पर आधारित ऑनलाइन समूह, पेज और फोरम तैयार हुए हैं, जहाँ समान सोच वाले लोग एक-दूसरे से संवाद करते हैं, अनुभव साझा करते हैं और एक-दूसरे का प्रेरणास्त्रोत बनते हैं।

इन समूहों से कई लोगों को भावनात्मक सहारा मिलता है — खासकर उन लोगों को जो अपने आसपास ऐसे लोगों से नहीं घिरे होते जो उनकी सोच को समझ सकें। सोशल मीडिया उनके लिए एक डिजिटल परिवार जैसा बन जाता है।

सोशल मीडिया: अकेलेपन की शुरुआत का कारण?: सोशल मीडिया की चमक-दमक और रंगीन दुनिया के पीछे एक गहरी, सूनापन भरी खामोशी भी मौजूद है, जिसे बहुत कम लोग महसूस कर पाते हैं। जब हम दिनभर अपने मोबाइल या कंप्यूटर पर जुड़े रहते हैं, तो लगता है जैसे हम हर वक्त ÷कनेक्टेड÷ हैं, लेकिन वास्तव में यह जुड़ाव अक्सर बेहद सतही होता है। यह सतहीपन धीरे-धीरे हमारे अंदर अकेलेपन की भावना को बढ़ावा देता है। आइए इसके मुख्य कारणों पर विस्तार से नजर डालते हैं।

1. **ऑनलाइन जुड़े रहना लेकिन भावनात्मक रूप से अकेले होना:** सोशल मीडिया ने हमें ऐसा महसूस कराया है कि हम हमेशा अपने दोस्तों, परिवार और जान-पहचान के लोगों के संपर्क में हैं। लेकिन यह संपर्क अक्सर केवल "लाइक," "कमेंट" या "शेयर" तक सीमित रहता है। इन डिजिटल इशारों के पीछे की असली भावनाएँ, समझदारी और गहरा संवाद कहीं खो जाता है। अक्सर बातचीत त्वरित और औपचारिक हो जाती है, जिसमें समय और संवेदनशीलता की कमी रहती है। यही कारण है कि भले ही हम ऑनलाइन जुड़े हों, हम अपने आप को भावनात्मक रूप से कहीं दूर और अकेला महसूस करते हैं।

2. **प्रदर्शन की होड़ और वास्तविकता से दूरी:** सोशल मीडिया पर लोग अपने जीवन का वह पक्ष दिखाते हैं जो आकर्षक और मनोहर होता है। महंगे कपड़े, खूबसूरत ट्रैवल डेस्टिनेशन, ग्लैमरस पार्टीज़, और खुशहाल रिश्ते–इन सबका प्रदर्शन एक "परफेक्ट लाइफ" की छवि बनाता है। यह दिखावा अनजाने में एक भ्रम पैदा करता है, जिससे दूसरों में तुलना की भावना और हीनता जन्म लेती है। जबकि असलियत यह है कि बहुत से लोग अपनी निजी ज़िंदगी में मानसिक और भावनात्मक संघर्षों से जूझ रहे होते हैं, लेकिन वे अपनी पीड़ा को छिपाते हुए केवल मुस्कुराते हुए फोटो ही साझा करते हैं। इस तरह का लगातार प्रदर्शन हमें वास्तविकता से दूर कर देता है और हमारे अकेलेपन को गहरा करता है।

3. **व्यक्तिगत संवाद की कमी और गहरी बातचीत का अभाव:** पहले के ज़माने में लोग अपने मित्रों और परिवार के साथ घंटों बैठकर खुलकर बातें करते थे, अपनी भावनाओं और विचारों को साझा करते थे। परंतु आज के डिजिटल युग में संवाद अक्सर छोटे-छोटे मैसेज, इमोजी या "हाउ आर यू?" जैसे सवालों तक सीमित रह गया है, जो कई बार "Seen" होकर अनदेखा भी हो जाता है। इससे रिश्तों में वह भावनात्मक गहराई नहीं रह जाती जो उन्हें मजबूत बनाती है। यह सतही संवाद हमारे अंदर दूरी और अकेलेपन की भावना को जन्म देता है।

4. **डिजिटल डिटॉक्स की जरूरत:** सोशल मीडिया की लत आज एक वास्तविक समस्या बन चुकी है। लगातार नोटिफिकेशन, अपडेट्स और नई-नई पोस्ट्स के बीच व्यक्ति मानसिक रूप से थक जाता है। बहुत से लोग इस मानसिक थकान और तनाव के कारण सोशल मीडिया से दूर रहने या इसके उपयोग को सीमित करने की बात कर रहे हैं। वे महसूस करते हैं कि यह डिजिटल जुड़ाव उन्हें भावनात्मक संतुष्टि नहीं दे पा रहा है, बल्कि उनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। इस स्थिति को सुधारने के लिए डिजिटल डिटॉक्स की जरूरत समझी जा रही है, जिसमें कुछ समय के लिए पूरी तरह से सोशल मीडिया से दूरी बनाई जाती है।

5. **मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव और पहचान का संकट:** सोशल मीडिया ने जहां हमें कई फायदे दिए हैं, वहीं इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी सामने आए हैं। FOMO यानी "Fear of Missing Out" का मानसिक दबाव कई लोगों को बेचैनी और तनाव में डाल देता है, क्योंकि वे यह सोचते रहते हैं कि कहीं वे कुछ महत्वपूर्ण से वंचित तो नहीं रह गए। इसके अलावा सोशल एंजाइटी और डिप्रेशन जैसी मानसिक बीमारियों में भी सोशल मीडिया का योगदान माना जा रहा है। लोगों के बीच एक ऐसा प्रतिस्पर्धात्मक माहौल बन गया है जहाँ वे अपनी असली पहचान खो देते हैं और केवल दूसरों की छवि के अनुसार खुद को साबित करने की कोशिश करते हैं। इस प्रक्रिया में व्यक्ति का आत्मविश्वास गिरता है और अकेलापन गहरा होता है।

निष्कर्ष: सोशल मीडिया ने निश्चित रूप से लोगों को पहले से कहीं अधिक जुड़ने का अवसर दिया है और हमारे संवाद के तरीके को पूरी तरह से बदल दिया है। परंतु यह जुड़ाव जितना दिखता है, क्या वह उतना ही गहरा और वास्तविक भी है, यह सवाल हमें सोचने पर मजबूर करता है। असली रिश्तों में केवल सतही संपर्क या ऑनलाइन प्रतिक्रियाएँ ही काफी नहीं होतीं। रिश्ते तब मजबूत होते हैं जब उनमें सच्चाई, भावनात्मक निकटता और साथ बिताए गए समय की मौजूदगी हो। ये वे तत्व हैं जो केवल 'लाइक', 'कमेंट' या 'शेयर' की दुनिया में पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाते। आज की इस डिजिटल युग में हमें यह समझना होगा कि सोशल मीडिया एक उपकरण है, एक माध्यम है, जो हमें आपस में जोड़ने में मदद करता है, लेकिन इसे जीवन का केंद्र और मूल्य बनाना सही नहीं होगा। अगर हम अपनी भावनात्मक जरूरतों और सामाजिक रिश्तों को केवल इस आभासी दुनिया तक सीमित कर देंगे, तो धीरे-धीरे हम अपने आप को अकेलापन और दूरी के जाल में फंसाते चले जाएंगे। इसलिए आवश्यक है कि हम सोशल मीडिया को संतुलित और विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग करें। हमें अपने वास्तविक जीवन के रिश्तों को भी उतनी ही प्राथमिकता देनी होगी जितनी हम ऑनलाइन रिश्तों को देते हैं। परिवार, दोस्त और करीब के लोग, जिनके साथ हम व्यक्तिगत रूप से समय बिताते हैं, वही हमारे सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य की असली ज़रूरतें पूरी करते हैं। अंततः, सोशल मीडिया को हमें एक साधन के रूप में देखना चाहिए–सहायक, लेकिन सीमित। यह हमारी पूरी सामाजिक पहचान या जीवन का केंद्र नहीं बनना चाहिए। जब हम इसे संतुलित रूप से अपनाते हैं, तभी हम अपने जीवन में वास्तविक आनंद, गहरे मानवीय संबंध और मानसिक स्थिरता प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि हम अपने रिश्तों को केवल डिजिटल मंचों तक सीमित न रखें, बल्कि उन्हें वास्तविक जीवन में भी समय, संवेदना और महत्व दें। तभी ये संबंध सशक्त, प्रामाणिक और हमारे जीवन को ऊर्जा देने वाले बन पाएंगे।

✍ **निधि तिवारी** सहकारिता विकास अधिकारी ,
सहकारी संस्थाओं में व्यावसायिक उत्कृष्टता केंद्र (C-PEC), ग्रामीण विकास के लिए बैंकर्स संस्थान (BIRD), लखनऊ (उ.प्र.)

डिजिटल धर्म: भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता कैसे सहकारी संस्थाओं को नया रूप दे रही है-मध्यप्रदेश से अंतर्दृष्टियां

सारांश: भारत का सहकारी क्षेत्र, जो लोकतांत्रिक मूल्यों और सामूहिक स्वामित्व में निहित है, एक डिजिटल परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एक रणनीतिक सक्षमकर्ता के रूप में उभर रही है, जो संचालन को आधुनिक बना रही है, पारदर्शिता को बढ़ा रही है, और सदस्य सहभागिता को गहरा कर रही है। यह शोधपत्र सहकारी संस्थाओं में AI की बहुआयामी भूमिका की पड़ताल करता है, इसके कृषि, डेयरी, वित्त और शासन जैसे क्षेत्रों में अनुप्रयोगों को दर्शाता है, और मध्य प्रदेश में की गई अग्रणी पहलों को उजागर करता है। डिजिटल साक्षरता और बुनियादी ढांचे की चुनौतियों के बावजूद, नीतिगत प्रगति और साझा सेवा मॉडल्‌ढ्‌ के व्यापक एकीकरण के लिए एक आशाजनक मार्ग प्रदान करते हैं।

मुख्य शब्द: कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सहकारी संस्थाएँ, कृषि,प्राथमिक कृषि ऋण समितियां, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, डिजिटल शासन, AI को अपनाना / AI अंगीकरण

I. प्रस्तावना : भारत का सहकारी क्षेत्र लंबे समय से ग्रामीण विकास और समावेशी आर्थिक वृद्धि का एक आधार स्तंभ रहा है। लोकतांत्रिक मूल्यों और सामूहिक स्वामित्व में निहित यह क्षेत्र कृषि, डेयरी, ऋण, आवास और विपणन जैसे क्षेत्रों में ग्रामीण विकास का केंद्र रहा है। जैसे-जैसे देश डिजिटल परिवर्तन की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) सहकारी संस्थाओं को आधुनिक बनाने, संचालन की दक्षता बढ़ाने और सदस्य सहभागिता को गहरा करने हेतु एक शक्तिशाली साधन के रूप में उभर रही है। डेटा विश्लेषण, स्वचालन और पूर्वानुमान मॉडलिंग में AI की क्षमताएं उन पुरानी चुनौतियों को हल कर सकती हैं जिनसे सहकारी संस्थाएं जूझ रही हैं, विशेष रूप से वे जो सीमित बुनियादी ढांचे और डिजिटल क्षमता के साथ काम करती हैं। स्मार्ट निर्णय-निर्धारण और सुव्यवस्थित सेवाओं को सक्षम बनाकर, AI सहकारी संस्थाओं को अधिक लचीला और भविष्य हेतु तैयार बना सकता है। डिजिटल धर्मः भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता कैसे सहकारी संस्थाओं को नया रूप दे रही है

II.कत्रिम बुद्धिमत्ता की समझ : कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) का तात्पर्य मशीनों में मानव बुद्धि की अनुकरणीय क्षमता से है, जिन्हें सोचने, सीखने और निर्णय लेने के लिए प्रोग्राम किया जाता है। **यह कई उपक्षेत्रों को शामिल करता है, जैसे:**

* **मशीन लर्निंग (ML):** ऐसे एल्गोरिदम जो अनुभव के साथ बेहतर होते जाते हैं।
* **नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग (NLP):** मानव भाषा को समझना और उत्पन्न करना।
* **कंप्यूटर विज़न:** दृश्य डेटा की व्याख्या करना।
* **रोबोटिक्स:** शारीरिक कार्यों का स्वचालन।
* **एक्सपर्ट सिस्टम्स:** नियम-आधारित तर्क के आधार पर निर्णय लेना।

सहकारी क्षेत्र में, AI का उपयोग संचालन को अनुकूलित करने, सेवाओं को व्यक्तिगत बनाने और सूचना तक पहुंच को लोकतांत्रिक बनाने के लिए किया जा सकता है।

III.भारत में सहकारी क्षेत्र: एक झलक

भारत में 8.5 लाख से अधिक पंजीकृत सहकारी संस्थाएं हैं, जिनमें 30 करोड़ से अधिक सदस्य हैं। **ये संस्थाएं विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं:**

कृषि सहकारी संस्थाएं: किसानों को इनपुट, ऋण और विपणन सहायता प्रदान करती हैं।

डेयरी सहकारी संस्थाएं: दूध और डेयरी उत्पादों का संग्रह, प्रसंस्करण और वितरण करती हैं।

क्रेडिट सोसायटीज़: वंचित समुदायों को वित्तीय सेवाएं प्रदान करती हैं।

हाउसिंग सहकारी संस्थाएं: सस्ती आवास सुविधाएं उपलब्ध कराती हैं।

उपभोक्ता सहकारी संस्थाएं: उचित मूल्य और गुणवत्ता वाले उत्पाद सुनिश्चित करती हैं

IV.AI की भूमिका

कृषि: फसल पूर्वानुमान, स्मार्ट सिंचाई, कीट पहचान
डेयरी: पशु स्वास्थ्य निगरानी, दूध गुणवत्ता विश्लेषण
वित्त: क्रेडिट स्कोरिंग, धोखाधड़ी पहचान, चैटबॉट्स
शासन: रीयल-टाइम डैशबोर्ड, पूर्वानुमान लेखा परीक्षा
विपणन: ग्राहक विभाजन, अनुशंसा इंजन

V.सरकारी पहलें

* सहकारिता मंत्रालय की "सहकार से समृद्धि" योजना
* NABARD का PACS डिजिटलीकरण अभियान
* राष्ट्रीय सहकारी नीति 2025-2045
* डिजिटल इंडिया और AI मिशन
* त्रिभुवन सहकारी विश्वविद्यालय (TSU)
* व्यापार सुधार कार्य योजना 2026
* सहकारी बैंकों और समितियों के लिए RBI की भूमिका

VI.भारत में विकसित कुछ ठोस AI समाधान

1.e-KCC + PTPFC: AI-सक्षम त्वरित कृषि ऋण प्रक्रिया

2.NPCI द्वारा सहकारी बैंकों में फेडरेटेड AI धोखाधड़ी पहचान प्रणाली

3.AI-संचालित कृषि परामर्श सेवा

4.AgriHub – PACS/FPO सहयोग के साथ AI विश्लेषण केंद्र

5."सतनवारी "स्मार्ट-इंटेलिजेंट विलेज" मॉडल – सहकारी एकीकरण की दिशा में एक क्रांतिकारी पहल

6. NABARD समर्थित ChatGPT

VII.मध्य प्रदेश की पहलें

* PACS में GeoAgro-iKrishi सटीक परामर्श पायलट (सीहोर और खरगोन)
* ड्रोन-सक्षम AI छिड़काव और निगरानी – सहकारी महिला समूहों (SHGs) के माध्यम से (विदिशा और सागर)
* सहकारी संस्थाओं के लिए UPL-Microsoft API आधारित कीट जोखिम वॉयस अलर्ट प्रणाली
* सहकारी FPOs में ITC की Krishi Mitra द्वारा AI-संचालित फसल परामर्श सेवा
* IIT इंदौर का AgriAnalytics हब + सहकारी डैशबोर्ड
* जिला-स्तरीय सहकारी संस्थाओं के लिए IBM Watson की मिट्टी

आंध्र प्रदेश की APAIMS प्रणाली की तरह, मध्य प्रदेश में भी AI-सक्षम कीट और रोग चेतावनी प्रणाली को अपनाया जा सकता है, जो किसानों को रीयल-टाइम और प्लॉट-स्तरीय सलाह प्रदान करेगी।

1.व्यक्तिगत किसान सहायता प्रणाली

DeHaat जैसी सेवाएं पहले से ही मध्य प्रदेश में मोबाइल ऐप और कॉल सेंटर के माध्यम से AI-आधारित फसल सलाह प्रदान कर रही हैं। यदि इसी तरह की स्वचालित प्रतिक्रियाएं या चैटबॉट्स को PACS में लागू किया जाए, तो यह पहुँच और निर्णय समर्थन को काफी बेहतर बना सकता है।

2.किसान प्रश्नों के लिए डीप लर्निंग

KisanQRS जैसे सिस्टम डीप लर्निंग का उपयोग करके किसान प्रश्नों का उच्च सटीकता के साथ उत्तर देते हैं – जैसे कि 96.6% टॉप F1-स्कोर और 96.2% NDCG। ऐसे AI मॉड्यूल को PACS में एकीकृत करने से हेल्पलाइन और डेटाविस्तार सेवाएं स्वचालित की जा सकती हैं।

3.डेटा आधारित कृषि पद्धतियाँ

सहकारी स्मार्ट फार्मिंग मॉडल, जो IoT और मशीन लर्निंग का उपयोग करके खेतों के बीच डेटा साझा करते हैं – जैसे कि उपज अनुकूलन, सिंचाई शेड्यूल और इनपुट प्रबंधन – को PACS क्षेत्रों में पायलट परियोजनाओं के रूप में लागू किया जा सकता है।

VIII. AI अपनाने की चुनौतियाँ

* डिजिटल साक्षरता की कमी
* अवसंरचना बाधाएँ
* डेटा गुणवत्ता और लागत
* गोपनीयता और नैतिकता के मुद्दे

IX.आगे की रणनीति

* क्षमता निर्माण: प्रशिक्षण और जागरूकता
* PPP मॉडल: तकनीकी सहयोग
* नीति समर्थन: स्पष्ट दिशा-निर्देश
* स्थानीय नवाचार: क्षेत्रीय भाषाओं में समाधान
* सामुदायिक सहभागिता: पारदर्शिता और विश्वास

X.निष्कर्ष: AI सहकारी संस्थाओं के लिए एक रणनीतिक सक्षमकर्ता है। यदि सही समर्थन मिले, तो भारत का सहकारी मॉडल वैश्विक स्तर पर एक प्रेरणास्रोत बन सकता है।

XI.आभार प्रदर्शन: लेखक इस शोध के दौरान जिन स्रोतों ने अंतर्दृष्टि, आंकड़े और रचनात्मक सुझाव प्रदान किए, उनके बहुमूल्य योगदान के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। उनके सहयोग और सहभागिता ने विश्लेषणात्मक ढांचे को आकार देने और अध्ययन की तथ्यात्मक गहराई को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेखक उन सभी बौद्धिक मार्गदर्शनों को भी मान्यता देते हैं, जो लेखन और संशोधन के विभिन्न चरणों में प्राप्त हुए–जिनसे अंतिम पांडुलिपि की स्पष्टता और गंभीरता में उल्लेखनीय सुधार हुआ।

गेहूँ उत्पादन में खरपतवारनाशियों की भूमिका: फायदे और नुकसान

(A Scientific and Practical Analysis of Herbicide Use in Wheat Cultivation)

डॉ. श्रीश कुमार सिंह (प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष) सस्य विज्ञान विभाग
दीपचंद निषाद (शोध छात्र) सस्य विज्ञान विभाग
संदीप कुमार (शोध छात्र) सस्य विज्ञान विभाग
कार्तिकेय श्रीवास्तव (शोध छात्र) जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग विभाग
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्व विद्यालय जौनपुर (उ. प्र.)
आदित्य भूषण श्रीवास्तव कृषि अर्थशास्त्र विभाग
शिवम् श्रीवास्तव आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या(उ. प्र.)

भूमिका (Introduction)

परिचय: गेहूं (Wheat) विश्व की प्रमुख खाद्यान्न फसलों में से एक है, जिसे Triticum aestivum के नाम से जाना जाता है। यह भारत की दूसरी सबसे अधिक बोई जाने वाली फसल है और मुख्य रूप से रबी मौसम में उगाई जाती है। गेहूं की खेती देश के उत्तरी, उत्तर-पश्चिमी एवं मध्य भागों में विशेष रूप से की जाती है, जहाँ ठंडा मौसम और उपयुक्त मिट्टी इसके लिए अनुकूल होती है।यह फसल कार्बोहाइड्रेट का प्रमुख स्रोत होने के साथ-साथ प्रोटीन और रेशा भी प्रदान करती है, जिससे यह भारत सहित दुनिया भर के लोगों के लिए एक मुख्य खाद्य पदार्थ बन गई है। गेहूं से आटा, सूजी, मैदा, दलिया आदि विभिन्न खाद्य उत्पाद तैयार किए जाते हैं, जिनका उपयोग रोटी, ब्रेड, बिस्किट, नूडल्स आदि बनाने में होता है। भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा गेहूं उत्पादक देश है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और उत्तराखंड जैसे राज्य प्रमुख उत्पादक हैं। भारत में कुल खाद्यान्न उत्पादन में गेहूं का योगदान लगभग 35% है। यह फसल सर्दियों में बोई जाती है (अक्टूबर-दिसंबर) और गर्मी में काटी जाती है (मार्च-अप्रैल)। गेहूं न केवल भारत की आर्थिक रीढ़ है, बल्कि यह करोड़ों लोगों की खाद्य सुरक्षा का आधार भी है। बढ़ती जनसंख्या और पोषण की आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से गेहूं की उत्पादकता को बढ़ाना और उसकी रक्षा करना आवश्यक है। इसके लिए वैज्ञानिक खेती, रोग और खरपतवार प्रबंधन, और टिकाऊ कृषि तकनीकों का उपयोग आवश्यक हो गया है। इसके उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक है- खरपतवार (Weeds)। खरपतवार खेत में उगने वाले ऐसे अवांछित पौधे हैं, जो मुख्य फसल के साथ पोषक तत्व, जल, प्रकाश एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। यदि इन्हें समय पर नियंत्रित न किया जाए, तो यह उपज में 20% से 40% तक की कमी कर सकते हैं। खरपतवार नियंत्रण के अनेक उपायों में से एक प्रभावी उपाय है- खरपतवार नाशियों (Herbicides) का प्रयोग। लेकिन इसका उपयोग लाभदायक होने के साथ-साथ हानिकारक भी हो सकता है यदि अनुचित ढंग से किया जाए।

गेहूं में प्रमुख खरपतवार **(Major Weeds in Wheat Fields)**

प्रकार	हिन्दी नाम	वैज्ञानिक नाम
चौड़ी पत्ती	बथुआ	Chenopodium album
	कनकुआ	Fumaria parviflora
	मकोय	Solanum nigrum
संकरी पत्ती	जंगली जई	Avena fatua
	मुंजी (गेहू का मामा)	Phalaris minor
	दूब घास	Cynodon dactylon
कंदीय	सिरन	Cyperus rotundus

?खरपतवार नाशियों से होने वाले लाभ (Benefits of Herbicides in Wheat Cultivation)

1. **उपज में वृद्धि (Increase in Yield)**

* खरपतवार नाशियों से समय पर नियंत्रण होने से गेहूं की फसल को पूरा पोषण, प्रकाश और नमी मिलती है।
* शोधों के अनुसार, नियंत्रित फसल में उपज 25-30त्र तक अधिक देखी गई है।
* विशेषकर Phalaris minor और Avena fatua जैसे हानिकारक खरपतवारों को नियंत्रित करना आसान होता है।

2. **श्रम लागत में कमी**

* पारंपरिक निराई-गुड़ाई पर Rs. 3000–Rs.4000/हेक्टेयर तक खर्च होता है।
* खरपतवार नाशी मात्र Rs.600–Rs.1200/हेक्टेयर में छिड़का जा सकता है।
* मजदूरों की कमी वाले क्षेत्रों में यह एकमात्र विकल्प है।

3. **समय की बचत** * केवल एक या दो छिड़काव से ही पूरे खेत का नियंत्रण हो जाता है।

* खेती की अन्य गतिविधियों को समय पर किया जा सकता है।

4. **प्रभावी नियंत्रण (Effective Control)** * कुछ खरपतवार जैसे Phalaris minor व Avena fatua जिनका हाथ से नियंत्रण कठिन है, उन पर विशेष प्रभावी रसायन उपलब्ध हैं जैसे – Clodinafop, Sulfosulfuron।

5. **फसल की गुणवत्ता में सुधार** (Improved Crop Quality)

* खरपतवारों के कारण फसल में नमी व बीमारियों का खतरा बढ़ता है। * नियंत्रण से दानों का आकार और चमक बेहतर होती है।

खरपतवार नाशियों से संभावित हानियाँ (Disadvantages/Risks of Herbicide Use)

1. **फसल पर विषैली प्रतिक्रिया (Phytotoxicity)** * अनुचित मात्रा या गलत समय पर छिड़काव करने से फसल की पत्तियाँ जल सकती हैं, विकास रुक सकता है या फसल मुरझा सकती है।

2. **खरपतवारों में प्रतिरोध (Resistance Development)**

* एक ही रसायन के लगातार प्रयोग से खरपतवारों में प्रतिरोध क्षमता विकसित हो जाती है।
* उदाहरण: Phalaris minor में Isoproturon प्रतिरोध विकसित हुआ है।

3. **मिट्टी और पर्यावरण पर दुष्प्रभाव** (Soil and Environmental Impact)

* लगातार रसायन उपयोग से मिट्टी की जैविक गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है।
* मित्र कीटों, परागणकर्ताओं और आसपास के जल स्रोतों पर भी हानिकारक असर हो सकता है।

4. **छिड़काव से खतरा** * छिड़काव करते समय सुरक्षा न रखने पर मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है: त्वचा जलन, आँखों में जलन, साँस की तकलीफ आदि।

5. **गलत पहचान और चयन से हानि** * कई किसान खरपतवार की पहचान नहीं कर पाते और गलत रसायन का प्रयोग करते हैं, जिससे खरपतवार भी नहीं मरते और फसल को भी नुकसान होता है।

* **खरपतवार नाशी का सही उपयोग: सुझाव और सावधानियाँ**

बिंदु	**सुझाव**
रसायन का चुनाव	फसल और खरपतवार की पहचान के अनुसार चयन करें।
छिड़काव का समय	Pre-emergence – बुवाई के 0-3 दिन के अंदर Post-emergence – 25-35 दिनों के भीतर
छिड़काव की विधि	फ्लैट फैन नोजल का उपयोग करें, हवा कम हो, छिड़काव की ऊँचाई सही रखें।
सुरक्षात्मक उपाय	मास्क, दस्ताने, चश्मा, लंबी आस्तीन के कपड़े पहनें।
विविधता अपनाएं	हर वर्ष अलग वर्ग के रसायनों का उपयोग करें (Herbicide rotation)।

प्रमुख अनुशंसित खरपतवार नाशी रसायन (**Recommended Herbicides for Wheat**)

रसायन का नाम	वर्ग	मात्रा/हेक्टेयर	उपयोग समय	लक्ष्य खरपतवार
Pendimethalin 30% EC	Pre-emergence	2.5–3.5 लीटर	बुवाई के बाद	सभी प्रकार
Sulfosulfuron 75% WG	Post-emergence	25 ग्राम	25 DAS	चौड़ी व संकरी दोनों
Metsulfuron methyl 20% WP	Post-emergence	4 ग्राम	25 क्ष्ै	चौड़ी पत्ती
Clodinafop-propargyl 15% WP	Post-emergence	400 ग्राम	25–30 DAS	संकरी पत्ती
Isoproturon 75% WP	Post-emergence	1.0–1.2 किग्रा	30 DAS	संकरी पत्ती

निष्कर्ष (Conclusion): खरपतवार नियंत्रण गेहूं उत्पादन में सफलता का एक महत्वपूर्ण कारक है। खरपतवार नाशी रसायनों का वैज्ञानिक और विवेकपूर्ण प्रयोग उपज बढ़ाने में सहायक हो सकता है। लेकिन यदि इसका गलत ढंग से उपयोग किया जाए, तो इससे फसल, मिट्टी, पर्यावरण और स्वयं किसान को नुकसान पहुँच सकता है। इसलिए सही रसायन का चयन, सही समय पर छिड़काव, और सुरक्षा उपायों का पालन करना आवश्यक है। सही समय पर उचित खरपतवार नाशियों के प्रयोग से न केवल फसल की वृद्धि सुचारु होती है, बल्कि उत्पादन लागत में कमी और उपज में वृद्धि भी संभव होती है। "खरपतवार नियंत्रण, विशेषकर संतुलित और विवेकपूर्ण ढंग से किया गया रासायनिक नियंत्रण, गेहूं की उपज को बढ़ाने का एक प्रभावी साधन है, बशर्ते उसे तकनीकी सावधानियों के साथ अपनाया जाए।"

तरूण कुमार महेश्वरी हेड, एग्रीकल्चरल इंजीनियरिंग, डॉ. बी. आर. ए. कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, इटावा (उ.प्र.)

दीपाली मुदगल सहायक प्रोफेसर, खाद्य प्रक्रिया प्रौद्योगिकी, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

विवेकानन्द सिंह रिसर्च एसोसिएट, जलवायु अनुकूल कृषि कार्यक्रम, डॉ राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, समस्तीपुर

मृदा सूचना प्रणाली

मृदा सूचना प्रणाली एक मृदा मानचित्रण तकनीक है, जो ज्यादातर प्रकृति में आयामी है जो मिट्टी और स्थलाकृति के आधार पर उच्च रिज़ॉल्यूशन सटीक जानकारी का उत्पादन करने के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस लक्ष्यीकरण और भू-प्रसंस्करण एल्गोरिदम के साथ निगम में उन्नत आईओटी सेंसर का उपयोग करती है। उन्नत सेंसर और भू-प्रसंस्करण एल्गोरिदम का उपयोग करके, एसआईएस उच्च रिज़ॉल्यूशन, सटीक मिट्टी और स्थलाकृतिक जानकारी का उत्पादन करता है। मिट्टी के भौतिक और रासायनिक लक्षण वर्णन की अधिक समझ प्रदान करके, जिसमें मिट्टी के माध्यम से इनपुट कैसे चलते हैं, एसआईएस किसानों के विश्वसनीय सलाहकारों को उनके खेतों के प्रत्येक क्षेत्र की अनूठी चुनौतियों को हल करने के लिए अधिक प्रभावी समाधान लागू करने में सक्षम बनाता है। इस मिट्टी के नक्शे का उपयोग सिंचाई, जल निकासी, उर्वरता आदि के साथ महत्वपूर्ण कृषि प्रबंधन निर्णय लेने के लिए किया जा सकता है।

मृदा सूचना प्रणाली का उपयोग

* सिंचाई, जल निकासी, उर्वरता और संशोधन अनुप्रयोगों के साथ महत्वपूर्ण मिट्टी और कृषि प्रबंधन निर्णय लेना
* सटीक नमूना स्थानों को लक्षित करने के लिए मिट्टी परिवर्तनशीलता का उपयोग करके समय और परिचालन लागत की बचत, कभी-कभी पारंपरिक नमूना विधियों द्वारा लिए गए नमूनों की संख्या को कम करना
* यह दिखाकर इनपुट एप्लिकेशन में सुधार करना कि पौधे की वृद्धि को अधिकतम करने के लिए उन्हें कहां लागू करने की आवश्यकता है
* सिंचाई, जल निकासी और उर्वरता डेटा के साथ बेहतर मृदा प्रबंधन निर्णय लेना
* चर दर अनुप्रयोग मानचित्रों से मिट्टी की जानकारी का उपयोग करके पौधे की वृद्धि को अधिकतम करना

मृदा सूचना प्रणाली के लाभ

* सिंचाई, जल निकासी, उर्वरता और संशोधन अनुप्रयोगों के साथ बेहतर कृषि प्रबंधन निर्णय लें

* सटीक नमूना स्थानों को लक्षित करने के लिए मिट्टी की परिवर्तनशीलता को समझें, कभी कभी आवश्यक नमूनों की संख्या को कम करें, इस प्रकार समय और धन की बचत होती है

* पोषक तत्वों के अपवाह को यह समझकर कम करें कि वे मिट्टी के माध्यम से कैसे चलते हैं

* विशेष क्षेत्र का मानचित्रण करता है और मिट्टी की बनावट, मिट्टी की संरचना, जल निकासी प्रकार, उर्वरता आदि के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

* बेहतर कृषि प्रबंधन निर्णय लेने में मदद करता है।

* समय और पैसा बचाता है।

वैश्विक स्तर पर मृदा सूचना प्रणाली

SOTER -SOTER (मृदा और इलाके डिजिटल डेटाबेस) एक 3आयामी मानचित्रण तकनीक है। विभिन्न देशों ने अपना एसआईएस विकसित किया है। सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली प्रणाली SOTER 1: 1m मृदा और इलाके डिजिटल डेटाबेस है। एसओटीईआर पद्धति भूमि के क्षेत्रों के मानचित्रण और लक्षण वर्णन की अनुमति देती है, जिसमें लैंडफॉर्म, लिथोलॉजी, सतह के रूप, मूल सामग्री और मिट्टी के विशिष्ट और अक्सर दोहराव वाले रूप होते हैं। SOTER को 1:250,000 से 1:5: तक के तराजू पर लगाया जाता है। सोटर 1986 में FAO, UNEP और ISRIC द्वारा शुरू किया गया था।

NSIS (राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण प्रणाली): राष्ट्रीय सहकारी मृदा सर्वेक्षण का ध्यान स्थैतिक मुद्रित मृदा सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार करने से व्यापक आवश्यकताओं के लिये मृदा सूचना का गतिशील संसाधन प्रदान करने की ओर स्थानांतरित हो रहा है। ह्स्ड्स में कई परस्पर संबंधित मृदा अनुप्रयोग और डेटाबेस शामिल हैं।

मृदा सूचना प्रणाली के अनुप्रयोग

1. भूमि का मूल्यांकन

एसआईएस भूमि की पूरी तस्वीर प्राप्त करने में मदद करता है, जिसे हम भूमि की खरीद या विकास से पहले विचार कर रहे हैं। एसआईएस विश्लेषण की मदद से, बढ़ती क्षमता के लिए क्षेत्र की क्षमता की भविष्यवाणी करने में सक्षम है। यह लेआउट और रोपण की प्रक्रिया के दौरान चुनौतियों की पहचान करने और पहचानने में भी मदद करता है। एसआईएस उत्पादकों को उप-इष्टतम मिट्टी के गुणों से जुड़े नुकसान से बचने में मदद करता है जो फसल की गुणवत्ता और उपज को स्थायी रूप से सीमित कर सकते हैं। एसआईएस एक विशेष भूमि क्षेत्र का मानचित्रण करने में मदद करता है और उस विशेष क्षेत्र में मिट्टी की गुणवत्ता का भी अध्ययन करता है। यह खनिज सामग्री, जल निकासी प्रकार, मिट्टी की उर्वरता का विश्लेषण और अध्ययन भी करता है। एसआईएस किसान को मिट्टी की पोषक सामग्री के अनुसार उर्वरकों को लागू करने में भी मदद करता है। एसआईएस का उपयोग करके किसी विशेष क्षेत्र का उपज अनुमान भी लगाया जाता है।

2. डिजाइनिंग और खेत की तैयारी

एक नए क्षेत्र में डिजाइनिंग और रोपण किसी भी क्षेत्र या किसी भी क्षेत्र के दीर्घकालिक उत्पादन को प्रभावित करने के अवसर प्रदान करता है। एसआईएस का उपयोग करके, उत्पादक उन खेतों को डिजाइन और तैयार करने में सक्षम होते हैं जो लंबी अवधि के लिए अनुकूलित होते हैं। एसआईएस यह जानना संभव बनाता है कि गहरे जड़ संशोधनों को कहां जोड़ा जाए, ज्ञात नमी धारण विशेषताओं के आधार पर फसल की किस्मों का चयन और रोपण किया जाए, और इन-फील्ड परिवर्तनशीलता को कम किया जाए। एसआईएस फसल के लेआउट की योजना बनाने में भी मदद करता है।

3. पानी, उर्वरक और संशोधनों के उपयोग का अनुकूलन करें

उत्पादक अधिक कुशल पानी, उर्वरक और संशोधन आवेदन रणनीतियों को नियोजित करके तुरंत सुधार कर सकते हैं। कठिनाई यह जानने के साथ आती है कि आप फसल की गुणवत्ता से समझौता किए बिना इनपुट को कहां और किस हद तक कम कर सकते हैं। एसआईएस अनुप्रयोगों को लक्षित करना और उन्हें यह सुनिश्चित करना संभव बनाता है कि महंगे इनपुट का कुशलता से उपयोग किया जाता है। एसआईएस डेटा का उपयोग करने वाले उत्पादकों को अब सबसे कम आम भाजक का प्रबंधन करने की आवश्यकता नहीं है, इसके बजाय वे कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों को उच्च उपज और गुणवत्ता प्राप्त करने में मदद करने पर ध्यान केंद्रित करते हुए स्वाभाविक रूप से होने वाली उपलब्धता का लाभ उठा सकते हैं। एसआईएस फसल और मिट्टी के मानकों के अनुसार उर्वरक लगाने में मदद करता है। यह उर्वरकों के किफायती उपयोग में मदद करता है जिससे धन और समय की बचत होती है। यह किसी विशेष क्षेत्र की सिंचाई प्रणाली की योजना बनाने में भी मदद करता है।

4. फसल उत्पादकता और फसल की गुणवत्ता में सुधार

एसआईएस उत्पादकों को बढ़ती परिस्थितियों को अनुकूलित करने और समग्र फसल की गुणवत्ता में सुधार के लिए उपकरण देता है। एक खेत के भीतर पौधों की सामग्री एक समान हो सकती है, लेकिन जिन मिट्टी में वे फसलें उगती हैं वे नहीं हैं। एसआईएस के साथ, उत्पादक एक खेत के भीतर परिवर्तनशीलता का आकलन कर सकते हैं और अपनी आवश्यकता के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों का इलाज कर सकते हैं, जिससे गुणवत्ता को पूरे क्षेत्र में उच्चतम ग्रेड तक प्राप्त किया जा सकता है। उत्पादक उन क्षेत्रों को डिजाइन और तैयार करने में सक्षम हैं जो लंबी अवधि के लिए अनुकूलित हैं। जिससे मिट्टी की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

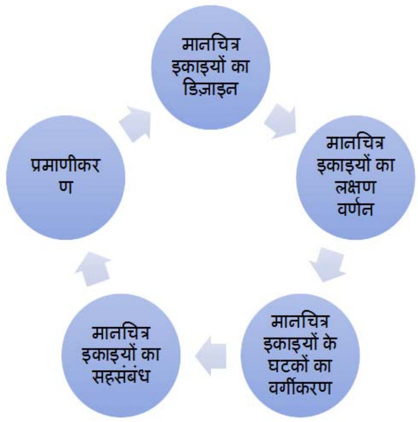

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

चमत्कारी वृक्ष : सहजन (MORINGA OLEIFERA)

✎शिवम दीक्षित शोध छात्र (उद्यान),
सी.एस.जे.एम. यूनिवर्सिटी, कानपुर (उ.प्र.)
✎डॉ. अंकित सिंह भदौरिया विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यानिकी) कृषि विज्ञान केंद्र, कासगंज, (उ.प्र.)
✎सिमरन और आदित्य कुमार गिरी
परास्नातक छात्र (शाकभाजी विज्ञान),
सी.एस.जे.एम. यूनिवर्सिटी, कानपुर (उ.प्र.)

परिचय

सहजन (Moringa oleifera), जिसे अक्सर 'चमत्कारी वृक्ष', 'जीवन का वृक्ष', 'ड्रमस्टिक' या 'माँ का दूध' कहा जाता है, अपनी अद्भुत पोषणात्मक विशेषताओं और बहुउपयोगिता के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हो रहा है। भारत के दक्षिणी हिमालयी क्षेत्रों का यह मूल निवासी पौधा तेज़ी से बढ़ने वाला और सूखा सहन करने वाला है। इसे सदियों से अफ्रीका और एशिया की पारंपरिक चिकित्सा और भोजन में उपयोग किया जाता रहा है। आज सहजन को 'सुपरफ़ूड' माना जाता है, जो कुपोषण से लड़ने और स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सक्षम है। सहजन एक पतला, पर्णपाती वृक्ष है, जिसकी ऊँचाई लगभग 12 मीटर तक हो सकती है। इसके कोमल, पंखदार पत्ते, पतली शाखाएँ और लंबे बीज फली इसकी पहचान हैं। प्राचीन सभ्यताओं जैसे मिस्र, यूनान और रोम में इसका प्रयोग इत्र और औषधीय कार्यों में होता था। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में इसकी पत्तियाँ, तने और फलियाँ लंबे समय से भोजन और औषधि का मुख्य हिस्सा रहे हैं।

वृद्धि और उत्पादन

सहजन की सबसे उल्लेखनीय विशेषता इसकी तेज़ वृद्धि है। इसे रोपण के केवल छह महीने बाद काटा जा सकता है। युवा पौधों की पत्तियाँ और तने पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं और वर्ष में कई बार काटे जा सकते हैं । कभी-कभी साल में सात बार तक। 2ङ्ग3 साल की उम्र में एक पेड़ सैकड़ों फलियाँ देने लगता है, जिससे यह अत्यधिक टिकाऊ और उत्पादक फ़सल बन जाती है।

उपयोग और प्रसंस्करण

सहजन के फूलों को हर्बल चाय बनाने में प्रयोग किया जाता है। बीज फली भारतीय और दक्षिण-पूर्व एशियाई व्यंजनों का प्रमुख हिस्सा है। इसके बीज भूनकर खाए जा सकते हैं और पाउडर रूप में भोजन और परंपरागत दवाइयों में इस्तेमाल होते हैं। सहजन के बीज का पाउडर एंटीबैक्टीरियल गुण रखता है और पानी शुद्ध करने में उपयोगी है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध नहीं है।

पोषण का भंडार

सहजन में 27 विटामिन, 9 आवश्यक अमीनो अम्ल, 46 एंटीऑक्सीडेंट और अनेक खनिज पाए जाते हैं।

* इसकी पत्तियों में दही से 2 गुना प्रोटीन,
* गाजर से 4 गुना विटामिन A,
* केले से 3 गुना पोटैशियम,
* दूध से 4 गुना कैल्शियम और
* संतरे से 7 गुना विटामिन C पाया जाता है।

सूखी पत्तियों में पोषक तत्वों की मात्रा और भी अधिक हो जाती है। जैसे, गाजर से 10 गुना विटामिन A, दूध से 17 गुना कैल्शियम, केले से 15 गुना पोटैशियम, पालक से 25 गुना आयरन और दही से 9 गुना प्रोटीन। यही कारण है कि सहजन को कुपोषण से लड़ने का प्रभावी साधन माना जाता है।

कुपोषण से लड़ाई और स्वास्थ्य लाभ

सहजन को कई संगठनों द्वारा प्राकृतिक पोषण अनुपूरक के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है। यह सूखा और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में भी आसानी से उगता है, इसलिए भोजन की कमी वाले समय में अत्यंत उपयोगी है। सहजन पाउडर का नियमित उपयोग बच्चों के विकास, प्रतिरक्षा और पोषण में सुधार करता है। वर्ष 2014 में संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (FAO) ने सहजन को "Traditional Crop of the Month" घोषित किया।

अतिरिक्त स्वास्थ्य लाभ

सहजन रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, रक्तचाप नियंत्रित करने, तनाव कम करने, थकान घटाने और पाचन सुधारने में सहायक है। पारंपरिक चिकित्सा में इसका प्रयोग एनीमिया, अल्सर, दस्त, त्वचा संक्रमण आदि के इलाज में होता है। इसकी एंटीबैक्टीरियल और एंटी-इंफ्लेमेटरी गुण इसे कीड़े के काटने, घाव, फंगल संक्रमण और त्वचा रोगों के उपचार में उपयोगी बनाते हैं। बीज पानी शुद्ध करने, ऐंठन, गठिया और रुमेटिज़्म के इलाज में भी प्रयुक्त होते हैं।

बढ़ती लोकप्रियता और भविष्य

लंदन जैसे शहरों के प्रीमियम स्टोर्स में उपलब्ध होने के बाद से सहजन पाउडर विश्व स्तर पर एक लोकप्रिय सुपरफ़ूड बन चुका है। प्राकृतिक और टिकाऊ पोषण विकल्पों में लोगों की बढ़ती रुचि के कारण इसकी मांग लगातार बढ़ रही है।

निष्कर्ष

सहजन वास्तव में अपने नाम के अनुरूप "चमत्कारी वृक्ष" है। इसके पोषक तत्वों की भरमार, पाक बहुउपयोगिता और औषधीय गुण इसे कुपोषण से लड़ने और स्वस्थ आहार का हिस्सा बनाने में अत्यंत उपयोगी बनाते हैं। जैसे-जैसे इसकी खेती और जागरूकता बढ़ेगी, सहजन आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य और पोषण सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

आंवला में सक्रिय जैविक यौगिक और उनके मानव स्वास्थ्य पर चिकित्सीय प्रभाव

समीर वर्मा पी.एच.डी. शोध छात्र फल विज्ञान विभाग
डॉ. भानू प्रताप प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या

परिचय : आंवला (फैलन्थ्स इम्बलिका), जिसे भारतीय आयुर्वेद में अमला कहा जाता है, पारंपरिक औषधीय उपयोग के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण फल है। यह न केवल पोषण का स्रोत है, बल्कि इसके औषधीय गुण इसे आयुर्वेद में ÷आयुर्वेदिक अमृत÷ के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। प्राचीन ग्रंथों जैसे चारक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग हृदय में आंवला का व्यापक औषधीय उपयोग वर्णित है। पारंपरिक रूप से इसे हृदय स्वास्थ्य, पाचन प्रणाली सुधार, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, त्वचा और बालों के पोषण तथा सर्दी-जुकाम और श्वसन रोगों में लाभकारी माना जाता रहा है। आंवला का प्रयोग आमवात, कब्ज, अम्लपित्त, खांसी और जुकाम जैसी समस्याओं में आयुर्वेदिक औषधि के रूप में किया जाता रहा है। आंवला में प्रमुख जैविक यौगिकों में फेनोलिक कंपाउंड, फ्लेवोनॉइड्स, टैनिन्स और उच्च मात्रा में विटामिन सी शामिल हैं। ये यौगिक एंटीऑक्सिडेंट, एंटी-इंफ्लेमेटरी, एंटीमाइक्रोबियल और न्यूरोप्रोटेक्टिव गुण प्रदान करते हैं। इनके चिकित्सीय प्रभाव हृदय स्वास्थ्य सुधारने, रक्त शर्करा नियंत्रित करने, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों के जोखिम को कम करने की क्षमता रखता है

आंवला के सक्रिय जैविक यौगिक: आंवला में पाए जाने वाले सक्रिय जैविक यौगिक इसे औषधीय दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान बनाते हैं। इस फल में प्रमुख रूप से फेनोलिक कंपाउंड, फ्लेवोनॉइड्स, टैनिन्स, विटामिन सी और अन्य एंटीऑक्सिडेंट यौगिक पाए जाते हैं। फेनोलिक कंपाउंड जैसे गैलिक और एलागिक एसिड ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने और हृदय रोग, कैंसर तथा सूजन जैसी बीमारियों के जोखिम को घटाने में सहायक होते हैं। फ्लेवोनॉइड्स जैसे क्रेरसेटिन, मायरिकेटिन और केम्पफेरोल एंटी-इंफ्लेमेटरी और न्यूरोप्रोटेक्टिव गुण प्रदान करते हैं, जिससे मस्तिष्क और हृदय स्वास्थ्य में सुधार होता है।

फाइटोकेमिकल्स : आंवला में पाए जाने वाले फाइटोकेमिकल्स इसे औषधीय दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान बनाते हैं। फाइटोकेमिकल्स प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले जैविक यौगिक हैं, जो पौधों में स्वास्थ्य संवर्धक और रोग प्रतिरोधक गुण प्रदान करते हैं। आंवला में प्रमुख फाइटोकेमिकल्स में फेनोलिक कंपाउंड, फ्लेवोनॉइड्स, टैनिन्स और एलागिक एसिड शामिल हैं। फेनोलिक यौगिक मुक्त कणों को निष्क्रिय करके ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करते हैं, जिससे हृदय रोग, कैंसर और सूजन जैसी बीमारियों का जोखिम घटता है। फ्लेवोनॉइड्स जैसे क्रेरसेटिन और मायरिकेटिन एंटी-इंफ्लेमेटरी और न्यूरोप्रोटेक्टिव गुण प्रदान करते हैं, जो मस्तिष्क और हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं।

विटामिन और मिनरल्स : आंवला अपने उच्च पोषण मूल्य के लिए विशेष रूप से विख्यात है। यह फल विटामिन सी का एक प्रमुख स्रोत है, जो प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करने, मुक्त कणों से कोशिकाओं की सुरक्षा करने और त्वचा तथा हड्डियों के स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए जाना जाता है। इसके अतिरिक्त, आंवला में विटामिन ए विटामिन बी कॉम्प्लेक्स और विटामिन ई भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। विटामिन ए दृष्टि स्वास्थ्य और त्वचा की रक्षा में सहायक है, जबकि विटामिन बी कॉम्प्लेक्स मेटाबोलिक प्रक्रियाओं और ऊर्जा उत्पादन के लिए आवश्यक हैं। विटामिन ई शक्तिशाली एंटीऑक्सिडेंट है जो कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाता है। आंवला में खनिज तत्वों का भी अच्छा भंडार है। इसमें कैल्शियम, फास्फोरस, पोटेशियम, आयरन और मैग्नीशियम पाए जाते हैं। कैल्शियम और फास्फोरस हड्डियों और दांतों के स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं, जबकि पोटेशियम रक्तचाप को नियंत्रित करने में मदद करता है। आयरन शरीर में हीमोग्लोबिन उत्पादन और ऑक्सीजन परिवहन में सहायक होता है। इन विटामिन और मिनरल्स की उपस्थिति आंवला को एक संपूर्ण पोषण और स्वास्थ्य संवर्धक फल बनाती है, जो पारंपरिक औषधि और आधुनिक हेल्थ सप्लीमेंट दोनों के लिए अत्यंत मूल्यवान है।

आंवले का पोषण मूल्य

पेषक तत्व	मात्रा /100 मिली.
विटामिन सी	600 से 900
आयरन	1.2 एम जी
कैल्सियम	25 एम जी
पालिफिनाल	उच्च
एन्टीआक्सीडेन्ट	प्रचुर
फाइबर	3.4 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	10 से 15 ग्राम
कैलोरी	लगभग 45 किलो कैलोरी

जैविक यौगिकों के चिकित्सीय प्रभाव: आंवला में पाए जाने वाले सक्रिय जैविक यौगिक, जैसे फेनोलिक कंपाउंड, फ्लेवोनॉइड्स, टैनिन्स और विटामिन सी इसके औषधीय प्रभावों के लिए केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। ये यौगिक शरीर में विभिन्न जैव रासायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करके स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं।

हृदय स्वास्थ्य: आंवला में मौजूद फ्लेवोनॉइड्स और फेनोलिक यौगिक धमनियों की रक्षा करते हैं और कोलेस्ट्रॉल के स्तर को संतुलित रखते हैं। इनके एंटीऑक्सिडेंट गुण रक्त वाहिकाओं में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करते हैं, जिससे हृदय रोग और एथेरोस्क्लेरोसिस जैसी स्थितियों का जोखिम घटता है। नियमित आंवला सेवन से ब्लड प्रेशर नियंत्रण में मदद मिलती है और हृदय की कार्यक्षमता में सुधार देखा गया है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता: विटामिन सी और अन्य एंटीऑक्सिडेंट यौगिक प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करते हैं। ये यौगिक संक्रमणों और वायरल रोगों के खिलाफ शरीर की रक्षा क्षमता बढ़ाते हैं। आंवला का सेवन शरीर में सफेद रक्त कोशिकाओं की गतिविधि को सक्रिय करता है और सूजन घटाने वाले मार्गों को नियंत्रित करता है। एंटी-इंफ्लेमेटरी और एंटीऑक्सिडेंट प्रभाव आंवला के फेनोलिक कंपाउंड और टैनिन सूजन कम करने और कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाने में सहायक हैं।

डायबिटीज और मेटाबोलिक सिंड्रोम: आंवला में मौजूद सक्रिय जैविक यौगिक जैसे फेनोलिक कंपाउंड, फ्लेवोनॉइड्स और पॉलिफेनॉल्स डायबिटीज और मेटाबोलिक सिंड्रोम के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये यौगिक रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने, इंसुलिन संवेदनशीलता बढ़ाने और ग्लूकोज मेटाबोलिज़्म को सुधारने में सहायक होते हैं। विभिन्न प्रायोगिक और मानव क्लिनिकल स्टडीज ने दिखाया है कि आंवला का नियमित सेवन पोस्टप्रैंडियल ब्लड ग्लूकोज और फास्टिंग ब्लड ग्लूकोज को नियंत्रित करता है। इसके अतिरिक्त, आंवला में उपस्थित एंटीऑक्सिडेंट यौगिक शरीर में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करते हैं, जो टाइप 2 डायबिटीज और मेटाबोलिक सिंड्रोम से संबंधित जटिलताओं को घटाने में सहायक है।

न्यूरोप्रोटेक्टिव और मस्तिष्क स्वास्थ्य: आंवला में पाए जाने वाले सक्रिय जैविक यौगिक, जैसे फ्लेवोनॉइड्स, फेनोलिक कंपाउंड और पॉलिफेनॉल्स, मस्तिष्क स्वास्थ्य और न्यूरोप्रोटेक्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये यौगिक ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने और न्यूरॉन्स को मुक्त कणों से होने वाले नुकसान से बचाने में सहायक होते हैं। आंवला में उपस्थित क्रेरसेटिन, मायरिकेटिन और एलागिक एसिड जैसे यौगिक न्यूरोट्रांसमीटर संतुलन बनाए रखने में योगदान करते हैं, जिससे स्मृति, सीखने की क्षमता और संज्ञानात्मक कार्यों में सुधार होता है।

कैंसर और ट्यूमर विरोधी प्रभाव: एलागिक एसिड और पॉलिफेनॉल ट्यूमर कोशिकाओं की वृद्धि को रोकते हैं और कैंसर विरोधी गतिविधियों में सहायक होते हैं। इन यौगिकों की एंटीऑक्सिडेंट और एंटी-इंफ्लेमेटरी विशेषताएँ कैंसर कोशिकाओं की प्रगति को धीमा करने में योगदान देती हैं।

आंख की देखभाल: आंवला कैरोटीन से भरपूर होता है जो दृष्टि संबंधी समस्याओं पर अपने शक्तिशाली प्रभाव के लिए जाना जाता है। आंवले और शहद से बना यह मिश्रण दृष्टि, निकट दृष्टि दोष और मोतियाबिंद में सुधार करने में मदद करता है।

पारंपरिक औषधीय उपयोग: पारंपरिक भारतीय चिकित्सा पद्धति में, इस पौधे के सूखे और ताजे फलों का उपयोग किया जाता है। पौधे के सभी भागों का उपयोग विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों में किया जाता है, जिनमें फल, बीज, पत्ते, जड़, छाल और फूल शामिल हैं। आयुर्वेद के अनुसार, आंवला का फल खट्टा (आंवला) और कसैला (कषाय) स्वाद (रस) होता है, साथ ही इसमें मीठा (मधुर), कड़वा (तिक्त) और तीखा (कटु) स्वाद (अनुरस) भी होते हैं।

चमकदार त्वचा: आंवला न सिर्फ़ आपकी सेहत के लिए अच्छा है; बल्कि यह एक प्राकृतिक सौंदर्य रहस्य भी है! यह अद्भुत फल आपकी त्वचा और बालों, दोनों के लिए अद्भुत काम करता है। आंवले में मौजूद विटामिन सी की उच्च मात्रा कोलेजन के उत्पादन के लिए ज़रूरी है, यह वह प्रोटीन है जो आपकी त्वचा को जवां और कोमल बनाए रखता है। अगर आप झुर्रियों और महीन रेखाओं को कम करना चाहते हैं, तो आंवला बहुत मददगार हो सकता है। इसके अलावा, आंवले में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस से लड़ते हैं, जो मुँहासों और अन्य त्वचा संबंधी समस्याओं का एक प्रमुख कारण है।

घने बालों के रहस्यों को उजागर करना: आपके बालों के लिए, आंवला किसी चमत्कारी उपाय की तरह है। यह बालों के रोमछिद्रों को जड़ों से मज़बूत बनाता है, स्वस्थ बालों के विकास को बढ़ावा देता है और समय से पहले सफ़ेद होने से रोकता है।

निष्कर्ष : आंवला में उपस्थित सक्रिय जैविक यौगिक, जैसे फेनोलिक कंपाउंड, फ्लेवोनॉइड्स, टैनिन्स, एलागिक एसिड और विटामिन सी, इसे औषधीय दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान बनाते हैं। ये यौगिक शरीर में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने, सूजन घटाने, प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करने और मेटाबोलिक तथा न्यूरोलॉजिकल स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होते हैं। आंवला के जैविक यौगिक हृदय रोग, डायबिटीज, मेटाबोलिक सिंड्रोम, न्यूरोडीजेनेरेटिव रोग और कैंसर जैसी प्रमुख स्वास्थ्य चुनौतियों में लाभकारी प्रभाव प्रदान करते हैं। इसके अलावा, ये यौगिक पारंपरिक आयुर्वेदिक ज्ञान को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं और आधुनिक हेल्थ सप्लीमेंट्स एवं औषधीय उत्पादों में भी इसकी महत्ता को स्थापित करते हैं। इस प्रकार, आंवला न केवल पोषण का स्रोत है बल्कि एक बहुपयोगी औषधीय फल के रूप में स्वास्थ्य संवर्धन और रोग प्रबंधन में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

छत पर सब्जी की खेती कर करें सही समय का उपयोग

ललित नारायण सोनू M.Sc. (vegetable science) इंटीग्रल विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

अनुराग B.Sc. Ag) इंटीग्रल विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

सलोनी कुमारी B.Sc. Ag) इंटीग्रल विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

राहुल कुमार (M.Sc. (vegetable science) इंटीग्रल विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

अभिनय (YP II (ICAR-IIVR Varanasi U.P.)

जैसा कि हम सब जानते हैं सब्जियां हमारे भोजन का एक अहम हिस्सा है, यह हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है। और सब्जियां हमें स्वास्थ्य बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हम कुछ दिन फल खाए बिना रह सकते हैं पर सब्जी नहीं। सब्जी न केवल हमें पोषण प्रदान करती है बल्कि विभिन्न बीमारियों से भी हमें बचाती है। सब्जी में सभी प्रकार के पोषक तत्व, जैसे प्रोटीन विटामिन खनिज फाइबर वसा और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होती है, यह हमारे शरीर को सही प्रकार के आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और हम स्वस्थ और खुश महसूस करते हैं।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (ICMR) के अनुसार एक सामान्य आदमी को करीब 300 ग्राम प्रतिदिन सब्जी खानी चाहिए, जिसमें 125 ग्राम पत्ते वाली सब्जी 100 ग्राम जड़ व तना वाली सब्जी और 75 ग्राम मौसम में उपयुक्त प्राप्त सब्जी खानी चाहिए। पर बढ़ती जनसंख्या के कारण खेती के लिए जमीन कम होती जा रही है और कम जमीन होने से उपजाऊ पर भी असर पड़ रहा है। और उपजाऊ बनाने के लिए किसान भाई लोग ज्यादा ज्यादा से ज्यादा खाद व कीटनाशक का प्रयोग कर रहे हैं । जिससे उपज तो बढ़ रही है, पर इसके साथ ही ऐसी रसायन सब्जियां खाने से अनेकों बीमारियां को भी निमंत्रण दे रहे हैं। ऐसी सब्जियों का सेवन करने से अनेकों भयंकर युक्त बीमारियां उत्पन्न हो रही है जैसे कैंसर, त्वचा रोग, पेट से संबंधित अनेकों बीमारियां इत्यादि । इसके साथ ही साथ अत्यधिक मात्रा में खाद व कीटनाशक का उपयोग करने से पर्यावरण भी दूषित हो रहा है और मिट्टी में मौजूद प्राकृतिक पोषक तत्व भी नष्ट हो रहे हैं और मिट्टी की उर्वरक शक्ति भी कम हो रही है। और दूसरी तरफ शहरों की दूषित वातावरण और आसमान छूती सब्जियों का भाव जैसे समस्या आम बात हो गई है। इन सभी समस्याओं से बचने के लिए हम कृषि विज्ञान के नई तकनीक ÷छत पर खेती÷ जिसे %टेरेस गार्डेनिंग या रूफटॉप गार्डेनिंग% भी कहते हैं। यह एक कृषि प्रणाली कि ऐसी विधि है जिसमें कम स्थान में अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं है और ताजी हरी और पौष्टिक सब्जी प्राप्त कर स्वास्थ्य पर भी स्वास्थ्य पर भी ध्यान दे सकते हैं। और सब्जी की बढ़ती महंगाई से बच सकते हैं। इस विधि से खेती करने में लागत ही कम लगता है और अपना फालतू समय का भी सदुपयोग हो जाता हैं

छत पर सब्जी उगाने के फायदे ..।

1) ताजी और रसायन मुक्त सब्जियां प्राप्त कर सकते हैं 2) ताजी हरी सब्जियों का सेवन करने से शरीर को सही प्रकार के आवश्यक पोषक तत्व मिलता है जिससे शरीर स्वस्थ बना बना रहता है और बीमारियों का खतरा भी कम होता है। 3) हमारा पाचन तंत्र भी मजबूत होता है और कब्ज जैसी समस्याओं से भी राहत मिलती है। 4) छत पर बागान लगाने से आसपास का वातावरण भी शुद्ध रहता है 5) यह शहरी

क्षेत्रों में प्रदूषण कम करने में मदद करता है। 6) सब्जियों की बढ़ती महंगाई से भी बच सकते हैं। 7) अधिक उत्पादन होने पर आप बाजार में बेचकर कुछ आर्थिक लाभ भी उठा सकते हैं। 8) गर्मियों के मौसम में भी घर ठंडा बना रहता है। 9) अपना खाली समय का भी सदुपयोग हो जाता है 10) घर में बागान लगाने से मानसिक तनाव भी कम होता है और मन खुश रहता है।

छत पर पौधा लगाने से पहले उपयुक्त बातों पर ध्यान रखें।

1) छत की अच्छी तरह से जांच करें। * छत पर जल निकासी ड्रेनेज सिस्टम का उत्तम व्यवस्था होना चाहिए जिससे पानी का जवाब ना हो। * छत कमजोर ना हो वह पौधे के वजन को संभाल सके। * छत में किसी प्रकार का रिसाव ना हो इसके लिए वाटरप्रूफ कोटिंग करवाएं।

2) सही स्थान का चयन करें। * पौधे को ऐसे स्थान पर लगाए जहां पर पौधे को कम से कम 6 से 8 घंटे की पर्याप्त धूप मिले, जिससे पौधे का वृद्धि और विकास अच्छा हो। * छायादार पौधे के लिए आंशिक धूप वाली जगह चुनें।

3) उपयुक्त गमले और ग्रोबैग चुनें। * जहां तक हो हल्के रंग के गमले या ग्रोबैग का उपयोग करें जिससे पौधे को अत्यधिक गर्मी से बचाव किया जा सके। * गमले और ग्रोबैग की गहराई कम से कम 12 से 15 इंच हो। * पुराने डिब्बे, टब, बाल्टिया जैसे घर के बेकार सामान का भी उपयोग पौध लगाने में कर सकते हैं।

4) मिट्टी का चयन * हमेशा अच्छे गुणवत्ता वाले उपजाऊ मिट्टी का प्रयोग करें जिसमें कार्बनिक पदार्थ भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो।

5) सब्जियों का चयन। * सब्जियों का चयन उनकी बुवाई के समय और मौसम के अनुसार करें जैसे-

* **गर्मियों के लिए** - टमाटर बैगन मिर्च भिंडी लौकी करेला पलक इत्यादि ।

* **सर्दियों के लिए** - गाजर मूली धनिया मेथी मटर फूलगोभी पत्तागोभी इत्यादि

छत पर सब्जी उगाने की विधि * पौधे लगाने के लिए गमले की तैयारी ।

इस बात का ध्यान रखें कि, गमले या प्लास्टिक की थैलियों में अत्यधिक पानी के निकास के लिए एक या दो छेद हो, अन्यथा पानी के जमाव से जड़ों में सड़न कि समस्या हो जाएगी और जहां तक हो सके हल्के रंग का गमले या प्लास्टिक बैग का उपयोग करें, जिससे पौधे को अत्यधिक गर्मी से बचाव किया जा सके, और लोहे और टीन के गमलों की जगह, मिट्टी के गमले का ज्यादा उपयोग करें, और गमले की लंबाई कम से कम 12-15 इंच से हो।

मिट्टी तैयार कैसे करें: गमलों और प्लास्टिक बैग में भरने के लिए कार्बनिक पदार्थ से भरपूर उपजाऊ मिट्टी का प्रयोग करें। मिट्टी को गमले में भरने से पहले सड़ी हुई गोबर की खाद्य, वर्मी कंपोस्ट, घर का कचरा (फल व सब्जियों के छिल्के) को अच्छी तरह से मिलकर भरे। इसके साथ नीम खली, सरसों के तेल कि खल्ली, बोन मील, और लकड़ी की राख इत्यादि मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ती है जिसेस उपज भी बढ़ जाता है। आप गमले में नारियल का बुरादा (कोकोपीट) का भी उपयोग कर सकते हैं इसमें हवा का संचार भी अच्छा होता है, और इसमें पानी सूखने की क्षमता अधिक होती है और हमेशा नमी बनाकर रखती है। इसके उपयोग करने से पोटेशियम का भी उपयोग भी कम करना पड़ता है। इसमें अंकुरण प्रतिशत अच्छा होता है।

बागवानी के लिए छत पर जगह का चुनाव: छत पर गमले को ऐसी जगह पे रखें जहां काम से कम 8 से 10 घंटे के सूर्य के प्रकाश पौधे को मिल सके, जिससे पौधे का अच्छा वृद्धि और विकास हो और गमले को ऐसे रखें कि एक गमले का छाया दूसरे पर ना पड़े ।

बीज बोने व पौधों की देखरेख: हमेशा अच्छे गुणवत्ता वाली बीज का चयन करें और हमेशा कवकनाशी से उपचारित बीजों का ही उपयोग करें। बीज को बोने से पहले 4 से 5 घंटे पानी में भोंगों दे फिर बीजों को पहले छोटे गमले या ट्रे में अंकुरित करें। उसके बाद ट्रे को 4 से 6 घंटे की धूप और जरूरत के हिसाब से पानी दें। फिर तीन से चार पत्ती आने के बाद बड़े गमले में रोपाई करें।

सिंचाई करने का सही तरीका: पौधों में सुबह शाम जरूरत के हिसाब से ही पानी दें ज्यादा पानी देने से जड़े सड़ कर सकती है और अतिरिक्त पानी के लिए गमले के नीचे छेद करें जिससे अतिरिक्त पानी बाहर निकल सके। आप ड्रिप इरिगेशन सिस्टम तकनीक उपयोग कर सकते हैं जिससे पानी की बचत होगी और हमेशा मिट्टी में नमी बनी रहेगी। ड्रिप सिंचाई एक ऐसी सिंचाई तकनीक है जिसमें पानी को पौधों की जड़ों के पास बूंद-बूंद करके दिया जाता है, जिससे पानी की बचत होती है और पौधों को आवश्यक मात्रा में पानी मिलता है। इस विधि में पानी को सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचाया जाता है, जिससे वाष्पीकरण कि प्रक्रिया कम होती हैं जिससे पानी की बर्बादी कम होती है. और जल उपयोग दक्षता बढ़ जाती है।

किट और रोग पर नियंत्रण: साफ सफाई से खेती करें गमले में गिरे हुए सूखे व सड़े गले पत्ते और गमले से उगने वाले खरपतवार को समय-समय पर हाथ से निकाल दें, इसके अलावा किट व बीमारियों से बचने के लिए जैविक कीटनाशक जैसे नीम का घोल (प्रति लीटर पानी में तीन माल) और लहसुन का स्प्रे करें।

सहायक संरचनाएँ बनाएं: बेल वाली सब्जियों जैसे (लौकी, करेला, सेम, खीरा) के लिए मजबूत ट्रेलिस (जाल / बांस / तार का ढांचा) लगाएँ। जिससे पौधे का विकास और पैदावार अच्छा हो सके। और छोटे पौधों को हवा और पक्षियों से बचाने के लिए नेट या जाली का उपयोग करें।

नियमित देखभाल और फसल की कटाई: हर एक दो महीने के अंतराल पर जैविक खाद डालें। और समय पर निराई गुराई करते रहें और खरपतवार (Weeds) हटाते रहें। जब सब्जियाँ पक जाएँ तो समय पर काट लें जिससे पौधों में नई फसल आ सके।

अतिरिक्त सुझाव

किचन वेस्ट से खाद बनाएँ: छत पर कम्पोस्टिंग सिस्टम लगाएँ।

* **पुराने कंटेनरों का उपयोग करें** - पर्यावरण के अनुकूल तरीका अपनाएँ । * बारिश के पानीका संचय करें या पौधे के लिए बहुत लाभदायक होता है। * प्राकृतिक संसाधनों का सही उपयोग करें।

निष्कर्ष: अगर आप इस तरह से छत पर खेती करते हैं तो कुछ ही महीनों में आपकी छत पर एक सुंदर और उपजाऊ सब्जी बगान (गार्डन) तैयार कर ताज़ी हरी और पौष्टिक सब्जी प्राप्त कर सकते हैं और पर्यावरण को भी संतुलित रखने में मदद कर सकते हैं।

मृदा जलमग्नता–समस्या एवं प्रबन्धन

डॉ. हनुमान प्रसाद पांडे (मृदा वैज्ञानिक)
मनोज कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
ज्ञानदीप गुप्ता (मत्स्य वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केंद्र मनकापुर, गोंडा
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

परिचय

अवश्य ही मृदा जलस्तर की पौध वृद्धि एव मृदा गुणों को सन्तुलित रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है किन्तु यही मृदा जल यदि आवश्यकता से अधिक या कम हो जाये तो मृदा गुणों के साथ-साथ पौध वृद्धि को भी प्रतिकूल रुप से प्रभावित करता है। ऐसी मृदा जिसमें वर्ष में लम्बे समयावधि तक जलक्रांत की दशा हो और उसमें लगातार वायु संचार में कमी बनी रहे तो उसे मृदा जलमग्नता कहते है। मृदा की इस दशा के कारण भौतिक रासायनिक एवं जैव गुणों में अभूतपूर्व परिवर्तन हो जाता हैं। फलस्वरुप ऐसी मृदा में फसलोत्पादन लगभग असम्भव हो जाता हैं। इस परिस्थिति में जल निकास की उचित व्यवस्था द्वारा मृदा गुणों को पौध की आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके फसल उत्पादन सम्भव किया जा सकता है। आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण फसलों में हानि के अलावा लगभग सभी प्रकार के पौधों की अच्छी एवं पैदावार के लिये अधिकतम 75 प्रतिशत तक ही मृदा रन्ध्र पानी से तृप्त होते हैं और 25 प्रतिशत रंध्र हवा के आदान प्रदान के लिये आवश्यक होते हैं। जिसके कारण जड़ श्वसन क्रिया से कार्बनआक्साइड का निष्कासन और वायुमंडल से आक्सीजन का प्रवेश सम्भव हो पाता है जो पोघों की जड़ो को घुटन से बचाता है। मृदा सतह का तालनुमा होना, भूमिगत जलस्तर के ऊपर होना, वर्षा जल का अन्त स्वयंदन कम होना, चिकनी मिट्टी के साथ-साथ मृदा तह में चट्टान या चिकनी मिट्टी की परत का होना एवं मृदा क्षारीयता इत्यादि परिस्थितियां जल मग्नता को प्रोत्साहित करती है।

मृदा जल मग्नता के प्रकार

1. नदियों में बाढ़ द्वारा जलमग्नता वर्षा ऋतु में अधिक बरसात के कारण नदी के आस-पास के क्षेत्रों में बाढ़ की स्थिति बनने के कारण मृदा जल मग्नता हो जाती हैं।
2. समुद्री बाढ़ द्वारा जलमग्नताः समुद्र का पानी आसपास के क्षेत्रों में फैल जाता है जो मृदा जल मग्नता का कारण बना रहता हैं।
3. सामयिक जल मग्नताः बरसात के दिनों में प्रवाहित वर्षा जल गढ्ढा या तालनुमा सतह पर एकत्रित होकर मृदा जल मग्नता को प्रोत्साहित करता है।
4. शाश्वत जल मग्नताः अगाध जल, दलहन तथा नहर के पास की जमीन यहां लगातार जल प्रभावित होता रहता है, शाश्वत जल मग्नता का कारण बनता हैं।
5. **भूमिगत जल मग्नताः** बरसात के समय में उत्पन्न भूमिगत जल मग्नता इस प्रकार के जल मग्नता का कारण बनता हैं।

मृदा जल मग्नता को प्रोत्साहित करने वाले कारक

1. **जलवायुः** अधिक वर्षा के कारण पानी का उचित निकास नहीं होने से सतह पर वर्षा जल एकत्रित हो जाता है।
2. **बाढ़ः** सामान्य रुप में बाढ़ का पानी खेतों में जमा होकर जल मग्नता की स्थिति पैदा कर देता है।
3. **नहरों से जल रिसावः** नहर के आस पास के क्षेत्र लगातार जल रिसाव के कारण जल मग्नता की स्थिति में सदैव बने रहते है।
4. **भूमि आकारः** तश्तरी या तालनुमा भूमि आकार होने के कारण अन्यत्र उच्च क्षेत्रों से प्रवाहित जल इक्ट्ठा होता रहता है, जो मृदा जल मग्नता का कारण बनता है।
5. **अनियंत्रित एवं अनावश्यक सिंचाईः** आवश्यकता से अधिक सिंचाई मृदा जल सतह पर जल जमाव को प्रोत्साहित करता है जो जल मग्नता का कारण बनता है।
6. **जल निकासः** उचित निकास की कमी या व्यवस्था न होने से क्षेत्र विशेष में जल मग्नता हो जाती है।

मृदा जल मग्नता का प्रभाव

1. जल की गहराईः निचले क्षेत्र जहां सामान्यतः बाढ़ की स्थिति बन जाने के कारण लगभग 50 सेन्टीमीटर तक पानी खड़ा हो जाता हैं। जो पौधों की वृद्धि एवं पैदावार पर हासित क्षमता में कमी के कारण प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इस स्थिति में पोषक तत्वों की भी कमी हो जाती है।

2. भूमि का समतलीकरणः भूमि की सतह के समतल होने से अतिरिक्त पानी का जमाव नहीं होता और प्राकृतिक जल निकास शीध्र हो जाता हैं।

3. नियंत्रित सिंचाईः अनियंत्रित सिंचाई के कारण जल मग्नता की स्थिति पैदा हो जाती हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में नियंत्रित सिंचाई प्रदान करके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

4. नहरों के जल रिसाव को रोकनाः नहर द्वारा सिंचित क्षेत्रों में जल रिसाव के कारण जलमग्नता की स्थिति बनी रहती है। अतः नहरों तथा नालियों द्वारा होने वाले जल रिसाव को रोककर इस समस्या को कम किया जा सकता है।

5. बाढ़ की रोकथामः बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में अधिकांशतः खेती योग्य भूमि जल मग्न हो जाती है और फसल का बहुत बड़ा नुकसान हो जाता है। अतः इन क्षेत्रों में नदी के किनारों पर बांध बनाकर जल प्रवाह को नियंत्रित किया जा सकता है।

6. अधिक जल मांग वाले वृक्षों का रोपणः वृक्षों की बहुत सी प्रजातियां अपनी उचित वृद्धि को लगातार बनाये रखने के लिये अधिक जलापूर्ति की मांग करते हैं, इन पौधों में विशेष रुप से सैलिक्स, मूँज घास, सदाबहार (आक), पॉपलर, शीशम, सफेदा, बबूल, इत्यादि प्रजातियां ऐसी है जो अधिक वर्षोत्सर्जन क्रिया के कारण अत्यधिक जल का प्रयोग करके भूमिगत जल स्तर को घटाने में सहायक होते है। अतः इस प्रकार के पौधों का भूजल मग्नता की दशा में रोपण करके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

7. उपयुक्त फसल तथा प्रजातियों का चुनावः बहुत सी ऐसी फसलें जैसे-धान, जूट, बरसीम, सिंघाडा, कमल, ढैचा, काष्ठ, फल इत्यादि मृदा जल मग्नता की दशा को कुछ सीमा तक सहन कर सकते है। अतः इन फसलों की सहनशक्ति के अनुसार चयन करके इन्हें सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

8. जल निकासः भू क्षेत्र में अतिरिक्त सतही या भूमिगत जल जमाव को प्राकृतिक या कृत्रिम विधियों द्वारा बाहर निकालने की प्रक्रिया को जल निकास कहते है। जल निकास का मुख्य उद्देश्य मिट्टी में उचित वायु संचार के लिये ऐसी परिस्थिति का निर्माण करना हैं जिससे पौधों की जड़ों को आक्सीजन की उचित मात्रा प्राप्त होती रहें।

9. सामान्यतः नम मिट्टी में क्ले (चिकनी मिट्टी) तथा जैव पदार्थो की मात्रा अधिक होने के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति भी अधिक होती है। जल निकास के फलस्वरुप इस प्रकार के भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

10. जल निकास द्वारा मृदा ताप में जल्दी परिवर्तन हो जाने से पौषक तत्वों की उपलब्धता जीवाणुओं की क्रियाशीलता एवं पौधों की वृद्धि अधिक हो जाती है।

11. जल निकास के कारण सम्पूर्ण क्षेत्र विशेष का एक जैसा हो जाने के कारण जुताई, गुड़ाई, पौध रोपण, बुआई अन्य कृषि क्रियाऐं, कटाई एवं सिंचाई स्तर में सुविधा पूर्ण समानता आ जाती है। यांत्रिक कृषि कार्य में टैक्टर इत्यादि का इस्तेमाल भी सुविधाजनक हो जाता है।

12. वायु संचार में वृद्धि होने से जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है और जैव पदार्थो का विद्यटन आसान होने जाने के कारण उपलब्ध पौषक तत्वों की उपयोग क्षमता में भी वृद्धि हो जाती है।

13. उचित जल निकास द्वारा नाइट्रोजन ह्रास को कम करने में आशातीत सफलता मिलती है। ज्ञात है कि मृदा में वायु अवरुद्धता के कारण नाइट्रोजन का जीवाणुओं द्वारा विद्यटन होकर नाइट्रोजन गैस के रुप में परिवर्तित हो जाता है जो अन्तोतगत्वा हवा में समाहित हो जाता था।

14. जल मग्नता के कारण कुछ विषाक्त पदार्थो जैसे घुलनशीलता लवण, इथाइलीन गैस, मीथेन गैस, ब्यूटाइरिक अम्ल, सल्फाइडस, फेरसआउन तथा मैग्नस आयन इत्यादि का निर्माण होता है जो मिट्टी में इक्ट्ठा होकर पौधों के लिये विषाक्लता पैदा करता है। अतः उचित जल निकास से वायु संचार बढ़ जाता है और फलस्वरुप इस तरह की विषाक्लता से कमी आ जाती है।

15. उचित जल निकास वाली भूमि प्रत्येक प्रकार की फसलों की खेती के लिये उपयुक्त होती है जबकि गीली या नम मिट्टी में सीमित फसलें जो नम जड़ों को सहन कर सकती है, की ही खेती की जा सकती है। ज्ञात है कि मात्र थोडे समय की घुटन से ही बहुत सी फसलों की पौंध मर जाती है।

16. उचित जल निकास पौध जड़ों को अधिक गहराई तल प्रवेश करने के लिये प्रोत्साहित करता है। ऐसा होने से पौधों का पोषण क्षेत्र बढ़ जाने के कारण फसल की वृद्धि पौधों में सूखा सहन करने की क्षमता में भी वृद्धि हो जाती है।

17. जल निकास होने से मृदा में अन्तःस्वयंदन बढ़ जाने के कारण जल प्रवाह में कमी आ जाती है, फलस्वरुप मृदा कटाव कम हो जाता है। अतिरिक्त जल रहित भूमि मकान तथा सड़क को स्थिरता प्रदान करती है।

18. अतिरिक्त जल रहित भूमि में घरों से मल निष्कासन तथा स्वच्छता प्रदान इत्यादि की समस्या कम हो जाती है।

19. उचित जल निकास से मच्छरों तथा बीमारी फैलाने वाले कीड़ों-मकोड़ों इत्यादि की समस्या कम हो जाती है।

20. अतिरिक्त जल रहित भूमि का व्यवसायिक मूल्य अधिक होता है।

21. क्षारीय मृदा सुधार के लिये उचित जल निकास आवश्यक होता है।

हानिकारक परिणाम

उचित जल निकास का प्रावधान बनाने से पूर्व भूमि सहत पर वर्तमान विभिन्न प्रकार की जल मग्नता का वर्गीकरण आवश्यक होता है और उसमें आर्द्र भूमि तथा नम मिट्टी के मध्य एक स्पष्ट भेद रेखा का होना और भी अधिक आवश्यक होता है। आर्द भूमि का जल निकास करके उसमें उच्चतर भूमि वाली अधिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण फसलों की ही खेती की जा सकती है अन्यथा इसका प्रयोग पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण फसलों पशु पक्षी के प्राकृतिक निवास के लिये करना चाहिये। जब नम मिट्टी की जल निकास करके उसमें लगभग सभी प्रकार की फसलों को उगाकर पैदावार में वृद्धि की जा सकती हैं। **बहुत सी नम मिट्टी ऐसी है जिनका जल निकास नहीं करना चाहिये जैसे:-**

1. पर्यावरण की दृष्टि से उपलब्ध जलीय जीव, इनके द्वारा आय तथा उगाये जाने वाली फसल की आय में अन्तर, उपलब्ध सामाजिक अधिकार एवं पर्यावरण में इनका योगदान इत्यादि जो फसल उगाने की अनुमति नहीं देते है।
2. आस पास के क्षेत्रों में भूमिगत जल स्तर जिसके कारण नाला, कुआं, तालाब, झरना एवं बावड़ी इत्यादि में लगातार जल प्रवाह होता रहता है।
3. रेतीली मिट्टी का जल निकास कनरे से भूमिगत जल स्तर में कमी आ जाती हैं और फसल उगाना नामुमकिन हो जाता है।
4. नम मिट्टी जिसमें लोहा तथा गन्धक युक्त खनिज की मात्रा ज्यादा होती हैं, उसका जल निकास करने से पी.एच. मान बहुत कम हो जाता है जो फसल उगाने के लिये उपयुक्त नहीं होता है।
5. जल निकास करने से मिट्टी मे उपलब्ध पोषक तत्वों का ह्रास हो जाता है जिससे मृदा उर्वरता में कमी आ जाती है। अतः निम्न उर्वरता स्तर पर फसल की पैदावार, उसमें प्रयोग किये गये उर्वरकों की मात्रा एवं उपलब्धता, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण इत्यादि का आकंलन आवश्यक हो जाता हैं।

जल निकास प्रणाली

1. सतही जल निकास

सतही जल निकास तकनीक के अंतर्गत खुली नालियों का निर्माण किया जाता है जिसमें अतिरिक्त जल इक्ट्ठा होकर क्षेत्र विशेष से बाहर निकल जाता है और साथ ही भूमि सतह को समतल करते हुये पर्याप्त ढलान दिया जाता हैं जिससे जल प्रवाह आसानी से हो सकें। इस तकनीक का प्रयोग सभी प्रकार की मिट्टी में किया जा सकता है। सामान्य रुप से लगभग समतल, धीमी जल प्रवेश, उथली जमीन या चिकनी मिट्टी थाल के आकार वाली सतह जो ऊंचाई वाले क्षेत्र का जल प्रवाह इक्ट्ठा करता है और अतिरिक्त जल निकास की आवश्यकता वाली भूमि में इस तकनीक का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस विधि में मुख्ययता खुली नाली/खाई, छोटी छोटी क्यारियों द्वारा जल निकास तथा समतलीकरण इत्यादि विधियों के इस्तेमाल किया जा सकता है।

2. अवमृदा/भूमिगत जल निकास

अवमृदा जल निकास के लिये भूमि के अन्दर छिद्रयुक्त प्लास्टिक या टाइल द्वारा निर्मित पाइप/नाली को निश्चित ढलान पर दफना दिया जाता है जिसके द्वारा अतिरिक्त जल का रिवाव होकर नाली के माध्यम से निकास होता रहता है।

इस जल निकास तकनीक में आधारभूत निवेश की अत्यधिक मात्रा होने के कारण निवेशक के पूर्व आर्थिक या अर्थव्यस्था का आकंलन आवश्यक होता है। मृदा संरचना एवं गठन के आधार पर ही जल निकास तकनीक का चयन करना चाहिये। इस विधि में मुख्यतया टाइल निकास, टियूब निकास, सुरंग निकास, गड्ढा एवं पम्प निकास तथा विशेष प्रकार से निर्मित सीधा-खड़ा आधारभूत ढांचा जैसे राहत कुआँ, पम्प कुआ और उल्टा कुआं इत्यादि का इस्तेमाल किया जाता है।

वाराणसी में 2030 तक उत्तर प्रदेश बनेगा वैश्विक फूड बास्केट : सीएम योग

वाराणसी। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने अंतरराष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (आइसार्क) में कृषि विभाग की 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर आयोजित डायरेक्ट सीडेड राइस (डीएसआर) कॉन्क्लेव को संबोधित क्रिया।

उन्होंने कहा कि देश के खाद्यान्न उत्पादन में अकेले उत्तर प्रदेश का 21 प्रतिशत योगदान है। मुख्यमंत्री ने इस अवसर पर एक ऐतिहासिक सत्र की अध्यक्षता की, जिसमें 2030 तक उत्तर प्रदेश को ग्लोबल फूड बैसकेट बनाने के लक्ष्य पर विचार विमर्श किया गया। मुख्यमंत्री ने अपने संबोधन में कहा, पिछले 11 वर्षो में प्रदेश की कृषि प्रणाली में व्यापक एवं क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में सॉयल हेल्थ कार्ड, इंश्योरेंस, एमएसपी जैसी सुविधाएँ मिल रही हैं। इसके साथ ही, 10 करोड़ किसानों को किसान सम्मान निधि योजना का लाभ प्रति वर्ष मिलता है। उत्तर प्रदेश अपने सीमित क्षेत्रफल (11%) के बावजूद राष्ट्रीय खाद्य उत्पादन में 21% योगदान देकर कृषि क्षेत्र में अग्रणी राज्य बना हुआ है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

रबी फसलों में बीजोपचार

✍ **आरती** (शोध छात्रा) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी
✍ **धन्य कुमार** (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी
✍ **डॉ. मनीष कुमार** (शिक्षण सहायक) बीज प्रौद्योगिकी विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

भारत की कृषि व्यवस्था मुख्यतः दो प्रमुख मौसमों पर आधारित हैकृखरीफ और रबी। रबी फसलें जैसे गेहूँ, जौ, चना, मसूर, मटर, सरसों, अलसी आदि देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन फसलों की सफलता काफी हद तक बीज की गुणवत्ता और उसकी प्रारंभिक अवस्था में सुरक्षा पर निर्भर करती है।

बीजोपचार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बुवाई से पहले बीजों को रासायनिक, जैविक या पोषक तत्वों के माध्यम से उपचारित किया जाता है ताकि बीज अंकुरण क्षमता बनाए रखे, रोग-कीटों से सुरक्षित रहे और फसल का उत्पादन अधिक हो।

बीजोपचार की आवश्यकता क्यों?

बीज जनित रोगों की रोकथाम

बीजों में छिपे रोगजनक फफूंद व बैक्टीरिया अंकुरण के समय पौध को प्रभावित करते हैं।

अंकुरण प्रतिशत बढ़ाना

उपचारित बीज स्वस्थ और समान रूप से अंकुरित होते हैं।

अंकुर अवस्था में पौधे की सुरक्षा

दीमक, भूरा धब्बा, जड़ गलन आदि समस्याओं से बचाव।

लागत में कमी

खेत में बार-बार दवा छिड़काव करने की आवश्यकता कम हो जाती है।

जैविक उर्वरकों का लाभ

दलहनी फसलों में राइजोबियम व पीएसबी बीजोपचार से मिट्टी की उर्वरता सुधरती है।

बीजोपचार की प्रमुख विधियां

1. रासायनिक बीजोपचार

फफूंदनाशी, कीटनाशी या मिश्रित दवाओं से बीज की कोटिंग की जाती है। यह बीज जनित व मृदा जनित रोगों की रोकथाम करता है।

2. जैविक बीजोपचार

ट्राइकोडर्मा, पेसिलोमाइसिस, राइजोबियम, पीएसबी आदि जैविक एजेंट। ये रोगों को दबाते हैं और पौधों की प्रारम्भिक वृद्धि में मदद करते हैं।

3. सूक्ष्म पोषक तत्व आधारित बीजोपचार

मोलिब्डेनम, जिंक सल्फेट, बोरोन आदि का उपयोग दलहनी व तिलहनी फसलों में लाभकारी है।

4. कीटनाशी बीजोपचार

इमिडाक्लोप्रिड, क्लोरोपायरीफॉस आदि का उपयोग बीज व अंकुर को दीमक और भंडारण कीटों से बचाता है।

फसलवार बीजोपचार की अनुशंसा

1. गेहूँ "Wheat"

प्रमुख रोगः करनाल बंट, ढीला व कठोर कर्ण रोग, जड़ गलन।

अनुशंसित उपचार

* टेबुकोनाजोल 1.0 ग्राम/किग्रा बीज
* कार्बेन्डाजिम+थिरम (1:1 अनुपात में) 2.5 ग्राम/किग्रा बीज
* दीमक से बचाव हेतु इमिडाक्लोप्रिड 0.75 मि.ली./किग्रा बीज

2. जौ (ठंतसमल)

प्रमुख रोगः स्ट्राइप, स्मट रोग।

उपचार

कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किग्रा बीज
टेबुकोनाजोल 1 ग्राम/किग्रा बीज

3. चना "Chickpea"

प्रमुख रोगः कॉलर रॉट, फ्यूजेरियम विल्ट।

उपचार

कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किग्रा बीज
थिरम 2.5 ग्राम/किग्रा बीज
जैविक उपचारः ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम/किग्रा बीज

4. मसूर "Lentil"

रोगः जड़ गलन, विल्ट।

उपचार

* थिरम 2.5 ग्राम/किग्रा बीज
* कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किग्रा बीज

5. मटर "Pea"

रोगः पाउडरी मिल्ड्यू, जड़ गलन।

उपचार

* थिरम 3 ग्राम/किग्रा बीज
* कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किग्रा बीज

जैविकः ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम/किग्रा बीज
* राइजोबियम इनोकुलेंट 25 ग्राम/किग्रा बीज

6. सरसों "Mustard"

रोगः सफेद जंग, अल्टरनेरिया ब्लाइट।
उपचारः
थिरम 3 ग्राम/किग्रा बीज
मेटालैक्सिल 2 ग्राम/किग्रा बीज करें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

✍डॉ. ब्रज किशोर, डॉ. माता प्रसाद
✍डॉ. कौशल कुमार एवं लक्ष्मीकांत
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, अमरोहा
उत्तर प्रदेश-244236

शरद ऋतु की सब्जियों की वैज्ञानिक खेती के सफल उत्पादन के प्रमुख तरीके

परिचय

सब्जियाँ मानव आहार में पोषण संबंधी आवश्यकताओं के लिए महत्वपूर्ण पूरक हैं क्योंकि सब्जियाँ संतुलित आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और विटामिन ए और सी, फाइबर, फोलेट और पोटेशियम जैसे पोषक तत्व प्रदान करती हैं जो अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं।

चीन के बाद भारत दुनिया में सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। अपर्याप्त सुविधाओं के कारण भारी मात्रा में उपज बर्बाद हो जाती है। सब्जियों की खेती भारत की जीडीपी और आर्थिक स्वास्थ्य में कई तरह से योगदान दे सकती है। यह किसानों को नियमित आय प्रदान कर सकता है, नौकरियाँ पैदा कर सकता है और कृषि में विविधता ला सकता है। 2021 में, फलों और सब्जियों ने अर्थव्यवस्था में 3.9 ट्रिलियन भारतीय रुपये से अधिक का योगदान दिया, और सब्जी की खेती अन्य कृषि क्षेत्रों की तुलना में और भी अधिक लाभदायक होने की क्षमता रखती है।

सब्जियों का संरक्षण क्योंकि देश में कुल उपज का केवल 1.5 से 2% ही संरधित किया जाता है। इस प्रकार सब्जी संरक्षण खाद्य उद्योग के प्रमुख स्तंभों में से एक है। खाद्य संरक्षण एवं प्रसंस्करण उद्योग अब विलासिता की बजाय एक आवश्यकता बन गया है। अधिकांश सब्जियाँ कम अवधि की फसलें होने के कारण सघन फसल प्रणाली में बहुत अच्छी तरह से फिट बैठती हैं और किसानों को बहुत अधिक आर्थिक लाभ के साथ बहुत अच्छी उपज देने में सक्षम हैं। भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख सब्जियाँ हैंरू आलू, प्याज, टमाटर, फूलगोभी, पत्तागोभी, बीन्स, बैंगन, खीरा और खीरा, फ्रोजन मटर, लहसुन और भिंडी।

रबी की फसले और शीत ऋतु (शीतकालीन) की फसले भी कहा जाता है। इन्हें अक्टूबर या नवंबर में उगाया जाता है और फसलों की कटाई वसंत ऋतु में की जाती है। क्योंकि, सर्दी के मौसम की सब्जियों के अंकुरण के लिए गर्म परिस्थितियों और विकास के लिए ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है। इन फसलों को बार-बार सिंचाई की आवश्यकता होती है क्योंकि ये शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाती हैं।

शरद ऋतु में उगई जाने वाली कुछ प्रमुख सब्जियों के नाम जैसे की मटर, प्याज, आलू, टमाटर, शिमला मिर्च, मिर्च, पालक, शलजम, मुली, गाजर, गोभी, राजमा और ब्रोकली।

भूमि का चुनाव.

प्रायः दोमट से भरी दोमट चिकनी भूमियों में सब्जियों को उगाया जा सकता है। ऊसरीली भूमियो में भी इसकी खेती सम्भव है। अधिकांश सब्जियों की फसलें 6.0 से 7.5 पीएच रेंज वाली खनिज मिट्टी में अच्छी तरह से विकसित होती हैं। मिट्टी की अम्लता को ठीक करने के लिए, जमीन चूना पत्थर या अन्य चूना सामग्री को मिट्टी में डाला जाता है।

नर्सरी तैयार करना और रोपाई

टमाटर, बैंगन, मिर्च और शिमला मिर्च जैसी सब्जियाँ रोपाई के लिए अच्छी प्रतिक्रिया देती हैं और इन्हें मुख्य खेत में रोपने से पहले नर्सरी में बोया जाता है। नर्सरी की जमीन को अच्छी तरह से जोता जाता है और प्रति 20 वर्ग मीटर में 5 टन गोबर की खाद डाली जाती है। 1.20-1.50 मीटर चौड़ी नर्सरी क्यारियाँ तैयार की जाती हैं और उन्हें बाकी खेत से लगभग 15 सेमी ऊँचा और बाहर की ओर ढलान वाला होना चाहिए। मिट्टी जनित संक्रमणों से बचने के लिए बीजों को 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से कैप्टान व थाइरम से उपचारित करना चाहिए। बीजों को क्यारियों में बिल्कुल नहीं बिखेरना चाहिए, बल्कि 5 सेमी की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए।

एक हेक्टेयर टमाटर, बैंगन और मिर्च उगाने के लिए क्रमशः 125 वर्ग मीटर, 67 वर्ग मीटर और 40 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्र की आवश्यकता होती है। बेहतर अंकुरण सुनिश्चित करने के लिए बीजों को मिट्टी से ढक देना चाहिए और पानी का छिड़काव करना चाहिए। टमाटर, बैंगन और मिर्च के पौधों की पाले वाली परिस्थितियों में अच्छी देखभाल की जानी चाहिए और पॉलीथीन शीट से सुरक्षा आवश्यक है। पौधों की उचित वृद्धि और विकास के लिए नर्सरी क्यारियों में नियमित रूप से पानी देना चाहिए।

बुवाई का समय

सब्जियों की बुवाई का समय मिट्टी और मौसम की स्थिति, सब्जी की किस्म और बाजार में मांग पर निर्भर करता है। अन्य सभी फसलों की तरह, अगर समय पर बुवाई न की जाए, तो सब्जियां भी अपनी क्षमता के अनुसार उपज नहीं दे पातीं।

बीज दर

किसी विशेष क्षेत्र (एकड़ या हेक्टेयर) में बुवाई के लिए आवश्यक बीज की मात्रा को बीज दर कहते हैं। बीज दर कई कारकों पर निर्भर करती है जैसे बीज की जीवनक्षमता, पौधे की शक्ति, मिट्टी की स्थिति आदि। लेकिन बीज दर निर्धारित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक खेत में रोपाई की दूरी है।

तालिका-1 इस अध्याय में शामिल महत्वपूर्ण सब्जियों की बीज दर और अंतराल (सेमी) इस प्रकार है-

क्रं.	सब्जी	बीज दर (किग्रा प्रति हे.)	अंतराल (सेमी)
1	बैंगन	0.5	60 × 60
2	टमाटर	0.5-0.6	60 × 45
3	मिर्च	1.5	45 × 45
4	मटर	60	15 × 10
5	पालक	15-20	20 × 5
6	प्याज	8-10	12 ×15
7	आलू	200-250	20 × 30
8	गोभी वर्गीय फसलें	0.4-0.6	45 × 60

अंतराल

प्रत्येक पौधे को अपनी पूरी क्षमता से विकसित होने के लिए अपने आस-पास एक विशिष्ट स्थान की आवश्यकता होती है। यह स्थान मिट्टी की स्थिति, पौधे की शक्ति, पौधे की वृद्धि की आदत, पौधों के बीच प्रतिस्पर्धा आदि के अनुसार भिन्न होता है। इस प्रकार अंतराल से तात्पर्य फसल की पंक्तियों के बीच (अंतर-पंक्ति) और पंक्तियों के भीतर पौधों के बीच की दूरी (अंतर-पंक्ति अंतराल) से है।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार बगीचों में अवांछित पौधे होते हैं जो फसल के पौधों के लिए आवश्यक नमी, पोषक तत्व, सूर्य का प्रकाश और उगने की जगह को कम कर देते हैं। इनकी उपस्थिति फसल की वृद्धि, गुणवत्ता और उपज को कम कर सकती है। इसके अलावा, ये कटाई को मुश्किल बना सकते हैं। खरपतवार बीमारियों, कीड़ों और जानवरों (कृंतक, बॉक्स कछुए, साँप, आदि) को भी आश्रय प्रदान करते हैं। बगीचे के खरपतवारों को नियंत्रित करना मुश्किल होता है क्योंकि ये तेजी से बढ़ते हैं, प्रचुर मात्रा में बीज पैदा करते हैं, और वानस्पतिक संरचनाओं और बीजों द्वारा तेजी से फैलते हैं। खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए कई तरीकों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इनमें संवर्धित, यांत्रिक और रासायनिक तरीके शामिल हैं।

हरित जीडीपी: सतत विकास की एक आर्थिक अवधारणा

शिवराज कुमावत विद्यावाचस्पति छात्र, (कृषि अर्थशास्त्र), श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर जयपुर

डॉ. पी.एस. शेखावत, डॉ. शीला खर्कवाल

डॉ. सुभिता कुमावत, सोनू जैन सहायक आचार्य (कृषि अर्थशास्त्र), श्री कर्ण नरेंद्र कृषि वि.वि., जोबनेर जयपुर

वैश्विक पर्यावरणीय समस्याएं लगातार विकराल होती जा रही हैं। सतह का बढ़ता तापमान, पिघलते ग्लेशियर और बढ़ता समुद्र स्तर हमें पर्यावरण संरक्षण की तात्कालिकता और महत्व की ओर आगाह करते हैं। हालाँकि, पर्यावरणीय मुद्दों को मापने वाले संकेतक बहुत कम हैं और व्यापक रूप से उपयोग नहीं किए जाते हैं। पर्यावरण संरक्षण की अपनी गति बनाए रखने के लिए देशों को निरंतर सहायता के अलावा किसी और चीज़ पर निर्भर रहना होगा। अधिकांश देश राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य को मापने हेतु सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) संकेतक का उपयोग करते हैं। हालांकि, यह संकेतक केवल वर्तमान उत्पादन संबंधों और आर्थिक विकास पर विचार करता है, लेकिन पर्यावरण पर इसके प्रभाव और देश की सतत विकास की क्षमता पर विचार नहीं करता। परिणाम स्वरूप, राष्ट्रों के उचित आर्थिक स्वास्थ्य का मूल्यांकन करने के लिए इस संकेतक में सुधार की आवश्यकता है। हरित जीडीपी (जीजीडीपी) इस दोष को बहुत अच्छी तरह से दूर कर सकता है। यदि देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं का मूल्यांकन और जीजीडीपी से तुलना करने के तरीके में बदलाव करें, तो दुनिया का जलवायु संकट काफी हद तक कम हो जाएगा।

आर्थिक विकास और वांछनीय जीवन स्तर के संकेतक होने के कारण मानक जीडीपी माप की सीमाएँ हैं। मानक जीडीपी केवल कुल आर्थिक उत्पादन को मापता है और आर्थिक उत्पादन के कारण उत्पन्न होने वाली संपत्ति और परिसंपत्तियों की पहचान करने का कोई साधन नहीं रखता है। सामान्य जीडीपी के पास यह जानने का भी कोई तरीका नहीं है कि किसी देश में सृजित आय का स्तर टिकाऊ होगा या नहीं। इस सीमा को पार करने के लिए हरित जीडीपी की आवश्यकता है। इस संबंध में हरित जीडीपी एक उपयुक्त विकल्प होगा। हरित जीडीपी एक वैकल्पिक आर्थिक संकेतक है जो आर्थिक विकास की पर्यावरणीय लागतों को एकीकृत करता है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों की कमी और पारिस्थितिक क्षरण को शामिल किया जाता है। पारंपरिक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के विपरीत, जो केवल आर्थिक उत्पादन पर केंद्रित होता है, हरित जीडीपी प्राकृतिक संसाधनों की कमी, पर्यावरणीय क्षरण और सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखता है। पर्यावरण के प्रति जागरूक दृष्टिकोण से उत्पादन, उपभोग और निवेश को पुनर्परिभाषित करने से सतत विकास और दीर्घकालिक लचीलेपन को बढ़ावा मिलता है। भारत में हरित जीडीपी को आधिकारिक तौर पर मापा या रिपोर्ट नहीं किया जाता है, लेकिन विभिन्न शोधकर्ताओं और संस्थानों द्वारा इसका अनुमान लगाने के कुछ प्रयास किए गए हैं। अक्टूबर 2022 में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित एक शोधपत्र के अनुसार, शोधकर्ताओं ने 2019 हेतु भारत की हरित जीडीपी लगभग 167 ट्रिलियन रुपये होने का अनुमान लगाया है। इसका अर्थ है कि उसी वर्ष के 185.8 ट्रिलियन रुपये के पारंपरिक जीडीपी से लगभग 10% की कमी।

हरित जीडीपी और हरित राष्ट्रीय खाता : हरित जीडीपी और हरित राष्ट्रीय खाता ऐसी अवधारणाएँ हैं जो पर्यावरणीय लागतों और लाभों को ध्यान में रखते हुए किसी देश के आर्थिक प्रदर्शन को मापने का प्रयास करती हैं।

हरित जीडीपी : हरित जीडीपी एक संकेतक है जो किसी देश के पारंपरिक जीडीपी से प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास और पर्यावरणीय क्षरण की लागत को घटाता है। इसे पर्यावरणीय रूप से समायोजित घरेलू उत्पाद भी कहा जाता है। हरित जीडीपी यह दर्शा सकता है कि किसी देश का आर्थिक विकास कितना टिकाऊ है और यह उसके लोगों की भलाई को कैसे प्रभावित करता है।

हरित राष्ट्रीय खाता : हरित राष्ट्रीय खाता एक ऐसा ढाँचा है जो पर्यावरणीय विचारों को राष्ट्रीय लेखांकन ढाँचों में एकीकृत करता है। इसका उद्देश्य आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी पर्यावरणीय लागतों और लाभों को मापना और उनका लेखा-जोखा रखना है। हरित लेखांकन विधियाँ प्राकृतिक संसाधनों के मूल्य, प्रदूषण और पर्यावरणीय क्षरण की लागतों और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के लाभों को मापने का प्रयास करती हैं।

हरित जीडीपी का महत्व

1. **पर्यावरणीय मूल्यांकन:** हरित जीडीपी में प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन शामिल होता है, जो पारंपरिक जीडीपी गणनाओं में आमतौर पर बाह्य कारक होते हैं। इन पर्यावरणीय कारकों के आर्थिक मूल्य का परिमाणीकरण करके, यह आर्थिक गतिविधियों की वास्तविक लागतों और लाभों का अधिक सटीक माप प्रदान करता है।

2. **स्थायित्व :** हरित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) आर्थिक आकलन में पर्यावरणीय कारकों पर स्पष्ट रूप से विचार करके सतत विकास लक्ष्यों की अवधारणा के अनुरूप है। यह नीति निर्माताओं को आर्थिक विकास और पर्यावरणीय स्थायित्व के बीच के अंतर को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है, जिससे अधिक सूचित नीतियों और रणनीतियों के निर्माण में सुविधा होती है।

3. **नीतिगत प्रासंगिकता :** पर्यावरणीय आयाम सहित आर्थिक प्रदर्शन की एक व्यापक तस्वीर प्रदान करके, हरित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) नीति निर्माताओं को संसाधनों को प्रभावी ढंग से प्राथमिकता देने और आवंटित करने में मदद करता है। यह उन क्षेत्रों और गतिविधियों की पहचान करने में सक्षम बनाता है जिनका पर्यावरणीय प्रभाव महत्वपूर्ण है, और सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु लक्षित हस्तक्षेपों और विनियमों का मार्गदर्शन करता है।

4. **संसाधन प्रबंधन :** हरित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास को उजागर करता है और उनके सतत प्रबंधन को प्रोत्साहित करता है। संसाधनों के आर्थिक मूल्य को पहचानकर, यह उनके संरक्षण और कुशल उपयोग को बढ़ावा देता है, जिससे संसाधन आवंटन में सुधार होता है और पर्यावरणीय क्षरण कम होता है।

हरित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) को लागू करने में चुनौतियाँ

1. **डेटा उपलब्धता और विश्वसनीयता:** पर्यावरणीय लागतों, लाभों और प्राकृतिक संसाधनों के मूल्य पर अविश्वसनीय डेटा के कारण हरित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की गणना करना कठिन है। आकलन में धारणाएँ और व्यक्तिपरक निर्णय शामिल होते हैं, जो विश्वसनीयता और तुलनात्मकता को प्रभावित करते हैं।

2. **मूल्य निर्धारण :** पर्यावरणीय वस्तुओं और सेवाओं का मौद्रिक रूप में मूल्यांकन एक विवादास्पद मुद्दा है। आलोचकों का तर्क है कि पर्यावरण के कुछ पहलुओं, जैसे जैव विविधता या सांस्कृतिक विरासत, का आंतरिक मूल्य होता है जिसे आर्थिक मूल्यांकन विधियों द्वारा पर्याप्त रूप से नहीं समझा जा सकता। पर्यावरण को आर्थिक मूल्य प्रदान करने की प्रक्रिया को प्रकृति का अति-सरलीकरण और वस्तुकरण माना जा सकता है।

3. **जटिलता और संकेतक:** हरित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की गणना करना एक कठिन संकेतक है क्योंकि इसमें सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय कारक शामिल होते हैं। इन कारकों को संयोजित करने का कोई सर्वमान्य तरीका नहीं है, और सही संकेतक चुनना चुनौतीपूर्ण है।

4. **नीति कार्यान्वयन और समझौते :** हरित जीडीपी उपयोगी है, लेकिन इसे नीतियों में बदलना कठिन हो सकता है। नीतियों को कारगर बनाने के लिए, हमें सहयोग, राजनीतिक समर्थन और बाधाओं को दूर करने की आवश्यकता है। साथ ही, आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण में संतुलन बनाना मुश्किल है और यह स्थिति के अनुसार बदलता रहता है, इसलिए केवल हरित जीडीपी के आधार पर सार्वभौमिक नीतियाँ बनाना कठिन है।

हरित सकल घरेलू उत्पाद के भविष्य के पहलू: हरित जीडीपी एक परिवर्तनकारी उपकरण है जो आर्थिक विकास को पारिस्थितिक संरक्षण के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। पर्यावरणीय कारकों को आर्थिक उपायों में एकीकृत करने से स्थायी प्रथाओं को बढ़ावा मिलता है, सूचित नीति-निर्माण को समर्थन मिलता है, और मूल्यांकन एवं लचीलेपन की चुनौतियों का समाधान करते हुए वैश्विक स्थिरता लक्ष्यों को आगे बढ़ाया जाता है। **हरित जीडीपी के भविष्य के पहलुओं की व्याख्या नीचे की गई है -**

1. एक सामान्य ढाँचे और कार्यप्रणाली का विकास और उसे अपनाना रू सर्वोत्तम उपलब्ध वैज्ञानिक और आर्थिक ज्ञान के आधार पर पर्यावरणीय लागतों और लाभों को मापने और उनका मूल्यांकन करने के लिए। हरित जीडीपी कार्यप्रणाली का परीक्षण और परिशोधन करने के लिए पायलट परियोजनाएँ और केस स्टडी आयोजित करना।

2. **पर्यावरणीय संकेतकों:** उत्सर्जन, संसाधन उपयोग, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ, आदि पर डेटा की उपलब्धता और गुणवत्ता में सुधार करना और विभिन्न देशों में उनकी एकरूपता और तुलनीयता सुनिश्चित करना।

3. **नीति निर्माताओं :** व्यवसायों और जनता के बीच हरित जीडीपी के बारे में जागरूकता और समझ को बढ़ावा देना, और आर्थिक प्रदर्शन और सामाजिक कल्याण के एक उपाय के रूप में पारंपरिक जीडीपी की तुलना में इसके लाभों पर प्रकाश डालना।

4. **हरित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) नीतियों और पहलों के डिजाइन और कार्यान्वयन में विभिन्न हितधारकों -** सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, नागरिक समाज, शिक्षा जगत और निजी क्षेत्र की भागीदारी और सहयोग को प्रोत्साहित करना।

5 **निम्न-कार्बन अर्थव्यवस्था में परिवर्तन:** संसाधन दक्षता, हरित नवाचारों और स्थायी व्यवसायों के विकास को प्रोत्साहित करता है, जिससे पर्यावरणीय जोखिम कम होते हैं।

6. **मापन में चुनौतियां:** पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं और जैव विविधता को मौद्रिक मूल्य प्रदान करना जटिल बना हुआ है, जिसके लिए मजबूत और विश्वसनीय कार्यप्रणाली की आवश्यकता है।

7. **हरित बाज़ारों में अवसरः** पर्यावरण-अनुकूल उत्पादों की बढ़ती उपभोक्ता माँग नए बाज़ारों को बढ़ावा देती है, जिससे नवाचार और हरित रोज़गार सृजन को बढ़ावा मिलता है।

निष्कर्ष: हरित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) को अपनाना आर्थिक विकास को पर्यावरणीय स्थिरता के साथ संरेखित करने का एक परिवर्तनकारी अवसर प्रस्तुत करता है। राष्ट्रीय लेखांकन में पारिस्थितिक लागतों को शामिल करके, हरित जीडीपी नीति निर्माताओं को उच्च-प्रभाव वाले क्षेत्रों की पहचान करने, स्थायी उद्योगों को बढ़ावा देने और अधिक प्रभावी राजकोषीय नीतियाँ तैयार करने में मदद कर सकता है। पर्यावरणीय लेखांकन उपकरणों और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म में निरंतर नवाचार को बढ़ावा देना। यद्यपि डेटा की कमी, मूल्यांकन संबंधी जटिलताएँ और संस्थागत प्रतिरोध जैसी चुनौतियाँ बनी रहती हैं, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं और तकनीकी प्रगति का लाभ उठाकर इन पर काबू पाया जा सकता है। एक सुव्यवस्थित, चरणबद्ध हरित जीडीपी ढाँचा कॉर्पोरेट स्थिरता को बढ़ाएगा, जन जागरूकता बढ़ाएगा और भारत को सतत आर्थिक विकास में एक वैश्विक नेता के रूप में मजबूती से स्थापित करेगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

आशीष कुमार (सहायक प्रोफेसर) APEX विधि विभाग, जयपुर, APEX UNIVERSITY, (जयपुर राजस्थान)

पर्यावरण कानून और सतत कृषि : पर्यावरण कानूनों का कृषि पद्धतियों और सतत खेती पर प्रभाव

परिचय

आज के समय में, पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। विशेष रूप से, कृषि क्षेत्र में पर्यावरण कानूनों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन कानूनों का उद्देश्य न केवल प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना है, बल्कि कृषि पद्धतियों को भी पर्यावरण के अनुकूल बनाना है। इस लेख में, हम विस्तार से चर्चा करेंगे कि कैसे पर्यावरण कानूनों ने कृषि पद्धतियों को प्रभावित किया है और सतत खेती को बढ़ावा देने में इन कानूनों की भूमिका क्या है। साथ ही, हम यह भी समझेंगे कि इन कानूनों का पालन कैसे किसानों के जीवन और कृषि उत्पादन दोनों को प्रभावित करता है।

पर्यावरण कानूनों का परिचय

पर्यावरण कानून, या कहें तो पर्यावरण संरक्षण के लिए बनाए गए नियम और कानून, विश्वभर में विभिन्न स्तरों पर लागू होते हैं। भारत में, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, जल अधिनियम, वायु प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम, और जैव विविधता संरक्षण अधिनियम जैसे कई कानून मौजूद हैं। इन कानूनों का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, और जैव विविधता का संरक्षण करना है। इन कानूनों का प्रभाव न केवल औद्योगिक क्षेत्रों पर पड़ता है, बल्कि कृषि क्षेत्र पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

कृषि पर पर्यावरण कानूनों का प्रभाव

कृषि क्षेत्र में पर्यावरण कानूनों का प्रभाव कई स्तरों पर देखा जा सकता है। सबसे पहले, इन कानूनों ने कृषि के पारंपरिक तरीकों को बदलने के लिए प्रेरित किया है। उदाहरण के तौर पर, जल संरक्षण कानूनों ने सिंचाई के तरीकों में सुधार किया है। इसके अलावा, प्रदूषण नियंत्रण कानूनों ने रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को नियंत्रित किया है। इससे न केवल मिट्टी और पानी की गुणवत्ता में सुधार हुआ है, बल्कि जैव विविधता भी संरक्षित हुई है।

सतत कृषि के लिए पर्यावरण कानूनों का योगदान

सतत कृषि का अर्थ है ऐसी खेती, जो पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करती हो। इसमें प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, जैव विविधता का संरक्षण, और प्रदूषण का न्यूनतम स्तर शामिल है। पर्यावरण कानूनों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के तौर पर, जैव विविधता संरक्षण अधिनियम ने पारंपरिक और स्थानीय खेती के तरीकों को प्रोत्साहित किया है। साथ ही, जल संरक्षण कानूनों ने सूखे और सूखे क्षेत्रों में जल का संरक्षण सुनिश्चित किया है।

इसके अतिरिक्त, पर्यावरण कानूनों ने किसानों को जागरूक किया है कि वे रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का सीमित उपयोग करें। इससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और जल स्रोत प्रदूषित नहीं होते। इसी तरह, जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए भी कानूनों ने प्रोत्साहन दिया है। इससे न केवल उत्पादन में वृद्धि हुई है, बल्कि पर्यावरण पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

पर्यावरण कानूनों का कृषि पद्धतियों पर प्रभाव

कृषि पद्धतियों में बदलाव लाने के लिए पर्यावरण कानूनों ने कई कदम उठाए हैं। सबसे पहले, इन कानूनों ने रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को नियंत्रित किया है। इससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और जल स्रोत प्रदूषित नहीं होते। इसके अलावा, जल संरक्षण कानूनों ने सिंचाई के पारंपरिक तरीकों को बदलकर अधिक टिकाऊ और प्रभावी तरीके अपनाने को प्रेरित किया है। उदाहरण के तौर पर, ड्रिप इरिगेशन और स्प्रिंकलर सिस्टम को बढ़ावा दिया गया है।

साथ ही, जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए भी कानूनों ने प्रोत्साहन दिया है। इससे किसानों को रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों से बचने का अवसर मिला है। परिणामस्वरूप, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार हुआ है और पर्यावरण पर दबाव कम हुआ है। इसके अतिरिक्त, पर्यावरण कानूनों ने कृषि में नई तकनीकों को अपनाने के लिए भी प्रेरित किया है। जैसे कि, सौर ऊर्जा का उपयोग, बायोगैस प्लांट्स, और प्राकृतिक कीट नियंत्रण प्रणालियों का प्रयोग।

सतत खेती को बढ़ावा देने में कानूनों की भूमिका

सतत खेती को बढ़ावा देने के लिए पर्यावरण कानूनों ने कई पहल की हैं। सबसे पहले, सरकार ने जैविक खेती को प्रोत्साहित करने के लिए सब्सिडी और प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए हैं। इससे किसानों को रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों से बचने का अवसर मिला है। इसके अलावा, जल संरक्षण कानूनों ने सूखे और सूखे क्षेत्रों में जल का संरक्षण सुनिश्चित किया है। इससे जल की उपलब्धता बनी रहती है और सूखे की समस्या कम होती है। इसके अतिरिक्त, जैव विविधता संरक्षण अधिनियम ने पारंपरिक और स्थानीय खेती के तरीकों को संरक्षण दिया है। इससे न केवल जैव विविधता का संरक्षण हुआ है, बल्कि किसानों की आय भी बढ़ी है। साथ ही, पर्यावरण कानूनों ने किसानों को जागरूक किया है कि वे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करें। इससे न केवल पर्यावरण सुरक्षित होता है, बल्कि कृषि उत्पादन भी स्थायी रहता है।

कृषि में पर्यावरण कानूनों का पालन और चुनौतियां

हालांकि, पर्यावरण कानूनों का पालन करना आसान नहीं है। कई बार, इन कानूनों के कारण किसानों को अतिरिक्त लागत और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का सीमित उपयोग करने के लिए किसानों को नई तकनीकों को अपनाना पड़ता है। यह प्रक्रिया शुरू में महंगी और जटिल हो सकती है। इसके अलावा, जागरूकता की कमी भी एक बड़ी चुनौती है। कई किसान इन कानूनों के महत्व को नहीं समझते हैं या फिर उन्हें इनका पालन करने में कठिनाई होती है।

फिर भी, सरकार ने इन चुनौतियों का सामना करने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। जैसे कि, प्रशिक्षण कार्यक्रम, सब्सिडी, और जागरूकता अभियानों के माध्यम से किसानों को शिक्षित किया जा रहा है। इसके साथ ही, स्थानीय समुदायों और किसानों के समूहों को भी इन कानूनों का पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इससे न केवल पर्यावरण संरक्षण संभव हो रहा है, बल्कि कृषि उत्पादन भी स्थायी रूप से बढ़ रहा है।

भविष्य की दिशा

भविष्य में, पर्यावरण कानूनों का प्रभाव और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाएगा। जैसे-जैसे जलवायु परिवर्तन की समस्या बढ़ेगी, वैसे-वैसे सतत कृषि की आवश्यकता भी बढ़ेगी। इसलिए, इन कानूनों को और अधिक मजबूत और प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। साथ ही, किसानों को नई तकनीकों और विधियों के बारे में जागरूक करना भी जरूरी है। इससे न केवल पर्यावरण का संरक्षण होगा, बल्कि कृषि क्षेत्र में स्थिरता भी आएगी। इसके अलावा, सरकार को चाहिए कि वे स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर काम करें। ताकि, पारंपरिक और टिकाऊ खेती के तरीकों को बढ़ावा दिया जा सके। साथ ही, पर्यावरण कानूनों का पालन करने वाले किसानों को प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे, सतत खेती का मॉडल और भी मजबूत होगा। अंततः, पर्यावरण कानून और सतत कृषि का संयोजन ही हमारे भविष्य के लिए सुरक्षित और स्थायी समाधान प्रदान कर सकता है।

निष्कर्ष

अंत में, यह स्पष्ट है कि पर्यावरण कानूनों का कृषि क्षेत्र पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इन कानूनों ने न केवल कृषि पद्धतियों को बदलने में मदद की है, बल्कि सतत खेती को भी प्रोत्साहित किया है। यदि हम इन कानूनों का सही तरीके से पालन करें और उन्हें मजबूत बनाएं, तो हम पर्यावरण संरक्षण और कृषि विकास दोनों में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही, हमें चाहिए कि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करें और टिकाऊ खेती के तरीकों को अपनाएं। तभी हम एक स्वस्थ, सुरक्षित और समृद्ध भविष्य की ओर बढ़ सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

राजस्थान की जलवायु क्षेत्रों में कस्तूरी मेथी की खेती

अनिता सैनी (शोध छात्रा) उद्यान विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर

दीपक कुमार सैनी (फार्म मैनेजर) कृषि महाविद्यालय, कोटपूतली

कस्तूरी मेथी को नागौरी पान मेथी भी कहा जाता है। यह एक सुगंधित और औषधीय पौधा है जिसका उपयोग भारतीय व्यंजनों और आयुर्वेदिक चिकित्सा में किया जाता है। इसकी पत्तियों में खास प्रकार की सुगंध होती है, जो इसे मसाले और औषधि के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण बनाती है। इसकी खेती मुख्य रूप से पत्तियों के लिए की जाती है। हरी और सूखी पत्तियां सब्जी बनाने, स्वाद बढ़ाने और मसाले के रूप में उपयोग की जाती हैं। स्वाद के साथ-साथ इसमें कई औषधीय गुण भी मौजूद होते हैं। इसमें पाए जाने वाले औषधीय गुण पाचन से जुड़ी समस्याओं को ठीक कर सकते हैं और मधुमेह को नियंत्रित कर सकते हैं। नागौरी पान मेथी शीतल, मूत्रवर्धक, पाचन-वर्धक, वातनाशक और पोषक होती है। नागौरी पान मेथी की खेती किसानों के लिए एक लाभकारी विकल्प बनती जा रही है, क्योंकि यह कम समय में उगने वाली फसल है और इसकी बाजार में मांग भी लगातार बढ़ रही है। इसका शत-प्रतिशत उत्पादन राजस्थान में होता है। राजस्थान में इसकी खेती मुख्यतः नागौर, बीकानेर और जोधपुर जिलों में की जाती है। नागौर जिला पान मेथी का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है।

जलवायु और मिट्टी: कस्तूरी मेथी की उन्नत खेती के लिए ठंडी और शुष्क जलवायु सबसे उपयुक्त होती है। यह फसल सर्दियों में अच्छी तरह उगती है और इसके लिए हल्की से मध्यम बलुई दोमट मिट्टी सबसे बेहतर मानी जाती है। मिट्टी की अच्छी जलनिकासी और चभ् स्तर 6.0 से 7.0 के बीच होना चाहिए। यह फसल अधिक उर्वरक और सिंचाई की आवश्यकता नहीं रखती, लेकिन उचित देखभाल से पैदावार को बढ़ाया जा सकता है।

उन्नतशील प्रजातियां:

1. **पूसा कसूरी:** यह किस्म 30 से 35 दिन में प्रथम कटाई के लिए तैयार हो जाती है। औसतन 6 से 7 कटाई में 30-35 क्विंटल सूखी पत्तियों की उपज प्रति हेक्टेयर देती है। यह जड़ गलन और छाछ्चा रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। इससे 5-7 क्विंटल प्रति हे. तक बीज की उपज भी प्राप्त की जा सकती है।

2. **हिसार सोनाली:** यह किस्म हरियाणा, राजस्थान और आसपास के क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह जड़ सड़न और पत्तियों के धब्बे रोग के प्रति मध्यम सहनशील है। यह किस्म 140 से 150 दिनों में पक जाती है और प्रति हेक्टेयर 17 से 20 क्विंटल उपज देती है।

3. **हिसार सुवर्णा:** यह किस्म हरियाणा, राजस्थान और गुजरात के लिए उपयुक्त है। यह पत्तियों और बीजों दोनों हेतु लोकप्रिय है। पत्तियों के झुलसा रोग के प्रति प्रतिरोधी है और औसतन 16 से 20 क्विं. प्रति हे. उपज देती है।

4. **हिसार माध्वी:** यह किस्म सिंचाई और बिना सिंचाई दोनों स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत उपज 19 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

5. **हिसार मुक्ता:** यह डाउनी मिल्ड्यू रोग के प्रति प्रतिरोधी है। उत्तर भारत के सभी उत्पादक राज्यों में बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी पैदावार 20 से 23 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है।

बुवाई का समय: कस्तूरी मेथी की बुवाई का सही समय अक्टूबर से नवंबर के बीच होता है। हरी पत्तियों के लिए बुवाई का सर्वोत्तम समय अक्टूबर का पहला सप्ताह है और बीज के लिए अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवंबर के पहले सप्ताह का समय उपयुक्त होता है। ठंडी जलवायु में इसे पहले भी लगाया जा सकता है, लेकिन बुवाई के समय तापमान 20-25 डिग्री सेल्सियस के आसपास होना चाहिए ताकि बीज का अंकुरण सही तरीके से हो सके।

खेत की तैयारी: जिस खेत की मिट्टी हल्की हो उसमें कम जुताई की आवश्यकता होती है, लेकिन भारी मिट्टी में खेत तैयार करने के लिए अधिक जुताई की जरूरत होती है। खेत को तैयार करने के लिए सबसे पहले मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करें और इसके बाद एक या दो जुताई देसी हल या ट्रैक्टर हैरो चलाकर मिट्टी को भुरभुरा बना लें। साथ ही पाटा लगाकर खेत को समतल भी कर लें, ताकि खेत में नमी कम न हो। अंतिम जुताई करते समय प्रति हेक्टेयर 10 से 15 टन गोबर की सड़ी हुई खाद डालें, जिससे यह खाद मिट्टी में अच्छी तरह मिल जाए।

बीज दर एवं बुवाई विधि: कस्तूरी मेथी की छिटकवाँ विधि से बुवाई करते हैं, तो प्रति हे. 100 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है और यदि कतार विधि से बुवाई की जाए तो 20-25 किलोग्राम प्रति हे. बीज की आवश्यकता पड़ती है। बीजों को बोने से पहले 12-24 घंटे तक पानी में भिगोकर रखा जाता है ताकि अंकुरण तेज हो सके। बुवाई कतारों में की जाती है, जहां कतारों के बीच की दूरी 30-40 सेंटीमीटर और पौधों के बीच की दूरी 10-15 सेंटीमीटर रखी जाती है।

खाद और उर्वरक प्रबंधन: खाद एवं उर्वरकों की मात्रा खेत की मिट्टी का परीक्षण कर निर्धारित करनी चाहिए। नागौरी पान मेथी की खेती के लिए जैविक खाद या वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग करना बेहतर होता है। खेत तैयार करते समय 10-15 टन प्रति हे. गोबर की खाद या वर्मी कम्पोस्ट मिलाई जा सकती है। रासायनिक उर्वरकों हेतु, 40-50 किलोग्राम नाइट्रोजन, 20-30 किलोग्राम फॉस्फोरस और 20 किलोग्राम पोटाश प्रति हे. उपयोग किया जा सकता है। फॉस्फोरस और पोटाश को बुवाई के समय दिया जाता है, जबकि नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय और बाकी की मात्रा 25-30 दिन बाद दी जाती है।

सिंचाई प्रबंधन: सिंचाई की संख्या मिट्टी की संरचना और मौसम पर निर्भर करती है। कस्तूरी मेथी की फसल को सामान्यतः अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती है। बुवाई के तुरंत बाद पहली सिंचाई की जाती है और फिर 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जाती है।

खरपतवार नियंत्रण: खरपतवार की सही समय पर नियंत्रण आवश्यक होता है। प्रारंभिक अवस्था में नागौरी पान मेथी की धीमी वृद्धि एक गंभीर खरपतवार समस्या पैदा करती है। बुवाई के 25-30 दिन बाद पहली निराई-गुड़ाई की जाती है. जिससे पौधे की जड़ों को मजबूती मिलती है और खरपतवार का प्रकोप कम होता है, और दूसरी निराई-गुड़ाई 5-6 सप्ताह बाद करें। यदि खेत में अधिक खरपतवार हो, तो खरपतवार नाशक दवाओं का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु पेंडीमेथालिन 0.75 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के दूसरे दिन छिड़काव करें। छिड़काव के समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

कीट एवं रोग प्रबंधन: कस्तूरी मेथी में रोग और कीट का प्रकोप कम होता है, लेकिन कुछ सामान्य समस्याएं जैसे फफूंद और तना गलन हो सकती हैं। इसके लिए जैविक कीटनाशक और फफूंद नाशक का प्रयोग किया जा सकता है। नीलगिरी तेल या नीम का तेल भी कीटों से सुरक्षा हेतु प्रभावी साबित होता है।

मुख्य कीट:

1. **मोयला:** यह पीले-हरे या काले रंग का सूक्ष्म कीट होता है, जो पौधे के ऊपरी भाग के अंगों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाता है। इसके नियंत्रण के लिए पीले चिपचिपे जाल (दस जाल प्रति हेक्टेयर) लगाएं और रासायनिक नियंत्रण के लिए डाइमिथोएट 30 ई. सी. 1 मि.ली. प्रति लीटर या एसिटामिप्रिड 20 एस.पी. 1 ग्राम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

2. **बरुथी (माइट्स):** माइट्स का प्रकोप कस्तूरी मेथी में मोयला की अपेक्षाकृत कम होता है, इसका प्रकोप नई पत्तियों पर होता है। इसके नियंत्रण के लिए इथियॉन (50 ई.सी.) का 0.02ः घोल बनाकर छिड़काव करें।

मुख्य रोग:

1. **तुलासिता (डाउनी मिल्ड्यू):** इस रोग में पत्तियों के निचले सतह पर फफूंद की वृद्धि होती है और ऊपरी सतह पर पीले धब्बे दिखते हैं। इसके नियंत्रण के लिए मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

2. **छाछ्या:** यह रोग कवक द्वारा होता है, जिसकी प्रारंभिक अवस्था में पौधों की पत्तियों व तनों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है।

कटाई, देखभाल और विपणन: कस्तूरी मेथी की बुवाई के लगभग 1 महीने बाद (जब पौधे 25 सेमी ऊँचाई के हो जाए) हरी पत्तियों की कटाई की जा सकती है। कटाई के बाद पत्तियों को सुखाकर या ताजा ही बेचा जा सकता है। कटाई के बाद पत्तियों को समतल जमीन पर परत बनाकर 2-3 दिन तक सुखाएं। सूखने के बाद पत्तियों को एकत्र कर नमी रहित बोरों में भरकर संग्रहित करें या सूखी जगह में भंडारण करें। अंतिम कटाई के बाद फसल को बीज के लिए छोड़ दें। बीज की फसल अप्रैल के मध्य तक कटाई हेतु तैयार हो जाती है।

पैदावार: कस्तूरी मेथी की पैदावार इसकी कटाई और किस्म पर निर्भर करती है। अगर किसान फसल की पाँच से छह बार कटाई करते हैं, तो प्रति हेक्टेयर 30-35 क्विंटल सूखी पत्तियों की उपज मिल सकती है। सूखी पत्तियों की बाजार में ज्यादा मांग रहती है। साथ ही प्रति हेक्टेयर 6-8 क्विंटल बीज की उपज भी प्राप्त की जा सकती है।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885
मैं. माँ उर्वरक केन्द्र

अमित राय
रसायनिक एवं जैविक खाद बीज एवं दवाई के विक्रेता

पताः भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2023-24

राजस्थान की काचरी पोषक तत्वों के साथ आय का भी स्रोत

युवराज कुमावत यंग प्लांट ब्रीडर, मास्टर्स इन जेनेटिक्स ऐंड प्लांट ब्रीडिंग, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

परिचय: भारतीय उपमहाद्वीप कुकुरबिटेसी परिवार की आनुवंशिक विविधता के लिए एक अविश्वसनीय क्षेत्र है, और जंगली और खेती की जाने वाली प्रजातियों की एक विस्तृत श्रृंखला, फसल-पौधे, जलवायु अनुकूलन उष्णकटिबंधीय से लेकर रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तक मौजूद हैं। भारत की जीनस कुकुमिस और सिट्रुलस प्रजातियों की फसल-पौधे विविधता दुनिया भर में अच्छी तरह से पहचानी जाती है, और देश के उत्तर-पश्चिमी भाग का गर्म, शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्र कुकुमिस तरबूज के गैर-रेगिस्तानी और रेगिस्तानी रूपों का खजाना माना जाता है। देशी और गैर-रेगिस्तानी रूप जैसे काचरी, मटकाचर, काकड़िया, तारककड़ी, आर्य-काकड़ी और वांगा पारंपरिक फसल प्रणालियों की बचाव सब्जियां हैं और निवासियों को पौष्टिक भोजन और आय प्रदान करती हैं, और फल पाक कला और सलाद में उपयोग किए जाते हैं।

उत्पाद और उपयोग

काचरी के परिपक्व और पके फल पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं और ताजा तथा सूखे, दोनों ही रूपों में स्वादिष्ट लगते हैं। फलों को आमतौर पर विभिन्न सब्जियों के व्यंजन बनाने के लिए पकाया जाता है और चटनी, अचार और सलाद बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। कचरी के फलों को बड़े पैमाने पर ऑफ-सीजन उपयोग के लिए सुखाया जाता है और ये करी बनाने की अनूठी सामग्री भी हैं। काचरी के फलों का रेगिस्तानी निवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अवसरों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ताजे फलों का दिवाली पूजा में इस्तेमाल किया जाता है और एक असाधारण उपहार पैक''दिबाड़ी'' रिश्तेदारों को भेजी जाती है जिसमें शुष्क क्षेत्र की पारंपरिक सब्जियों और फलों के सूखे रूप होते हैं जैसे काचरी, खेलरा, फोपलिया, केर, सांगरी, ग्वारफली और कई अन्य। काचरी उत्तर-पश्चिमी भारत के रेगिस्तानी जिलों में ''पंचकुट्टा'' के नाम से प्रसिद्ध स्वादिष्ट सब्जी की सामग्री में से एक है। पके फलों को छीलकर, सुखाकर पूरा या टुकड़ों में काटा जाता है और इन्हें ऐसे ही या पाउडर के रूप में संग्रहित किया जा सकता है। निर्जलित फल 120-150 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बेचे जाते हैं और इनमें तैयार मसाला निर्माण उद्योग में अपार संभावनाएं हैं। काचरी पाउडर का उपयोग मिर्च, धनिया, हल्दी, जीरा, पान-मेथी और अन्य मसालों के साथ विभिन्न स्वादों वाले करी पाउडर बनाने के लिए खट्टापन लाने वाले एजेंट के रूप में किया जाता है। इसके अलावा, काचरी पाउडर का उपयोग काली मिर्च, जीरा, अदरक, चीनी और नमक के साथ ''कच-चूरन'' बनाने के लिए भी किया जाता है और इसका उपयोग आमतौर पर पेट दर्द, मतली, उल्टी और कब्ज को ठीक करने के लिए चिकित्सीय गुणों के लिए किया जाता है।

पोषण मूल्य

विविध काचरी 100 ग्राम वजन के आधार पर ताजे फल में 88.2% पानी, 7.45% कार्बोहाइड्रेट, 0.28% कच्चा प्रोटीन, 1.28 प्रतिशत वसा, 1.21% कच्चा फाइबर, 1.46 प्रतिशत कुल पोषक तत्व, 0.09 मिलीग्राम कैल्शियम, 0.0029 मिलीग्राम फॉस्फोरस, 0.182 मिलीग्राम आयरन, 0.0046 मिलीग्राम तांबा, 0.052 मिलीग्राम जिंक, 0.058 मिलीग्राम मैंगनीज और 29.81 मिलीग्राम विटामिन सी होता है। ताजा फल 47.24 किलो कैलोरी प्रदान करता है। इसी प्रकार, 100 ग्राम भार के आधार पर निर्जलित फलों के एक मिश्रित नमूने में 63.68% कार्बोहाइड्रेट, 2.41% कच्चा प्रोटीन, 11.01% वसा, 10.41% कच्चा फाइबर और 12.51 मिलीग्राम कुल पोषक तत्व, 0.82 मिलीग्राम कैल्शियम, 0.025 मिलीग्राम फास्फोरस, 1.56 मिलीग्राम लोहा, 0.04 मिलीग्राम तांबा, 0.45 मिलीग्राम जस्ता, 0.495 मिलीग्राम मैंगनीज और 17.02 मिलीग्राम विटामिन सी होता है।

उत्पादन तकनीक

सामान्य बुवाई के लिए, जुलाई और फरवरी में मानसून का आगमन क्रमशः वर्षा-शीतकालीन और वसंत-ग्रीष्मकालीन फसलें उगाने का सबसे अच्छा समय है। जनवरी के पहले सप्ताह में संरक्षित कद्दूवर्गीय फसलों की बुवाई के लिए आईसीएआर-सीआईएएच में विकसित सतह-चौनल, मेहराब या तम्बू-प्रकार की संरचना आवरण तकनीक, शीत ऋतु की गंभीरता के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए एक उत्कृष्ट तंत्र है और इसके परिणामस्वरूप फसल की कटाई जल्दी होती है, और जलवायु प्रतिकूलता के तहत उच्च आय प्राप्त होती है। उचित भूखंड का चयन करने के बाद, चिह्नित क्षेत्र को क्रॉस-प्लो किया जाना चाहिए, उसके बाद प्लांकिंग या रोटावेटर का उपयोग किया जाना चाहिए, और बुवाई से 10-15 दिन पहले खेत की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए। काचरी की खेती के लिए लगभग 50-60 सेमी चौड़ी और 20-25 सेमी गहरी नालियाँ (फरो) 2.0 मीटर की दूरी पर बनाई जाती हैं। समान जल वितरण के लिए, फसल-बोई गई नालियाँ वितरण लाइन के एक तरफ 25 मीटर लंबी होनी चाहिए, और 50-50 मीटर का भूखंड उपयुक्त है। खेत की उत्पादकता बनाए रखने के लिए प्रति हेक्टेयर FYM (50q), वर्मी-कम्पोस्ट (5q), DAP (100 किग्रा), SSP (100 किग्रा), यूरिया (50 किग्रा), MOP (50 किग्रा) और नीम-पत्ती पाउडर (10 किग्रा) की मूल मात्रा पर्याप्त है। एक हेक्टेयर में बुवाई के लिए लगभग 1.0 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। बुवाई से पहले, बीज को 2-6 घंटे पानी में भिगोना चाहिए और कवकनाशी से उपचारित भी करना चाहिए। प्रत्येक बुवाई बिंदु पर 2-3 बीज बोए जाते हैं। अच्छे अंकुरण के बाद और जब अंकुर 8-10 सेमी ऊँचा हो जाए या 18-21 दिन का हो जाए, तो प्रत्येक बिंदु पर एक या दो स्वस्थ पौधे रखते हुए, विरलीकरण किया जाता है। फसल को केवल नालियों में बाढ़ विधि द्वारा 7-9 दिनों के अंतराल पर या रेतीली मिट्टी में ड्रिप तकनीक (लेटरल 16 मिमी और 4 लीटर प्रति घंटा इन-लाइन एमिटर) से 3-4 दिनों के अंतराल पर 1.5-2.0 घंटे के लिए सिंचाई करनी चाहिए। बुवाई के 18-21, 30-35 और 45-55 दिन बाद नालियों और बीज क्यारियों में हाथ से गुड़ाई और निराई की जाती है। पौधों की शुरुआती वृद्धि, पुष्पन और फल लगने की अवस्थाओं में 2-3 विभाजित खुराकों में यूरिया (50 किग्रा/हेक्टेयर) के प्रयोग और छोटे कीटों के प्रबंधन के लिए कीटनाशकों के छिड़काव के लिए भी इसी तरह की अनुसूची की सिफारिश की जाती है।

संभावनाएँ और व्यावसायिक उपयोग

भारतीय थार रेगिस्तान में सूखा सहन करने वाली देशी ककड़ी की किस्मों के महत्व, उनके ताजे फलों की उपलब्धता की अवधि (अप्रैल से नवंबर) बढ़ाने की संभावनाओं, पर्याप्त बाजार मांग और विविध उपयोगिताओं को देखते हुए, प्रकृति की लचीली तकनीकों को विकसित करने के लिए आईसीएआर-सीआईएएच, बीकानेर में रणनीतिक शोध कार्य किया गया। विभिन्न उद्देश्यों जैसे पाक कला, सलाद, निर्जलीकरण और मूल्यवर्धन के लिए देशी ककड़ी की विविधता का उपयोग करने के मुख्य उद्देश्य के साथ, यह माना जाता है कि काचरी पर वर्तमान शोध परिणाम इसे एक लाभकारी वस्तु के रूप में बढ़ावा देने में सहायक हो सकता है। निष्कर्षतः, काचरी के बीजों और तकनीक की विकसित किस्में लागत-कुशल हैं और शुष्क क्षेत्रों में संसाधनों की कमी के तहत व्यावसायीकरण के योग्य हैं।

12/2022-23

कृषि के लिए भू-स्थानिक तकनीक निगरानी

✍ **शैफाली तंवर** (विद्यावाचस्पति शोधकर्ता)
उद्यान विज्ञान विभाग

✍ **दीपेंद्र सिंह सारंगदेवोत** विद्यावाचस्पति शोधकर्ता, सश्य विज्ञानं विभाग राजस्थान कृषि महाविद्यालय महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

परिचय

कृषि प्रौद्योगिकी में तेजी से हो रही प्रगति ने फसल स्वास्थ्य की निगरानी, तनाव कारकों की पहचान और उपज का पूर्वानुमान लगाने के लिए रिमोट सेंसिंग (आरएस) को एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में उभारा है। रिमोट सेंसिंग वह प्रक्रिया है जिसमें पृथ्वी की सतह की जानकारी बिना सीधे संपर्क के, आमतौर पर उपग्रह, हवाई यान या मानव रहित हवाई वाहन (यूएवी) आधारित सेंसरों के माध्यम से प्राप्त की जाती है। ये सेंसर वनस्पति द्वारा परावर्तित या उत्सर्जित विद्युत चुंबकीय विकिरण को रिकॉर्ड करते हैं, जिससे समय के साथ फसलों में होने वाले भौतिक और संरचनात्मक परिवर्तनों का विश्लेषण संभव होता है।

आधुनिक कृषि में, फसल तनाव की समय पर पहचान और सटीक उपज पूर्वानुमान संसाधन प्रबंधन और खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है। पारंपरिक क्षेत्र-आधारित निगरानी विधियाँ श्रम-गहन, समय-खपत वाली और सीमित स्थानिक कवरेज वाली होती हैं। इसके विपरीत, रिमोट सेंसिंग वास्तविक समय में, बड़े कृषि क्षेत्रों की गैर-विनाशकारी निगरानी की सुविधा प्रदान करता है, जिससे सूचित निर्णय लेने और सटीक कृषि प्रथाओं को अपनाने में सहायता मिलती है। रिमोट सेंसिंग अध्ययन की जाने वाली वस्तु के साथ प्रत्यक्ष संपर्क में आए बिना उसकी जानकारी एकत्र करने की कला और विज्ञान है।

रिमोट सेंसिंग तकनीकों का अनुप्रयोग

1.फसल उत्पादन का पूर्वानुमान

रिमोट सेंसिंग का उपयोग किसी क्षेत्र में अनुमानित फसल उत्पादन का पूर्वानुमान लगाने में किया जाता है। इससे यह निर्धारित किया जा सकता है कि विशिष्ट परिस्थितियों में कितनी फसल प्राप्त होगी।

2.फसल क्षति और प्रगति का आकलन

फसल की क्षति या उसकी वृद्धि की स्थिति का मूल्यांकन रिमोट सेंसिंग के माध्यम से किया जा सकता है, जिससे यह पता लगाया जा सकता है कि फसल को कितना नुकसान हुआ है और खेत में फसल की क्या स्थिति है।

3.बागवानी और फसल प्रणाली विश्लेषण

बागवानी उद्योग में, रिमोट सेंसिंग तकनीक का उपयोग फूलों की वृद्धि के पैटर्न का विश्लेषण करने और भविष्यवाणी करने के लिए किया जाता है।

4.फसल की पहचान

रिमोट सेंसिंग उन मामलों में उपयोगी सिद्ध हुई है जहाँ फसल की पहचान मुश्किल होती है या वे अनोखी विशेषताओं को दर्शाती हैं। डेटा प्रयोगशाला में विश्लेषण हेतु एकत्र किया जाता है।

5.फसल एकरेज का अनुमान

रिमोट सेंसिंग का उपयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि किसी विशेष फसल को कितने क्षेत्रफल में उगाया गया है। यह प्रक्रिया मैन्युअल रूप से करने पर समय-खपत और कठिन होती है।

6.फसल की स्थिति और तनाव का पता लगाना

प्रत्येक फसल की स्वास्थ्य स्थिति और उस पर तनाव के प्रभाव का आकलन रिमोट सेंसिंग तकनीक से किया जा सकता है।

7.रोपण और कटाई की तिथियों की पहचान

मौसम के पैटर्न और मिट्टी की प्रकृति का अवलोकन कर रोपण और कटाई के उपयुक्त समय की भविष्यवाणी की जा सकती है।

8.फसल उपज मॉडलिंग और अनुमान

यह तकनीक उपज की भविष्यवाणी करने में मदद करती है, जिससे संपूर्ण खेत की अनुमानित उत्पादकता तय की जा सकती है।

9.कीट और रोग संक्रमण की पहचान

रिमोट सेंसिंग तकनीक खेत में कीटों और बीमारियों की पहचान कर उनके नियंत्रण के उपाय सुझाने में सहायता करती है।

10.मिट्टी की नमी का अनुमान

मिट्टी की नमी मापना पारंपरिक रूप से कठिन होता है, लेकिन रिमोट सेंसिंग इसके लिए आवश्यक डेटा प्रदान करता है।

11.सिंचाई की निगरानी और प्रबंधन

मिट्टी की नमी के आधार पर सिंचाई की आवश्यकता तय करने में रिमोट सेंसिंग मदद करता है।

12.मृदा मानचित्रण

मृदा की गुणवत्ता और उपयुक्तता का निर्धारण कर सटीक कृषि के लिए उपयोगी जानकारी प्रदान करता है।

13.सूखा निगरानी

रिमोट सेंसिंग तकनीक का उपयोग वर्षा के पैटर्न और सूखे की प्रवृत्ति की पहचान के लिए किया जाता है।

14.भूमि कवर और गिरावट मानचित्रण

यह तकनीक यह बताने में सहायक होती है कि कौन-से क्षेत्र अब भी उपजाऊ हैं और किन क्षेत्रों में भूमि क्षरण हो चुका है।

15.समस्याग्रस्त मिट्टी की पहचान

रिमोट सेंसिंग तकनीक ऐसी मिट्टी की पहचान करने में मदद करती है जो फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं होती।

फसल तनाव

फसल उत्पादन में तनाव वह स्थिति होती है जो उपज को कम करती है, जबकि वृद्धि संवर्धक उपज बढ़ाने में मदद करते हैं।

1.सूखा निगरानी और मूल्यांकन

फसल विकास के प्रत्येक चरण में उसकी स्थिति की निगरानी आवश्यक होती है ताकि उचित उपचार किए जा सकें। इस हेतु वनस्पति सूचकांक (VI) का उपयोग किया जाता है जो नमी तनाव के प्रति संवेदनशील होता है।

2.मिट्टी की नमी का निर्धारण

माइक्रोवेव रिमोट सेंसिंग उप-मिट्टी नमी मापन के लिए एक प्रभावशाली तकनीक है। इससे सिंचाई योजनाओं को बेहतर बनाया जा सकता है।

3.लवणता तनाव: मिट्टी और सिंचाई जल में लवणता फसल उत्पादकता को प्रभावित कर सकती है। रिमोट सेंसिंग के माध्यम से इन क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है। लवणता से प्रभावित पौधों में तापमान वृद्धि देखी गई है, जिससे तनाव की पहचान संभव होती है।

फसल स्वास्थ्य की निगरानी और प्रबंधन के लिए रिमोट सेंसिंग: रिमोट सेंसिंग एक सशक्त तकनीक है जो फसलों की बायोफिजिकल और जैव-रासायनिक स्थिति की निगरानी करने में सहायक है। वर्णक्रमीय प्रतिक्रियाओं, स्पेक्ट्रल इंडेक्स और मशीन लर्निंग तकनीकों के माध्यम से फसल तनाव की पहचान की जाती है।

1.सौर-प्रेरित क्लोरोफिल प्रतिदीप्ति (SIF)

यह तकनीक फसल की बायोफिजिकल गतिविधियों की जानकारी देती है। SIF एक विद्युत-चुंबकीय सिग्नल होता है जो पौधों द्वारा अवशोषित लेकिन अप्रयुक्त विकिरण से उत्पन्न होता है। यह 650-850 एनएम तरंगदैर्ध्य पर आधारित होता है।

2.कीट और खरपतवार प्रबंधन: एआई और रिमोट सेंसिंग तकनीक मिलकर कीटों और खरपतवारों की पहचान करने में सक्षम हैं। इससे समय पर उपाय किए जा सकते हैं।

3.रोग पहचान: बीमारियां पत्तियों और पौधों के जैव-रासायनिक गुणों को प्रभावित करती हैं, जिससे उनके वर्णक्रमीय परावर्तन में परिवर्तन आता है। मल्टीस्पेक्ट्रल और हाइपरस्पेक्ट्रल इमेजिंग की मदद से इन परिवर्तनों का शीघ्र पता लगाया जा सकता है।

निष्कर्ष

रिमोट सेंसिंग आधुनिक कृषि में एक परिवर्तनकारी तकनीक बन चुकी है, जो फसल स्वास्थ्य की निगरानी, बायोटिक और अजैविक तनावों की पहचान तथा उपज पूर्वानुमान के लिए अत्यंत उपयोगी है। यह तकनीक वास्तविक समय में, व्यापक कृषि क्षेत्रों की निगरानी की सुविधा प्रदान करती है, जिससे सटीक और समयबद्ध निर्णय लेना संभव होता है। रिमोट सेंसिंग का उचित उपयोग संसाधनों की दक्षता, फसल उत्पादकता और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहायक हो सकता है।

योनिका सैनी, देवकी नंदन
अशोक कुमार शर्मा, आर.के. योगी
वी.वी. सिंह भा. कृ. अनु. प.-भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, सेवर, भरतपुर (राजस्थान)

कृषि प्रदूषण नियंत्रण में प्राकृतिक सूक्ष्मजीवों की महत्वपूर्ण भूमिका

परिचय

कृषि क्षेत्र में प्रदूषण न केवल केवलू पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, बल्कि यह भारतीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए भी घातक है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग, मृदा क्षरण, और जल प्रदूषण जैसी समस्याओं के कारण कृषि उत्पादकता में कमी आई है, जो अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ी चिंता का विषय है। हाल ही के आंकड़ों के अनुसार, भारत में प्रति हेक्टेयर औसतन 135 किलोग्राम रासायनिक उर्वरक का उपयोग हुआ है. जो वैश्विक स्तर के औसत से काफी अधिक है। जिसके परिणाम स्वरूप, मिट्टी की गुणवत्ता में कमी, जल संसाधनों का दूषित होना और जैव विविधता में गिरावट जैसी समस्याएं उत्पन्न हुई है। रासायनिक पदार्थों का उपयोग मिट्टी में भारी धातुओं और अन्य विषाक्त पदार्थों की मात्रा को बढ़ा दिया है, जो न केवल फसलों में, बल्कि मानव स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। आकड़ों के अनुसार, भारत के 75% से अधिक जल स्रोतों में रासायनिक अवशेष पाए गए हैं, जो जल जनित बीमारियों का मुख्य कारण है। जिससे प्रत्यक्ष रूप से कृषि में प्रदूषण देखने को मिला है इसके विपरीत, कृषि क्षेत्र में प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है, जो पर्यावरण और आर्थिक दृष्टिकोण से लाभकारी है। ये सूक्ष्मजीव हानिकारक कीटों को प्रभावी ढंग से संक्रमित कर नियंत्रित करने (जैविक कीट नियंत्रण) के साथ, बायोरेमेडिएशन प्रक्रिया, जैव उर्वरक, जैविक अपघटन जैसी प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कीट नियंत्रण के लिए लाभकारी सूक्ष्मजीवों में कवक बैक्टीरिया और वायरस शामिल हैं जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी पानी और हवा जैसे वातावरण में पाए जाते हैं।

भारतीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर प्रदूषण का प्रभाव

भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

कृषि उत्पादकता में कमी: भारत में कृषि क्षेत्र जी डी पी का लगभग 18-18 योगदान देने के साथ-साथ 50% से अधिक आबादी की आजीविका का स्रोत भी है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा की उर्वरता में कमी आई है, जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ है। इससे किसानों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था पर भी दबाव बढ़ता जा रहा है।

स्वास्थ्य खर्चों में वृद्धि

रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों के उपयोग से जल और मृदा प्रदूषण होता है, जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, जैसे कि कैंसर, त्वचा रोग, और श्वसन संबंधी बीमारियों बढ़ रही है। सन 2021 में, वायु और जल प्रदूषण से जुड़ी बीमारियों के इलाज पर भारत में, अनुमानित है 5 बिलियन डॉलर का खर्चा हुआ तथा जो कि स्वास्थ्य क्षेत्र में बजट का एक बड़ा हिस्सा रखता है।

जल संसाधनों का प्रदूषण

भारतीय कृषि में जल स्रोतों का प्रदूषित होना एक गंभीर समस्या है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार, 40% भारतीय नदियाँ रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के कारण प्रदूषित हो चुकी है। जिसके कारण पेयजल की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिला है साथ ही कृषि सिंचाई के लिए भी शुद्ध जल की मात्रा में कमी आई है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव विश्व स्तर पर, प्रदूषण के कारण कृषि उत्पादन में कमी आई है, जिससे खाद्य सुरक्षा पर खतरा बढ़ गया है। खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार, सन 2022 में, जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण के कारण वैश्विक खाद्य उत्पादन में 20% तक की कमी देखी गई है। परिणाम स्वरूप खाद्य उत्पाचो की कीमतों में बढ़ोतरी हुई, जिससे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिला है।

जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि

कृषि प्रदूषण पर एक अन्य बड़ा प्रभाव जलवायु परिवर्तन के रूप में देखा गया है। ग्रीनहाउस गैसों के अत्यधिक उत्सर्जन से प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि हो रही है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के आकड़ों के अनुसार सन, 2021 में, जलवायु परिवर्तन के कारण वैश्विक स्तर पर लगभग 280 अरब डॉलर का आर्थिक नुकसान देखने को मिला है। वैश्विक व्यापार और अर्थव्यवस्था पर प्रभाव कृषि प्रदूषण के कारण उत्पादकता में कमी आने से वैश्विक खाद्य बाजारों में अस्थिरता बढ़ी है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर भी इसका प्रभाव पड़ा है, क्योंकि कई देशों पर प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने सख्त नियम लागू किए है, जिससे आयात-निर्यात की लागत में बढ़ोतरी हुई है।

सूक्ष्मजीवों के द्वारा निवारण

1 जैव उर्वरक का उपयोग

जैव उर्वरक जैसे राइजोबियम, एजोस्पिरिलम, और माइकोराइजा फसलों हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं। ये रासायनिक उर्वरकों का एक पर्यावरण अनुकूल विकल्प है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, के अध्ययन के अनुसार, जैव उर्वरकों के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता में 25-30% की कमी आई है. जिससे कृषि लागत कमी हुई है और मृदा स्वास्थ्य में भी सुधार देखने को मिला है।

2. जैव कीटनाशक का उपयोग

जैव कीटनाशक जैसे बैसिलस थुरिंजिनिसिस और ब्यूवेरिया बैसियाना का उपयोग फसलों को कीटों और रोगों से बचाने के लिए किया जाता है। यह रासायनिक कीटनाशकों का एक सुरक्षित विकल्प हैं और पर्यावरण को कोई हानि नहीं पहुँचाते। जैव कीटनाशकों के उपयोग से कृषि प्रदूषण में 30-40% तक की कमी देखी गई है।

3. बायोरेमेडिएशन तकनीक

बायोरेमेडिएशन एक जैविक प्रक्रिया है। जिसमें सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके मिट्टी और जल में मौजूद प्रदूषकों को हटाया जाता है। स्यूडोमोनास और एस्पर्जिलस जैसे सूक्ष्मजीव प्रदूषणकारी रासायनिक अवशेषों को विघटित करते है। सन 2022 में, भारत के कुछ क्षेत्रों में बायोरेमेडिएशन तकनीक के उपयोग से जल और मृदा प्रदूषण में 50% की कमी दर्ज की गई है।

4. जैविक अपशिष्ट प्रबंधन

कृषि अपशिष्ट का जैविक अपघटन (बायोडिग्रेडेशन) सूक्ष्मजीवों के माध्यम से किया जा रहा है, जिससे अपशिष्ट प्रयधन की समस्या काफी हद तक हल हुई है साथ ही मिट्टी की उर्वरता में सुधार हुआ है। जैविक अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकों के उपयोग से मिट्टी की कार्बन सामग्री में 15-20⁻ की वृद्धि हुई है. जिससे फसल उत्पादन में सुधार हुआ है।

5. सूक्ष्मजीवों द्वारा कार्बन स्थिरीकरण

सूक्ष्मजीवों द्वारा मृदा में कार्बन स्थिरीकरण किया जाता है, जो ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के साथ जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, सूक्ष्मजीवों के माध्यम से कार्बन स्थिरीकरण की प्रक्रिया से ग्लोबल वार्मिंग को 1-5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने में मदद मिल रही है।

6. सूक्ष्मजीयों द्वारा मृदा की संरचना में सुधार

माइकोराइजा जैसे फफूंद पौधों की जड़ों के साथ सहजीदी संबंध बनाते हैं जिससे मिट्टी की संरचना और जलधारण क्षमता में सुधार होता है।, माइकोराइजा के उपयोग से मिट्टी की जल धारण क्षमता में 25% तक वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष

कृषि क्षेत्र में प्रदूषण का भारतीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। यह समस्या न केवल कृषि उत्पादन एवं स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है, बल्कि भारतीय एवं वैश्विक स्तर पर आर्थिक स्थिरता और खाद्य सुरक्षा के लिए भी खतरा है। सूक्ष्मजीवों का उपयोग एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करता है, जो कृषि प्रदूषण एवं पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करने के साथ-साथ कृषि उत्पादकता में सुधार करता है। जैव उर्वरक जैब कीटनाशक और बायोरेमेडिएशन जैसी तकनीकों का उपयोग करके हम एक स्थायी और पर्यावरण-अनुकूल कृषि प्रणाली की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं, जिससे भारतीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था को भी लाभ होगा।

धरती से सेहत तक : किसानों के लिए आयुर्वेद और वृक्षायुर्वेद का वरदान

✍ **श्री खेता राम** सहायक आचार्य (वृक्षायुर्वेद)
वृक्षायुर्वेद विभाग राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान मानद
विश्वविद्यालय (डी नोवो), जयपुर (राजस्थान)

भारत की कृषि परंपरा और स्वास्थ्य संस्कृति एक-दूसरे से गहराई से जुड़ी हुई है। जहाँ आयुर्वेद मानव जीवन की सेहत, दीर्घायु और संतुलन का विज्ञान है, वहीं वृक्षायुर्वेद धरती की उर्वरता, फसलों की सुरक्षा और पौधों के स्वास्थ्य का शास्त्र है। दोनों का संगम किसानों के लिए एक ऐसा वरदान है, जो न केवल खेतों की उपज बढ़ा सकता है, बल्कि समाज को स्वस्थ जीवन भी प्रदान कर सकता है। किसान धरती का अन्नदाता है, और आयुर्वेद जीवन और स्वास्थ्य का रक्षक। प्राचीन काल में ऋषि:मुनियों ने न केवल मनुष्य और पशुओं के स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद की रचना की, बल्कि पौधों की चिकित्सा और कृषि के लिए वृक्षायुर्वेद की भी स्थापना की। आज जब खेती रासायनिक प्रदूषण और मिट्टी की शक्ति घटने की समस्या से जूझ रही है, तब आयुर्वेद और वृक्षायुर्वेद किसानों के लिए मार्गदर्शक बन सकते हैं।

1. किसानों के लिए आयुर्वेद का महत्व

आयुर्वेद केवल मानव शरीर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आहार, जीवनशैली और कृषि पद्धतियों से भी सीधा जुड़ा है। खेती में दिन-रात मेहनत करने वाला किसान स्वस्थ रहेगा तो खेती भी फलेगी।

दिनचर्या और ऋतुचर्या : सुबह जल्दी उठना, सूर्योदय के साथ काम शुरू करना, मौसमी आहार (जैसे गर्मियों में छाछ, सत्तू; सर्दियों में तिल, गुड़, मूंगफली) अपनाना।

घरेलू औषधियाँ :

हल्दी और दूध : चोट और थकान के लिए।

गिलोय : रोग प्रतिरोधक शक्ति के लिए।

तुलसी व अदरक की चाय : सर्दी-जुकाम से बचाव।

त्रिफला : पाचन सुधारक।

योग और प्राणायाम : खेतों में काम करने से पहले और बाद में कुछ मिनट प्राणायाम व सूर्यनमस्कार करने से शरीर की ऊर्जा और मानसिक संतुलन बना रहता है।

आहार और अन्न : खेतों से निकला अन्न ही आयुर्वेद के अनुसार 'औषधि' है। स्वच्छ, रसायन-मुक्त अन्न ही स्वस्थ शरीर और दीर्घायु का आधार बनता है।

औषधीय पौधों की खेती : किसान औषधीय पौधों की खेती से न केवल आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि समाज के लिए प्राकृतिक औषधियों की उपलब्धता भी सुनिश्चित कर सकते हैं।

प्राकृतिक संसाधन संरक्षण : आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से खेती करने पर जल, मृदा और जैव विविधता का संतुलन भी बना रहता है।

2. वृक्षायुर्वेद : पौधों और खेतों का चिकित्साशास्त्र

महर्षि सुरपालि कृत 'वृक्षायुर्वेद' जैसे प्राचीन ग्रंथ बताते हैं कि पौधों का भी निदान और उपचार होता है।

औषधीय पादप उद्यान में अध्येता को फील्ड बेस्ड ट्रेनिंग देते वृक्षायुर्वेद विषय विशेषज्ञ।

मृदा स्वास्थ्य : जैविक खाद, कुणपजल, जीवामृत और हरी खाद पौधों को प्राकृतिक पोषण देते हैं।

बीजोपचार : बीजामृत और हर्बल घोल से बीजों को शक्ति मिलती है, जिससे अंकुरण दर और उत्पादन क्षमता बढ़ती है।

कीट एवं रोग प्रबंधन : नीम, तुलसी, धतूरा, लहसुन जैसे पौधों से बने हर्बल कीटनाशक फसलों को कीटों से सुरक्षित रखते हैं।

मल्चिंग और संरक्षण : पौधों की जड़ों को सुरक्षित रखने और नमी बनाए रखने हेतु जैविक मल्चिंग की विधि लाभकारी सिद्ध होती है।

3. किसान और समाज को लाभ

* किसानों को रासायनिक लागत कम करके अधिक लाभ प्राप्त होता है।
* उपज की गुणवत्ता और पोषण मूल्य बढ़ जाता है।
* औषधीय पौधों से नई रोजगार संभावनाएँ और बाजार उपलब्ध होते हैं।
* स्वस्थ अन्न और औषधियाँ समाज को रोगमुक्त जीवन प्रदान करती हैं।

4. धरती से सेहत तक : समग्र दृष्टिकोण

आयुर्वेद और वृक्षायुर्वेद का साझा दर्शन

* **संतुलन का सिद्धांत :** मनुष्य में वात:पित्त:कफ का संतुलन और खेती में मिट्टी:जल:वायु का संतुलन, दोनों ही अनिवार्य हैं।
* **पंचमहाभूत का महत्व :** पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश : इन पाँच तत्वों का संरक्षण मानव और पौधों दोनों के जीवन का आधार है।
* **प्रकृति संग सहजीवन :** किसान यदि प्रकृति और वृक्षायुर्वेद के नियमों के अनुसार खेती करेगा तो उसकी लागत घटेगी, उपज बढ़ेगी और जीवन सुखी रहेगा।

जब धरती को वृक्षायुर्वेद से पोषण और संरक्षण मिलता है, तो उसकी उपज आयुर्वेद के अनुरूप समाज की सेहत को मजबूत बनाती है। इस प्रकार किसान केवल अन्नदाता ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य रक्षक भी बन जाते हैं।

निष्कर्ष

"धरती से सेहत तक" की यह यात्रा आयुर्वेद और वृक्षायुर्वेद के संयुक्त उपयोग से ही संभव है। आज आवश्यकता है कि किसान पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक अनुसंधान को मिलाकर प्राकृतिक खेती की ओर बढ़ें। यही मार्ग उन्हें स आयुर्वेद और वृक्षायुर्वेद दोनों का लक्ष्य है : स्वस्थ जीवन और सतत् खेती।

* आयुर्वेद किसान के परिवार को स्वास्थ्य देता है।
* वृक्षायुर्वेद किसान की खेती और धरती को शक्ति देता है।

जब किसान दोनों को अपनाता है, तभी "स्वस्थ किसान : स्वस्थ खेती : स्वस्थ भारत" का सपना साकार होता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍ **अखिलेश शर्मा, दीपा शर्मा** उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश)

✍ **धर्मेन्द्र कुमार** कृषि विज्ञान केंद्र, चम्बा (हिमाचल प्रदेश)

प्राकृतिक खेती : रासायनिक कृषि का टिकाऊ विकल्प

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ लगभग 55 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। हरित क्रांति (1965 के बाद) ने देश को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया, लेकिन रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से आज मिट्टी की उर्वरता घट रही है, जलस्रोत प्रदूषित हो रहे हैं और उत्पादन लागत लगातार बढ़ रही है। ऐसे समय में प्राकृतिक खेती एक टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल विकल्प बनकर उभर रही है।

प्राकृतिक खेती क्या है?

प्राकृतिक खेती एक ऐसी पद्धति है जिसमें खेती पूरी तरह से देशी संसाधनों पर आधारित होती है। इसमें रासायनिक खाद, कीटनाशक या बाजार से खरीदे गए किसी भी बाहरी तत्व का प्रयोग नहीं किया जाता। यह पद्धति प्रकृति के सिद्धांतों पर आधारित है, जहाँ मिट्टी के जीवाणु, केंचुए, देशी गाय का गोबर और मूत्र, हरी खाद, मल्चिंग और जीवामृत जैसे जैविक घोल मुख्य भूमिका निभाते हैं।

रासायनिक खेती की चुनौतियां

1.मिट्टी की उर्वरता में गिरावट : निरंतर रासायनिक खादों से मिट्टी की कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम हो रही है।

2.स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव : रासायनिक अवशेष सब्जियों और अनाज में पहुंचकर मनुष्य और पशुओं के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा रहे हैं।

3.लागत में वृद्धि : महंगे उर्वरक और कीटनाशक छोटे किसानों की आर्थिक स्थिति पर बोझ डाल रहे हैं।

4.जलवायु परिवर्तन: रासायनिक कृषि से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ता है।

प्राकृतिक खेती के प्रमुख सिद्धांत

प्राकृतिक खेती मुख्यतः चार स्तंभों पर आधारित है (सुभाष पालेकर द्वारा प्रतिपादित):

1. **जीवामृत :** देशी गाय के गोबर और मूत्र से तैयार तरल घोल, जो सूक्ष्मजीव गतिविधि को बढ़ाता है।
2 **बीजामृत :** बीजोपचार हेतु उपयोग होने वाला जैविक घोल।
3. **अच्छादन (Mulching):** फसल की जड़ों को ढककर नमी व पोषण बनाए रखना।
4. **वफसा (Soil Aeration):** मिट्टी में पर्याप्त नमी और हवा बनाए रखना।

प्राकृतिक खेती के लाभ

1. मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि 2. उत्पादन लागत में कमी 3. जल संरक्षण 4. पर्यावरण संरक्षण 5. स्वास्थ्य लाभ 6. जैव विविधता का संरक्षण 7.किसान की आत्मनिर्भरता 8.दीर्घकालिक टिकाऊपन 9.आर्थिक एवं सामाजिक लाभ

भविष्य की संभावनाएं

1. टिकाऊ कृषि का आधार * प्राकृतिक खेती मिट्टी, जल और पर्यावरण की रक्षा करती है। * आने वाले समय में यह जलवायु-स्मार्ट खेती (Climate-smart agriculture) के रूप में महत्वपूर्ण होगी।

2. स्वास्थ्य सुरक्षा

* उपभोक्ताओं में रसायन-मुक्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन की मांग तेजी से बढ़ रही है। * प्राकृतिक खेती के उत्पादों को बाज़ार में अधिक स्वीकार्यता मिलेगी।

3. किसानों की आय में वृद्धि

* उत्पादन लागत घटने और जैविक/प्राकृतिक उत्पादों के प्रीमियम मूल्य से किसानों की शुद्ध आय बढ़ सकती है।
* निर्यात (Export) की संभावना भी अधिक होगी।

4. सरकारी समर्थन और नीतियां

* कई राज्य (जैसे आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश) प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दे रहे हैं। * भविष्य में केंद्र और राज्य सरकारें अधिक सब्सिडी, बाजार व्यवस्था और प्रशिक्षण कार्यक्रम ला सकती हैं।

5. ग्रामीण रोजगार और आत्मनिर्भरता

* स्थानीय इनपुट (गोबर, गोमूत्र, नीम, जीवामृत) के उपयोग से गाँवों में संसाधन-आधारित रोजगार बढ़ेगा।
* किसान बाहरी कंपनियों पर कम निर्भर होंगे।

6. निर्यात की संभावनाएं

* प्राकृतिक और जैविक उत्पादों की अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में बहुत मांग है।
* भारत प्राकृतिक खेती से विश्व में "ऑर्गेनिक हब" बन सकता है।

7. जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायक

* प्राकृतिक खेती ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करती है।
* यह खेती सूखा और बाढ़ जैसी जलवायु आपदाओं के प्रति अधिक सहनशील (Resilient) है।

8. अनुसंधान एवं नवाचार

* भविष्य में वैज्ञानिक प्राकृतिक खेती के लिए नई तकनीकें, बीज और जैविक इनपुट विकसित करेंगे।
* इससे उत्पादकता और गुणवत्ता दोनों में सुधार होगा।

निष्कर्ष

प्राकृतिक खेती न केवल रासायनिक खेती का टिकाऊ विकल्प है, बल्कि यह किसानों की आत्मनिर्भरता, उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण का भी आधार है। आज आवश्यकता है कि किसान, वैज्ञानिक और नीति-निर्माता मिलकर इस दिशा में ठोस कदम उठाएं ताकि भारतीय कृषि फिर से प्रकृति के अनुरूप और दीर्घकालिक रूप से टिकाऊ बन सके।

01/2023-24

वंशिका शर्मा विद्यार्थी, डॉ. यशवंत सिंह परमार, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर, (हिमाचल प्रदेश)

डॉ. दीपा शर्मा वरिष्ठ वैज्ञानिक, डॉ. यशवंत सिंह परमार उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर, (हिमाचल प्रदेश),

बढ़ती आबादी और पोषण सुरक्षा: सब्ज़ी बनाम फास्ट फूड

भारत आज जिन गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है, उनमें सबसे प्रमुख है, तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या और पोषण सुरक्षा की समस्या। लगभग 140 करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले इस विशाल देश में हर नागरिक तक पर्याप्त, सस्ता और संतुलित भोजन उपलब्ध कराना किसी भी सरकार के लिए आसान कार्य नहीं है। बढ़ती आबादी के साथ-साथ भोजन की मांग भी निरंतर बढ़ रही है जबकि भूमि, जल और अन्य प्राकृतिक संसाधन सीमित होते जा रहे हैं। यह असंतुलन खाद्य आपूर्ति और पोषण सुरक्षा दोनों के लिए ख़तरा पैदा कर रहा है। इसके अतिरिक्त बदलती जीवनशैली और उपभोक्तावाद ने इस समस्या को और जटिल बना दिया है। आधुनिक समाज में लोग पारंपरिक, पोषक और स्थानीय खाद्य पदार्थों की बजाय फास्ट फूड, पैकेज्ड आइटम्स और प्रोसेस्ड खाद्य सामग्री की ओर आकर्षित हो रहे हैं। विज्ञापनों और बाज़ार की रणनीतियों ने लोगों की पसंद और भोजन की आदतों को प्रभावित किया है जिसके परिणाम स्वरूप मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप और कुपोषण जैसी समस्याएँ तेज़ी से बढ़ रही हैं।

भारत की वास्तविकता (2025)

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) और भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICMR) की रिपोर्ट (2025) के अनुसार, भारत में माइक्रोन्यूट्रिएंट डेफ़िशिएंसी तेजी से बढ़ रही है।

- 60% महिलाएँ और 50% बच्चे आयरन की कमी और एनीमिया से पीड़ित हैं।
- विटामिन ए, विटामिन डी और ज़िंक की कमी आम हो चुकी है।
- थकान, कमज़ोरी, कमजोर इम्युनिटी और बीमारियों का बढ़ता ख़तरा, अब हर उम्र के लोगों में देखा जा रहा है।

भारत की परंपरागत थाली में सब्जियों का सबसे बड़ा योगदान रहा है। ये न केवल शरीर हेतु ज़रूरी पोषण देती हैं बल्कि रोगों से बचाव भी करती हैं।

1.पोषण का भंडार

सब्ज़ियाँ विटामिन, खनिज, रेशा और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होती हैं जो कुपोषण को दूर करती हैं, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती हैं और मधुमेह, मोटापा व हृदय रोग जैसे जीवनशैली संबंधी रोगों से बचाती हैं।

- पत्तेदार सब्जियां आयरन और विटामिन बी से भरपूर होती हैं जो ऊर्जा के स्तर को बढ़ाती हैं और मोरिंगा (सहजन) जैसी सब्जियों में प्रोटीन होता है जो शरीर को बहुत ताकत देता है.
- शिमला मिर्च, करेला और भिंडी जैसे विटामिन सी और अन्य पोषक तत्वों से भरपूर सब्जियां इम्यूनिटी पावर को बढ़ाती हैं और संक्रमण से लड़ने में मदद करती हैं.
- हर मौसम में अलग-अलग किस्म की सब्जियाँ मिलती हैं जो प्राकृतिक मल्टीविटामिन की तरह काम करती हैं।

2.खाद्य व पोषण सुरक्षा

- बढ़ती आबादी में सब्ज़ियाँ कम मात्रा में भी आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराकर संतुलित आहार सुनिश्चित करती हैं।

3.आर्थिक महत्व

- अनाज की तुलना में सब्ज़ियाँ अधिक मूल्य वाली फसलें हैं। इनकी खेती से किसानों को जल्दी और अधिक आय मिलती है, साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार भी पैदा होता है तथा ये कम खर्च में ज़्यादा पोषण देती हैं और गरीब से अमीर तक सबकी पहुँच में हैं।

4.सतत खेती

- अधिकांश सब्जियाँ जल्दी तैयार होती हैं, फसल चक्र में आसानी से फिट हो जाती हैं और मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में मदद करती हैं, जिससे ये जलवायु-स्मार्ट खेती के लिए उपयोगी हैं।

5.स्वास्थ्य जागरूकता

- आजकल लोग पौध-आधारित और स्वस्थ भोजन को अधिक पसंद कर रहे हैं। ऐसे में सब्ज़ियाँ आधुनिक खानपान और स्वास्थ्य आंदोलनों की प्रमुख धुरी बन चुकी हैं।
- नियमित सेवन से हृदय रोग, मोटापा और डायबिटीज़ जैसी बीमारियों का ख़तरा घटता है।
- सब्जियां भूख को नियंत्रित करने में मदद करती हैं और शरीर को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती हैं।

फास्ट फूड की ओर आकर्षण: स्वाद में मज़ा, सेहत से मज़ाक

आज के दौर में फ़ास्ट फूड की ओर आकर्षण लगातार बढ़ता जा रहा है। आधुनिक जीवनशैली, समय की कमी और स्वाद के आकर्षण ने लोगों को पारंपरिक व घर के बने भोजन से दूर कर दिया है। शहरों में व्यस्त जीवन और कामकाजी दिनचर्या के कारण लोग झटपट तैयार होने वाले भोजन जैसे बर्गर, पिज़्ज़ा, नूडल्स, मोमो और समोसा आदि को अधिक पसंद करने लगे हैं। विज्ञापनों, आकर्षक पैकेजिंग और दुकानों-रेस्तरां की उपलब्धता ने इस प्रवृत्ति को और भी मज़बूत बनाया है।

फ़ास्ट फूड के नुकसान

1.स्वास्थ्य पर असर

- फ़ास्ट फूड में तेल, मसाले, नमक और चीनी की मात्रा अधिक होती है जिससे मोटापा, मधुमेह, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है।
- इसमें आवश्यक पोषक तत्व जैसे विटामिन, खनिज और रेशे (फाइबर) कम होते हैं जिसके कारण शरीर को संतुलित पोषण नहीं मिल पाता।
- बार-बार बाहर का खाना खाने से पाचन तंत्र कमजोर हो सकता है और एसिडिटी, कब्ज जैसी समस्याएँ बढ़ सकती हैं।

2. मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

- शोधों से पता चला है कि अधिक फ़ास्ट फूड खाने वालों में तनाव, चिड़चिड़ापन और अवसाद (डिप्रेशन) जैसी समस्याएँ बढ़ सकती हैं।
- यह ऊर्जा तो देता है लेकिन स्थायी रूप से शरीर को थकान और सुस्ती महसूस होती है।

3. बच्चों और युवाओं पर असर

- बच्चे और युवा फ़ास्ट फूड के सबसे बड़े उपभोक्ता हैं। लगातार सेवन से उनका शारीरिक विकास प्रभावित हो सकता है।
- यह लत की तरह काम करता है, यानी बार-बार खाने की इच्छा होती है।

4. सामाजिक और आर्थिक नुकसान

- घर का बना पौष्टिक भोजन पीछे छूट जाता है जिससे पारंपरिक खानपान की संस्कृति प्रभावित होती है।
- नियमित रूप से फ़ास्ट फूड खाने से घर का खर्च भी बढ़ सकता है, क्योंकि यह साधारण भोजन की तुलना में महँगा होता है।

नीति आयोग और विविधतापूर्ण भोजन थाली (Diversified Food Plate)

नीति आयोग, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (डीएवाई-एनआरएलएम) के अंतर्गत कृषि-आधारित पोषण उद्यानों को प्रोत्साहित कर रहा है ताकि घरों में पूरे वर्ष विभिन्न प्रकार के फल और सब्जियाँ उपलब्ध रह सकें। यह पहल ÷पोषक अनाज÷ जैसे बाजरे की खेती और उसके उपभोग को भी बढ़ावा देती है। साथ ही, आयोग टिकाऊ व विविध खाद्य प्रणालियों को मजबूत करने के लिए ऐसे कृषि-पारिस्थितिक तरीकों को अपनाने की सिफारिश करता है, जो पर्यावरणीय और सामाजिक मूल्यों को समाहित करते हों। भारत सरकार और नीति आयोग ने इस समस्या को गंभीरता से लिया है और भोजन थाली का विविधीकरण (Food Plate Diversification) पर काम कर रहे हैं।

- इसका लक्ष्य है कि हर भारतीय की थाली में संतुलित भोजन हो जिसमें
- 50% सब्ज़ी
- 25% अनाज
- 20% दाल/प्रोटीन
- 5% स्वस्थ वसा (Healthy Fats)
- नीति आयोग द्वारा "Eat Local, Eat Seasonal, Eat Balanced" अभियान भी चलाया जा रहा है।
- स्कूलों और महाविद्यालयों में पोषण जागरूकता फैलाने पर भी ज़ोर दिया जा रहा है।

निष्कर्ष

यह स्पष्ट है कि भारत में बढ़ती आबादी और पोषण सुरक्षा की चुनौती का समाधान फास्ट फूड से दूरी बनाकर और सब्जियों व पारंपरिक भोजन को अपनाकर ही संभव है। यदि प्रत्येक परिवार अपनी थाली में मौसमी सब्ज़ियों और पारंपरिक भोजन को प्राथमिकता दे, तो कुपोषण की समस्या काफी हद तक कम की जा सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि "स्वस्थ भारत" और "पोषित भारत" का सपना तभी साकार होगा, जब लोग फास्ट फूड की लत छोड़कर सब्जियों और पारंपरिक भोजन की ओर लौटेंगे।

मधुमखी पालन से किसानों की आय एवं लाभ

डॉ. कृशानु रिसर्च फेलो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल, हरियाणा

श्वेता यादव (शोध छात्रा) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा

डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह (सहायक प्राध्यापक) IFTM यूनिवर्सिटी मुरादाबाद (उ.प्र.)

शची तिवारी (शोध छात्रा) वनस्पति विभाग, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ 250005 (उ.प्र.)

भारत में मधुमक्खी पालन शुरू करने का तरीका: भारतीय ग्रामीण इलाकों में आपने अक्सर देखा होगा कि मधुमक्खियाँ घर के किसी छेद में अपना छत्ता बनाती हैं, जिसे अंग्रेजी में Honey Bee Farming कहा जाता है। इस प्रक्रिया में मधुमक्खियाँ खुद अपने छत्ते के लिए सही जगह चुनती हैं, इसलिए इसे मधुमक्खियों की खेती नहीं कहा जा सकता. इस छत्ते से अगर कोई चाहे तब भी इतनी शहद का उत्पादन नहीं हो सकता की इतनी कमाई हो जाय की वह अपनी गुज़र बसर कर सके। लेकिन इन सबके बावजूद, मधुमक्खियों का पालन प्राचीन काल से ही भारत में शहद एकत्रित करने का एक साधन रहा है, इसलिए इस व्यवसाय को पारम्परिक व्यवसाय भी कहा जा सकता है। शहद ने समय के साथ राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय बाजारों में अपनी उपयोगिता के कारण धीरे-धीरे लोकप्रियता प्राप्त की. इसी दौरान लोगों ने मधुमक्खियों को व्यवसायिक तौर पर पालना शुरू किया और इससे उत्पादित उत्पादों, जैसे शहद, को अपनी आय का स्रोत बनाया।

मधुमक्खी पालन का क्या अर्थ है?: प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में कई पारिवारिक, सामाजिक और जिम्मेदारियों का निर्वहन करना होता है, और इन जिम्मेदारियों को पूरा करने हेतु धन की आवश्यकता हो सकती है, इसलिए व्यक्ति को धन कमाने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। जब तक शहद की बात है, मधुमक्खी पालन द्वारा शहद एकत्रित करना सबसे पुरानी परंपरा में से एक है. समय बीतने के साथ, शहद अपने कई औषधीय गुणों के कारण लोकप्रिय होता जा रहा है। इसलिए इस परम्परा ने अब व्यवसायिक रूप ले लिया है, यानी आज कई लोगों ने मधुमक्खी पालन को अपना आय का साधन बनाया है। मधुमक्खी पालने से उद्यमी शहद और मधुमक्खी मोम (Bees Wax) प्राप्त करते हैं, जो कई औद्योगिक कार्यों में प्रयोग किया जाता है। सरल शब्दों में, मधुमक्खी पालन का अर्थ है मधुमक्खियों को पैसे कमाने हेतु पालना।

मधुमक्खी पालन के लाभ: शहद के विभिन्न औषधीय गुणों और मधुमक्खी पालन के लाभों से यह उत्पाद राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर और अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। लेकिन इस व्यवसाय से शहद के अलावा मोम, रॉयल जैली और अन्य उत्पाद भी मिलते हैं। मधुमक्खी पालन से कुछ लाभ हैं- किसानों की कमाई में वृद्धि; फूलों के रस और पराग का अधिकतम उपयोग; शहद, रॉयल जैली, मोम और पराग का उत्पादन; खेतों में परागण का उपयोग करने से कृषि उत्पादन में वृद्धि; इस बिजनेस से उत्पादित शहद, रॉयल जैली और पराग का सेवन करने से कई रोगों को ठीक होने में मदद मिलती है इसका अर्थ है कि मधुमक्खी पालन से उत्पादित उत्पादों में औषधीय गुण रहते हैं। शहद का नियमित सेवन तपेदिक, अस्थमा, खून की कमी, ब्लड प्रेशर, कब्ज और ट्यूमर से बचाता है. रॉयल जैली भी स्मरण शक्ति को बढ़ाता है और आयु को बढ़ाता है; मधुमक्खी पालन बहुत कम पैसे में शुरू किया जा सकता है; मधुमक्खी पालन खेत में किया जा सकता है जिनमें उत्पादन ठीक नहीं होता है; इस व्यवसाय को कृषि क्षेत्र के अन्य कार्यों जैसे कृषि के साथ भी शुरू किया जा सकता है; इस व्यवसाय का पर्यावरण पर कोई बुरा प्रभाव नहीं होता, यानी यह पर्यावरण के अनुकूल होता है; और बाजार में शहद और बेस वैक्स की पर्याप्त मांग है।

मधुमक्खी पालन शुरू करने से पहले ध्यान देने वाली बातें

यदि किसी को मधुमक्खियों का पालन करने का विचार आया है और वह इस व्यवसाय को शुरू करने के लिए पूरी तरह से उत्सुक है, तो उसे पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना बहुत महत्वपूर्ण है-

* मधुमक्खियों को काटने का डर अक्सर लोगों को परेशान करता है, इसलिए यह बिजनेस करने की सोच रहे व्यक्ति को पहले मधुमक्खियों के काटने

* उद्यमी को मधुमक्खी और इंसान के बीच संबंध को समझने हेतु लोगों के साथ काम करना होगा जो पहले से मधुमक्खी पालन कर रहे हैं.

* मधुमक्खी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के बाद और इसे व्यवहारिक रूप से अपनाने के बाद, मधुमक्खी पालन पद्यति को विकसित करने की कोशिश की जा सकती है.

* इस प्रक्रिया के बाद, इस व्यवसाय के लिए अगली योजना

* बी फार्मिंग प्रोजेक्ट के लिए व्यवहारिक लक्ष्य निर्धारित करें. इन लक्ष्यों से आशय उन लक्ष्यों से है जिन्हें आप अपने पास उपलब्ध संसाधनों से हासिल कर पाएंगे.

* शुरुआत में छोटे प्रोजेक्ट से करें और ज्ञान और अनुभव लेकर बड़े प्रोजेक्ट के बारे में सोचा जा सकता है.

* इस व्यवसाय में काम आने वाले उपकरण स्थानीय रूप से अनुकूलित हैं और इसकी सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका व्यवसाय शुरू करने से पहले किसी स्थानीय व्यक्ति को चुनना मुश्किल हो सकता है जो इन उपकरणों को स्थानीय रूप से तैयार करता है।

* इस बिजनेस से उत्पादित उत्पादों की बाजार में बड़ी मांग होती है, लेकिन व्यवसाय करने से पहले किसी स्थानीय एजेंट से संपर्क किया जाना चाहिए जो उत्पाद को खरीद सकता है।

मधुमक्खी पालन कैसे शुरू करें: मधुमक्खी पालन एक ऐसा व्यवसाय नहीं है कि कोई भी अनजान व्यक्ति बाजार से मधुमक्खियों के बॉक्स खरीदकर मधुमक्खी पालन शुरू करेगा। इस तरह के व्यवसाय को शुरू करने से पहले विशेष कौशल की आवश्यकता होती है क्योंकि यह छोटा सा जीव किसी को भी मार सकता है, इसलिए प्रशिक्षण लेकर इन कौशलों को हासिल किया जा सकता है इसलिए, इस व्यवसाय को शुरू करने के इच्छुक उद्यमी को पहले इससे संबंधित प्रशिक्षण लेना चाहिए।

1. **प्रशिक्षण प्राप्त करें:** व्यवसाय शुरू करने से पहले आपको प्रशिक्षण लेना होगा, जो आप स्थानीय राज्य कृषि विभाग से या किसी अन्य कृषि विश्वविद्यालय से मिल सकता है। मधुमक्खी पालन व्यवसाय से जुड़े सभी प्रकार के कोर्स उपलब्ध हैं, जैसे सर्टिफिकेशन, डिप्लोमा और डिग्री कोर्स; हालांकि, डिप्लोमा और डिग्री कोर्स लेने के लिए अभ्यर्थियों को एक स्नातक डिग्री होनी चाहिए। वहीं आदतन कोर्स (Hobby Course) के लिए कोई शैक्षणिक आवश्यकता नहीं है। विभिन्न संस्थानों में कोर्स की अवधि एक हफ्ते से लेकर 9 महीने तक हो सकती है; कुछ कोर्स एक हफ्ते में भी पूरा हो सकते हैं, लेकिन कुछ को 9 महीने भी लग सकते हैं। मधुमक्खी पालन में भी कुछ खादी ग्रामोद्योग प्रशिक्षण केंद्र ट्रेनिंग देते हैं, खादी ग्रामोद्योग की अधिकारिक वेबसाइट पर जाकर मधुमक्खी प्रशिक्षण केन्द्रों का पता लगा सकते हैं।

2. **मधुमक्खी पालन की व्यवहारिक जानकारी:** ताकि मधुमक्खी पालन करने के इच्छुक उद्यमी को प्रशिक्षण लेने के बावजूद भी इस क्षेत्र में पहले से काम कर रहे उद्यमियों से व्यवहारिक ज्ञान हासिल करना होगा. इससे असफल होने की संभावना बहुत कम होगी। उद्यमी मधुमक्खियों से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे, जैसे स्थानीय मधुमक्खियों के प्रकार, मधुमक्खियों के समूह में कैसे काम करते हैं, मधुमक्खियों से इंसानी संबंध और मधुमक्खियों से उत्पादित उत्पादों को बेचने के बारे में।

मधुमक्खी के प्रकार एवं समूह

चार प्रकार की मधुमक्खियों को मधुमक्खियों की खेती के लिए सबसे अच्छा माना जाता है। जिनके नाम कुछ इस प्रकार हैं- एपीस फ्लोरा, एपीस सरना इंडिका, एपीस डोरसता और एपीस मेलिफेरा

जब बात मधुमक्खी के समूह की आती है, सभी मधुमक्खियाँ अक्सर एक जैसी दिखती हैं और हमें लगता है कि सभी मधुमक्खियों का काम भी एक जैसा होता होगा, लेकिन ऐसा नहीं है। **मधुमक्खी के समूह में मुख्य रूप से तीन प्रकार की मधुमक्खियाँ होती हैं-** रानी मधुमक्खियाँ, सैंकड़ों हमलावर मधुमक्खियाँ और हजारों मेहनत करने वाली मधुमक्खियाँ।

माना जाता है कि रानी मधुमक्खियों में गर्भधारण और प्रसव करने की क्षमता होती है, जबकि काम करने वाली मधुमक्खियाँ बाँझ होती हैं और हमलावर मधुमक्खियों का यह समूह नर होता है। रानी मधुमक्खियों का काम केवल बच्चे पैदा करना है, जबकि मेहनतकश मधुमक्खियों का काम फूलों से परागण लाना है, जो हमलावर मधुमक्खियों को बचाता है। डैमर मधुमक्खी, छोटी मधुमक्खी, चट्टानी मधुमक्खी, भारतीय मधुमक्खी और इटली की मधुमक्खी सब रानी मधुमक्खी की प्रजाति हैं।

3. **जगह का चयन :** अब उद्यमी को मधुमक्खी पालन के लिए जगह चुनना चाहिए अगर वह प्रशिक्षण और व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसे लगता है कि वह इस व्यवसाय में सफल होगा। व्यवसायी जगह चुनते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रख सकते हैं- ➢ जिस जगह में मधुमक्खी पालन का प्लान बनाया जाना है, वह सूखी होनी चाहिए, क्योंकि नमी इस व्यवसाय को खराब कर सकती है; ➢ उस जगह में पेड़ों की संख्या पर्याप्त होनी चाहिए ताकि शुद्ध हवा की कमी व्यवसाय को प्रभावित न करे; मधुमक्खी लगभग सभी फूलों (जैसे सूरजमुखी, कीनू, पपीता, मौसमी, अंगूर, संतरा, आम, अमरुद और नींबू) से पराग हासिल करती हैं, इसलिए चयनित स्थान पर ऐसी वनस्पतियों का उपलब्ध होना बहुत महत्वपूर्ण है जिनसे मधुमक्खियाँ पराग हासिल कर सकें।

4. **आवश्यक उपकरण:** अब उद्यमी ने इस बिजनेस को शुरू करने हेतु प्रशिक्षण, व्यवहारिक ज्ञान और स्थान चुना है, इसलिए अगला कदम आवश्यक उपकरणों की खरीद या बनाना होगा। इस उद्यम को चलाने हेतु स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक उपकरणों की सूची वितरित की जा सकती है।

लेकिन इसके बावजूद कुछ महत्वपूर्ण उपकरणों की सूची निम्नलिखित है- मधुमक्खी के छत्ते; मधुमक्खी का डंक निकालने का उपकरण; स्टेनलेस स्टील की छुरी; सुरक्षा के लिए कपड़ा या जाली; विभिन्न मोटे और पतले ब्रश; मधुमक्खी का डंक निकालने का उपकरण; मधुमक्खी के बक्से; प्रोपोलिस पट्टी; मधुमक्खी फीडर, शहद निकालने वाला यंत्र, पराग जाल, आंतरिक मधुमक्खी आवरण, मधुमक्खी पालन दस्ताने, जूते

खर्चा और कमाई: एक आंकड़ा बताता है कि 80 बीबी colonies शुरू करने में लगभग 225000 रुपये खर्च हो सकते हैं। जिसमें मधुमक्खी के छत्तों (Bee Hives) खरीदने के लिए लगभग 160000 रूपये, बी बॉक्स खरीदने के लिए 32000 रु., एक किलो मधुमक्खी की धूप की दीवार खरीदने के लिए 350 रुपये और अन्य उपकरणों हेतु 17500 रुपये चाहिए और जहाँ तक मधुमक्खी पालन से होने वाली कमाई की बात है, पहले वर्ष लगभग 170000 रुपये का लाभ मिलने का अनुमान है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

डॉ. किरण कुमारी प्रभारी, क्षेत्रीय मृदा परीक्षण प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केंद्र, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, करनाल

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन (Soil Health Management) एक सतत प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य मिट्टी की गुणवत्ता, उत्पादकता और जैव विविधता में सुधार करना है, ताकि कृषि उत्पादकता बनी रहे और पर्यावरण को भी कोई नुकसान न हो।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन मृदा की उत्पादकता और उर्वरता में सुधार के लिए जैविक खादों, जैव-उर्वरकों और रासायनिक उर्वरकों के विवेकपूर्ण उपयोग के माध्यम से पोषक तत्व प्रबंधन, मृदा परीक्षण, और एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) जैसी टिकाऊ प्रथाओं का एक समग्र दृष्टिकोण है। इसका मुख्य उद्देश्य मिट्टी की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता को बनाए रखना, बढ़ाना और संरक्षित करना है, जिससे टिकाऊ कृषि उत्पादन सुनिश्चित हो सके। इसमें जैविक और रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग, फसल चक्र अपनाना, जल प्रबंधन, और मृदा परीक्षण के माध्यम से मिट्टी की जांच कर पोषक तत्वों की कमी को पूरा करना शामिल है। स्वस्थ मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते हैं, पीएच संतुलित होता है और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की भरमार होती है। **इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-**

अच्छी संरचना

स्वस्थ मिट्टी की बनावट भुरभुरी होती है जो जड़ों को आसानी से अंदर जाने देती है और वायु संचार तथा जल प्रतिधारण को बढ़ावा देती है।

पर्याप्त जल निकासी

अच्छी तरह से रखरखाव की गई मिट्टी पौधों की वृद्धि के लिए पर्याप्त नमी बनाए रखते हुए जलभराव को रोकती है।

उच्च कार्बनिक पदार्थ

कार्बनिक पदार्थ मृदा संरचना में सुधार करते हैं, पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं, तथा मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या को बढ़ते हैं।

सक्रिय सूक्ष्मजीव जीवन

लाभकारी सूक्ष्मजीव कार्बनिक पदार्थों को विघटित करते हैं, नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं, और पौधों को रोगों से बचाते हैं।

अपनी जमीन में ऊपर अंकित विशेषताओ को पाने के लिए किसान भाई उक्त उपाय कर सकते हैं-

1. गोबर की खाद का प्रयोग करके मिट्टी का जैविक कार्बन एवं उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ाई जा सकती है। गोबर की खाद 4-6 टन प्रति एकड़ प्रयोग करें ।
2. ढेंचा और मूंग जैसी दलहनी फसलों को खेत में हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता हैं । हरी खाद को आमतौर पर फसल के वानस्पतिक वृद्धि काल में, यानि लगभग 45-60 दिनों के बाद मिट्टी में मिल देना चाहिए। इस समय पौधे नरम होते हैं, उनमें जैविक पदार्थ की मात्रा अधिकतम होती है, और वे मिट्टी में जल्दी गल-सड़ जाते हैं।
3. केंचुआ खाद का उत्पादन और उपयोग करके रासायनिक खादों पर निर्भरता कम की जा सकती है और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। केंचुआ खाद के प्रयोग से भी हम जैविक कार्बन की मात्र बढ़ सकते हैं।
4. अवशेषों को जलाने से बचें, क्योंकि यह मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। एवं फसल अवशेष जलाने से हवा में कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड जैसी जहरीली गैसें फैलती हैं, जिससे वातावरण प्रदूषित होता है और वायु गुणवत्ता घटती है।
5. अवशेषों को जलाने की बजाय खेत में मिलाया जा सकता है या कम्पोस्ट बनाने के काम लाया जा सकता है इस प्रकार हम मिट्टी की उर्वरता बढ़ सकते हैं , क्योंकि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ और सूक्ष्मजीवों की मात्रा बढ़ती है जो पोषक तत्वों को पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं।
6. रासायनिक उर्वरकों का नियोजन और प्रयोग सावधानी से करें ताकि पोषक तत्वों की अधिकता न हो।
7. अपनी मिट्टी की जांच कराएं और मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के तहत प्राप्त जानकारी के आधार पर सही मात्रा में उर्वरक डालें।

01/2023-24

रजोनिवृत्ति महिलाओं में विटामिन 'डी' का महत्व

रजनी खन्ना एवं रीना चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

रजोनिवृत्ति (Menopause) महिलाओं के जीवन का एक स्वाभाविक चरण है, जोप्रायः 45 से 55 वर्ष की आयु के बीच आता है। इस अवस्था में अंडाशय (Ovaries) द्वारा एस्ट्रोजन (Estrogen) हार्मोन का उत्पादन कम हो जाता है, जिससे महिलाओं के शरीर में कई शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन दिखाई देते हैं। हड्डियों की कमजोरी, जोड़ों का दर्द, थकान, नींद की कमी, अवसाद, बार-बार संक्रमण होना और हृदय रोगों का खतरा बढ़ना - ये सभी समस्याएँ इस अवस्था से जुड़ी होती हैं।इन सब के बीच विटामिन ष्ठ का महत्व और भी बढ़ जाता है।

विटामिन D, जिसे "सनशाइन विटामिन" भी कहा जाता है, मुख्यतः सूर्य की रोशनी से प्राप्त होता है। यह शरीर में कैल्शियम और फॉस्फोरस के अवशोषण को बढ़ाकर हड्डियों और दाँतों को मज़बूत बनाता है। रजोनिवृत्ति के दौरान महिलाओं में हड्डियों से खनिज पदार्थों की कमी तेज़ी से होती है, इसलिए इस समय विटामिन ष्ठ की पर्याप्त मात्रा लेना अत्यंत आवश्यक है।

रजोनिवृत्ति के दौरान विटामिन D के लाभ

1. हड्डियों की मज़बूती और ऑस्टियोपोरोसिस से बचाव: रजोनिवृत्ति के बाद महिलाओं में एस्ट्रोजन हार्मोन का स्तर कम हो जाता है।यह हार्मोन हड्डियों की मजबूती एवं घनत्व बनाए रखने में महत्व पूर्ण भूमिका निभाता है। एस्ट्रोजन की कमी से हड्डियों का खनिज घनत्व (Bone Density) कम होने लगता है, जिससे वे भुरभुरी (Brittle) हो जाती हैं और ऑस्टियोपोरोसिस का खतरा बढ़ जाता है। विटामिन D कैल्शियम और फॉस्फोरस के अवशोषण को बढ़ाकर हड्डियों को मजबूत बनाता है। पर्याप्त स्तर पर विटामिन D मौजूद होने से हड्डियों का टूटना, झुकना और कद छोटा होने जैसी समस्याओं से बचाव होता है। यह हड्डियों के फ्रैक्चर रिस्क को कम कर महिलाओं को लंबे समय तक सक्रिय और सक्षम बनाए रखता है।

2. जोड़ों और मांसपेशियों के दर्द में कमी: रजोनिवृत्ति के समय कई महिलाओं को मांसपेशियों और जोड़ों में दर्द, थकान और अकड़न का अनुभव होता है। यह केवल हड्डियों की कमजोरी ही नहीं बल्कि मांसपेशियों के कार्य में गिरावट का भी परिणाम है। विटामिन D की पर्याप्त मात्रा मांसपेशियों की ताकत (Muscle Strength) को बढ़ाती है और उनमें सूजन एवं थकान को कम करती है। यह कैल्शियम मेटाबॉलिज्म को नियंत्रित रखकर मांसपेशियों के सही ढंग से काम करने में मदद करता है। नियमित विटामिन ष्ठ का सेवन महिलाओं को जोड़ों की जकड़न और बार-बार होने वाले दर्द से राहत दिलाने में सहायक होता है।

3. हृदय स्वास्थ्य में योगदान: रजोनिवृत्ति के बाद हार्मोनल बदलावों के कारण महिलाओं में हृदय रोगों का खतरा बढ़ जाता है। ब्लडप्रेशर का असंतुलन, कोलेस्ट्रॉल का बढ़ना और धमनियों का कठोर हो ना इस अवस्था में आम समस्याएँ हैं। शोध बताते हैं कि विटामिन D का स्तर सही रहने से रक्तचाप (Blood Pressure) नियंत्रित रहता है और धमनियों की लोच (Elasticity) बनी रहती है। यह कोलेस्ट्रॉल और ब्लडशुगर लेवल पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है, जिससे हृदयाघात (Heart Attack) और स्ट्रोक का खतरा कम होता है। इस प्रकार विटामिन ष्ठ हृदय को स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. मूड और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार: रजोनिवृत्ति के दौरान महिलाएँ अक्सर मूड स्विंग्स, चिड़चिड़ापन, चिंता और अवसाद जैसी मानसिक परेशानियों से गुजरती हैं। इसका कारण हार्मोनल असंतुलन के साथ-साथ विटामिन ष्ठ की कमी भी हो सकता है। विटामिन D मस्तिष्क में मौजूद न्यूरो ट्रांसमीटर (जैसे सेरोटोनिन और डोपामिन) को प्रभावित करता है, जो मूड और भावनाओं को नियंत्रित करते हैं। पर्याप्त विटामिन D से मनोबल बेहतर होता है, अवसाद के लक्षण कम होते हैं और नींद की गुणवत्ता भी सुधरती है। अध्ययन के अनुसार जिन महिलाओं में विटामिन ष्ठ का स्तर पर्याप्त होता है, उनमें मानसिक तनाव और अवसाद की संभावना अपेक्षाकृत कम रहती है।

5. प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि: रजोनिवृत्ति के बाद शरीर की प्रतिरोधक क्षमता (Immunity) कम होने लगती है, जिससे संक्रमण और बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। विटामिन D शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को सक्रिय करता है और श्वेत रक्त कोशिकाओं (White Blood Cells) की कार्य क्षमता बढ़ाता है। यह शरीर को बैक्टीरिया, वायरस और अन्य संक्रमणों से बचाने में मदद करता है। इसके अलावा, विटामिन D ऑटो इम्यून रोगों (जैसे रुमेटाइडआर्थराइटिस, टाइप-1 डायबिटीज) से भी सुरक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार यह महिलाओं को संक्रमण से लड़ने और स्वस्थ रहने में सहायक है।

विटामिन डी के स्रोत

प्राकृतिक स्रोत: * सुबह की धूप (सुबह 7 से 10 बजे तक की धूप सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है) * दूध और दूध से बने पदार्थ * अंडे की जर्दी * मछली (सैलमन, सार्डिन, टूना) * मशरूम

पूरक (Supplements): यदि आहार और धूप से पर्याप्त मात्रा में विटामिन D प्राप्त नहीं हो रहा है, तो चिकित्सक की सलाह से विटामिन D की गोलियाँ या ड्रॉप्सली जा सकती हैं।

रजोनिवृत्ति महिलाओं के जीवन का एक संवेदनशील चरण है, जहाँ शारीरिक और मानसिक दोनों तरह के बदलाव महसूस होते हैं। इस समय विटामिन ष्ठ का उचित स्तर बनाए रखना हड्डियों की मजबूती, मानसिक स्वास्थ्य और सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है । धूप में समय बिताना, संतुलित आहार लेना और आवश्यकता पड़ने पर पूरक (Supplements) का सेवन कर ना महिलाओं को इस अवस्था की चुनौतियों से लड़ने में मदद करता है।

01/2023-24

कनिका पंवार, प्रांजली एवं किरण
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय,
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल (हरियाणा)

प्याज: कटाई उपरांत प्रबंधन एवं मूल्यवर्धन

भारत में प्याज एक महत्वपूर्ण सब्जी फसलों में से एक है। इसका सही प्रबंधन और मूल्य संवर्धन किसानों की आय बढ़ाने में सहायक होता है।

प्याज के प्रमुख स्वास्थ्य लाभ: प्याज के सेवन से हृदय, प्रतिरक्षा प्रणाली, पाचन और हड्डियों को लाभ होता है, क्योंकि इसमें एंटीऑक्सीडेंट, फाइबर, सल्फर और क्रेरसेटिन जैसे पोषक तत्व होते हैं। यह रक्तचाप और कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित करने, ब्लड शुगर को सामान्य रखने, संक्रमणों से लड़ने और कैंसर के खतरे को कम करने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त, प्याज त्वचा, बालों और हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए भी फायदेमंद है तथा शरीर को ठंडा रखने में भी सहायक है।

कटाई के बाद प्रबंधन का महत्व : कटाई के बाद उचित प्रबंधन से प्याज भंडारण में कम नुकसान होता है तथा प्याज की गुणवत्ता भी बनी रहती है। इसे विपणन और निर्यात के लिए भी उपयुक्त बनाया जा सकता है। ऐसा करने के लिए, हमें नीचे बताई गई कुछ चीजें करनी होंगी।

कटाई और सुखाने की प्रक्रिया : जब पत्तियां 50% सूख जाएं तो प्याज की कटाई करें। प्याज को 2-3 दिनों तक खुले खेत में सुखाएं। छाया में 10-15 दिनों तक सुखाने से गुणवत्ता बनी रहती है।

छँटाई और ग्रेडिंग : प्याज को सही आकार, रंग और गुणवत्ता के आधार पर अलग करें। खराब प्याज निकालकर अच्छे प्याज को भंडारण के लिए रखें।

भंडारण तकनीकें : प्याज के भंडारण के लिए वायुवीय संरचनाओं का उपयोग करें। प्याज को ठंडी, सूखी और अच्छी वेंटिलेशन वाली जगह पर रखना चाहिए। इससे उनकी शेल्फ-लाइफ बढ़ती है और गुणवत्ता भी बनी रहती है। प्याज का 30-35 सेमी ऊँचे लकड़ी के प्लेटफॉर्म पर भंडारण करें। भंडारण में उचित तापमान 25-30°C और नमी 65-70% होनी चाहिए।

प्याज का प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन : प्याज के मूल्यवर्धित उत्पादों में न्यूनतम प्रसंस्कृत प्याज, सूखे उत्पाद जैसे फ्लेक्स और पाउडर, पेस्ट, अचार, जूस और तेल शामिल हैं। अन्य उत्पादों में प्याज का सिरका, सॉस, जैम और स्नैक्स भी शामिल हैं, जो ताज़े प्याज की तुलना में ज़्यादा सुविधाजनक, लंबे समय तक चलने वाले और कम परिवहन लागत वाले होते हैं। कुछ प्याज द्वारा निर्मित मूल्यवर्धित उत्पाद हैं।

* **प्याज पाउडर:** प्याज को सुखाकर पाउडर बनाया जाता है।
* **प्याज पेस्ट:** जो कि प्रसंस्करण के बाद पैक किया जाता है।
* **अचार और सॉस:** विभिन्न प्रकार के प्याज उत्पाद विकसित किए जाते हैं।

कटा हुआ और सुखाया प्याज : जो कि होटल और निर्यात उद्योग में उपयोग किए जाते हैं ।

न्यूनतम प्रसंस्कृत उत्पाद

छिले और कटे हुए प्याज: ताज़ा छिले और कटे हुए

प्याज, ताज़गी के लिए वैक्यूम-पैक किए गए, उपभोक्ताओं को उपयोग के लिए तैयार उत्पाद प्रदान करते हैं।

व्यक्तिगत रूप से त्वरित फ्रोजन (IQF) प्याज: इन्हें इस तरह से फ्रोजन किया जाता है कि ये अलग-अलग रहें और उपयोग हेतु तैयार रहें, क्योंकि बाजार में इनकी माँग बढ़ रही है।

निर्जलित उत्पाद

प्याज के गुच्छे और पाउडर: नमी हटाकर, निर्जलीकरण शेल्फ लाइफ बढ़ाता है, प्याज का वजन कम कर उत्पाद को भंडारण और उपयोग हेतु अधिक सुविधाजनक बनाता है।

निर्जलित प्याज का पेस्ट: प्याज का एक गाढ़ा रूप जो खाना पकाने में बहुउपयोगी है।

संरक्षित उत्पाद

प्याज का अचार: प्याज को सिरके या तेल आधारित नमकीन पानी में संरक्षित करने की एक पारंपरिक विधि।

प्याज का तेल: प्याज से निकाले गए इस तेल का उपयोग सौंदर्य प्रसाधनों, व्यक्तिगत देखभाल उत्पादों और प्राकृतिक खाद्य परिरक्षक के रूप में किया जा सकता है।

प्रसंस्कृत रूप

प्याज का पेस्ट: ताज़ा, पिसा हुआ पेस्ट, जिसका उपयोग करी और अन्य व्यंजनों के आधार के रूप में किया जाता है।

प्याज की प्यूरी और जूस: प्याज के तरल रूप, जिनका पाककला में अनूठा उपयोग होता है।

प्याज का सिरका और वाइन: पेय पदार्थ बनाने के लिए प्याज में मौजूद प्राकृतिक शर्करा और पोषक तत्वों का उपयोग।

अन्य मूल्यवर्धित उत्पाद

प्याज जैम: प्याज से बना एक मीठा और नमकीन स्प्रेड।

प्याज सूप मिक्स: सूखे मिक्स जो सुविधाजनक और लंबे समय तक चलने वाले होते हैं।

प्याज स्नैक्स: अन्य प्रसंस्कृत उत्पाद जो स्नैक बाज़ार की ज़रूरतों को पूरा करते हैं।

प्याज़ छिलके का पाउडर, कटा हुआ और सुखाया प्याज एवं प्याज डंठल का पाउडर, प्याज के अन्य मूल्यवर्धित उत्पाद में शामिल हैं।

विपणन और निर्यात: मूल्य संवर्धित उत्पादों की अधिक मांग के कारण प्याज के उत्पादों का राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अच्छा व्यापार हो सकता हैं जो कि किसानों के लिए अधिक लाभदायक हैं। प्याज का पारंपरिक प्रसंस्करण जैसे प्याज का पाउडर या चटनी बनाना, उत्पाद की अवधि को बढ़ाता है और उन्हें अधिक मूल्यवान बनाता है। ये उत्पाद न केवल स्थानीय बाजारों में, बल्कि ऑनलाइन भी बेचे जा सकते हैं।

प्याज से बने विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पाद

नए उत्पाद विकास: नए उत्पाद विकास से प्याज के उपयोग में विविधता आती है। जैसे कि प्याज के चिप्स, अचार, और सूप, जो उपभोक्ताओं के लिए आकर्षक होते हैं। ये नए उत्पाद बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाते हैं।

12/2022-23

सतत खाद्य प्रबंधन: गृह विज्ञान और कृषि अर्थशास्त्र का मेल

डॉ. विजय कुमार कौशिक जिला विस्तार विशेषज्ञ (फार्म प्रबंधन), चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, उचानी, करनाल

डॉ. दीप्ति कोठारी विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान), कृषि विज्ञान केंद्र, चमोला (उतराखंड)

सारांश

भारत जैसे कृषि-प्रधान और जनसंख्या बहुल देश में भोजन केवल पेट भरने का साधन नहीं है, बल्कि यह जीवन, संस्कृति, और आर्थिक मजबूती का आधार भी है। ऐसे परिप्रेक्ष्य में गृह विज्ञान और कृषि अर्थशास्त्र दोनों का आपसी जुड़ाव बेहद महत्वपूर्ण है। गृह विज्ञान हमें घर के स्तर पर पोषण, भोजन संरक्षण, और परिवार की समग्र भलाई की शिक्षा देता है, जबकि कृषि अर्थशास्त्र खेत से बाजार तक की यात्रा, संसाधनों का प्रबंधन और किसान तथा उपभोक्ता दोनों की आर्थिक भलाई पर केंद्रित है। जब दोनों का मेल होता है, तो यह न केवल घर और परिवार बल्कि पूरे समाज को सतत खाद्य प्रबंधन की ओर ले जाता है।

परिचय

हमारे समाज में "गृह विज्ञान" को अक्सर केवल खाना बनाने या घर सँभालने तक सीमित मान लिया जाता है। लेकिन वास्तव में इसका दायरा कहीं बड़ा है। गृह विज्ञान पोषण, स्वास्थ्य, संसाधन प्रबंधन, परिधान विज्ञान, बाल विकास और घरेलू अर्थव्यवस्था जैसे विविध क्षेत्रों को समेटे हुए है। यह परिवार के हर सदस्य की जीवन गुणवत्ता को बेहतर बनाने की दिशा में कार्य करता है। दूसरी ओर, कृषि अर्थशास्त्र केवल खेत की उपज तक सीमित नहीं है। यह समझाता है कि किस प्रकार किसान भूमि, श्रम, पूंजी और तकनीक का सर्वोत्तम उपयोग करके उत्पादन बढ़ा सकते हैं, कैसे बाजार तक पहुँचा जा सकता है, मूल्य नीति क्या होनी चाहिए, और किस तरह कृषि आधारित रोजगार ग्रामीण समाज को सशक्त कर सकता है। यानी, गृह विज्ञान घर के भीतर भोजन और पोषण का प्रबंधन सिखाता है, जबकि कृषि अर्थशास्त्र खेत और बाजार की दिशा तय करता है। इन दोनों का संगम ही सतत खाद्य प्रबंधन की मजबूत नींव है।

गृह विज्ञान की भूमिका: घर में खाद्य प्रबंधन

गृह विज्ञान यह सिखाता है कि किस प्रकार घर के भीतर भोजन को संतुलित, पौष्टिक और सुरक्षित रखा जाए।

1.आहार-आयोजन और पोषण ▪ गृह विज्ञान सही भोजन योजना बनाने में मदद करता है। ▪ बच्चों, बुजुर्गों और कामकाजी सदस्यों की अलग-अलग पोषण आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भोजन तैयार किया जाता है। ▪ संतुलित आहार से रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और परिवार स्वस्थ रहता है।

2.खाद्य संरक्षण की तकनीकें: ▪ अचार, पापड़, मुरब्बा, और अनाज का भंडारण-ये सब गृह विज्ञान की व्यावहारिक शिक्षा का हिस्सा हैं। * ग्रामीण परिवेश में धूप में सुखाने और शहरी क्षेत्रों में रेफ्रिजरेशन जैसी तकनीकें भोजन को लंबे समय तक सुरक्षित रखती हैं।

3.खाद्य अपव्यय की रोकथाम * गृह विज्ञान यह सिखाता है कि बचा हुआ भोजन किस प्रकार नए व्यंजनों में बदलकर उपयोग किया जा सकता है। * छोटी-छोटी सावधानियाँ जैसे जरूरत भर का ही भोजन बनाना, भोजन को सही तापमान पर रखना, अपव्यय को रोकती हैं।

4.घर की महिला/पुरुष की भूमिका * गृह विज्ञान की जानकारी से गृहस्थी का संचालन अधिक वैज्ञानिक और संतुलित बन जाता है। * इससे न केवल घर का बजट बचता है, बल्कि परिवार की सेहत भी बेहतर रहती है।

कृषि अर्थशास्त्र की भूमिका: उत्पादन से लेकर बाजार तक कृषि अर्थशास्त्र खेत और किसान के हर निर्णय का मार्गदर्शन करता है।

1.संसाधनों का प्रबंधन

- किसान को यह निर्णय लेना होता है कि कौन सी फसल उगानी है, कितनी भूमि पर, और किस तकनीक से।
- कृषि अर्थशास्त्र इन सभी फैसलों में मदद करता है ताकि कम लागत में अधिक उत्पादन हो।

2.बाजार और मूल्य नीति

- कृषि उत्पादों की कीमतें और उनका उतार-चढ़ाव परिवारों की रसोई तक असर डालते हैं। ▪ न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), बाजार हस्तक्षेप और सरकारी नीतियाँ यह सुनिश्चित करती हैं कि किसान को उचित मूल्य मिले और उपभोक्ता को किफायती दर पर भोजन उपलब्ध हो।

3.ग्रामीण रोजगार और विकास

- कृषि केवल उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण रोजगार और आधारभूत संरचना का भी आधार है।
- जब किसान समृद्ध होते हैं, तो पूरा ग्रामीण समाज आर्थिक रूप से मजबूत होता है।

दोनों का समन्वय: घर और खेत की ताकत

गृह विज्ञान और कृषि अर्थशास्त्र का मेल कई स्तरों पर दिखाई देता है- 1.पोषण और उत्पादन का तालमेल ▪ गृह विज्ञान घर-परिवार की पोषण संबंधी ज़रूरतें बताता है। ▪ कृषि अर्थशास्त्र इन आवश्यकताओं के आधार पर फसल उत्पादन और नीतियों को दिशा देता है।

2.अपव्यय रोकने के प्रयास ▪ गृह विज्ञान घर में भोजन बर्बाद होने से बचाता है। ▪ कृषि अर्थशास्त्र खेत से बाजार तक की सप्लाई चेन में फसल की बर्बादी को कम करने की रणनीति देता है।

3.महिलाओं की दोहरी भूमिका: ▪ ग्रामीण महिला खेत में काम करती है और घर में पोषण प्रबंधन भी। ▪ इस तरह महिलाएँ खाद्य सुरक्षा की असली धुरी हैं।

नीति और सामाजिक असर

1.पोषण-केंद्रित कृषि ▪ आज सरकारें और एनजीओ पोषण वाली फसलों (जैसे दालें, मोटा अनाज, फल-सब्जियाँ) को बढ़ावा दे रहे हैं। ▪ यह गृह विज्ञान और कृषि अर्थशास्त्र दोनों की साझा चिंता है।

2.उपभोक्ता जागरूकता ▪ गृह विज्ञान परिवारों को यह सिखाता है कि कैसे सही भोजन चुनें, खरीदें और संरक्षित करें। ▪ उपभोक्ता जब जागरूक होंगे तभी कृषि उत्पादन सही दिशा में जाएगा।

3.बाजार में हस्तक्षेप और मूल्य स्थिरता ▪ कृषि अर्थशास्त्र यह स्पष्ट करता है कि यदि कीमतें अस्थिर होंगी तो न तो किसान को लाभ होगा और न ही उपभोक्ता को सुरक्षा। ▪ इसलिए सरकारी नीतियाँ और संस्थागत हस्तक्षेप दोनों स्तरों पर आवश्यक हैं।

निष्कर्ष

गृह विज्ञान और कृषि अर्थशास्त्र का यह मेल भारतीय समाज के लिए दो पहियों वाला रथ है- एक पहिया घर की सेहत और संतुलन का, दूसरा पहिया खेत की समृद्धि और उत्पादन का। दोनों मिलकर ही सतत खाद्य प्रबंधन की यात्रा को संभव बनाते हैं। जब खेत में पैदा हुआ हर अन्नकण घर में सही ढंग से उपयोग होता है, जब घर का हर सदस्य संतुलित और पौष्टिक भोजन खाता है, और जब किसान को उसकी मेहनत का सही मूल्य मिलता है- तभी हम एक समृद्ध, स्वस्थ और सतत

जैन बीज भण्डार
एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510
04/2023-24

डॉ. अंजली कुमारी बिहार कृषि विश्वविद्यालय सबौर
डॉ. तृप्ति कुमारी, डॉ. रंजना सिन्हा बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

हाइड्रोपोनिक्स- पशुधन के लिए हरा चारा उत्पादन का उत्तम विकल्प

भारत में हरे चारे की कमी दूध और मांस उत्पादन को प्रभावित करती है। हमारे देश में पशुओं को गुणवत्तापूर्ण आहार देना एक प्रमुख चुनौती है क्योंकि दिन प्रतिदिन हरे चारे की लगातार कमी और आहार सामग्री की लागत में वृद्धि होती जा रही है। जिसके कारण पशुपालक सरल और किफायती विकल्पों की तलाश कर रहे हैं। हाइड्रोपोनिक्स ऐसी ही एक वैकल्पिक प्रणाली है, जिसमें पशुओं के लिए हरा चारा उगाया जा सकता है। इस तकनीक से पॉलीहाउस के अंदर मिट्टी के बिना केवल जल या पोषक तत्वों से भरपूर घोल में चारे को लगभग 7 दिनों की अल्प अवधि में उगाया जा सकता है। यह तकनीक वर्ष भर नियमित रूप से उच्च गुणवत्ता वाला हरा चारा उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए उपयोगी हो सकती है। हाइड्रोपोनिक चारा अधिक स्वादिष्ट, सुपाच्य और पोषक होता है। इस चारे के सेवन से पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार होता है एवं उनकी उत्पादकता व प्रजनन क्षमता में वृद्धि होती है। हाइड्रोपोनिक चारा पशुओं को खिलाने के लिए एक बेहतरीन विकल्प बन सकता है।

हाइड्रोपोनिक्स क्या है?: हाइड्रोपोनिक्स एक वैज्ञानिक विधि है जिसमें पौधों को मिट्टी के स्थान पर पोषक तत्वों से भरपूर जल घोल में उगाया जाता है। यह विधि आर्थिक रूप से भी किफायती है और पर्यावरणीय दृष्टि से भी अनुकूल है। पहले इस विधि का उपयोग मुख्य रूप से सब्जियाँ उगाने के लिए किया जाता था, लेकिन अब कई देशों में इसका उपयोग पशुओं के लिए वर्षभर हरा चारा उत्पादन में हो रहा है ताकि भूमि पर दबाव कम किया जा सके।

हाइड्रोपोनिक चारे के लाभ * परंपरागत विधियों की तुलना में हाइड्रोपोनिक चारा अधिक पोषक तत्वों से भरपूर होता है। * इस विधि में कम जल का उपयोग होता है जिससे जल संरक्षण होता है। * हाइड्रोपोनिक चारा शर्करा, विटामिन्स, लाइसिन से भरपूर होता है तथा इसमें स्टार्च की मात्रा कम होती है। * इसमें सूक्ष्म पोषक तत्व और फाइटोन्यूट्रिएंट्स होते हैं जो पशुओं के स्वास्थ्य और प्रजनन में सहायक होते हैं। * इससे दूध और मांस की गुणवत्ता में भी सुधार हो सकता है जैसे कि ओमेगा-3 फैटी एसिड और कन्जुगेटेड लिनोलेइक एसिड की मात्रा बढ़ जाती है।

हाइड्रोपोनिक चारे के लिए उपयुक्त फसलें: वपीली मक्का इड्रोपोनिक्स तकनीक से उगाया जाने वाला सबसे लोकप्रिय चारा है। यह पारंपरिक मक्का की तुलना में 5-6 गुना अधिक उत्पादन देती है।

वलोबिया, कुल्थी, सनई, मडुआ, बाजरा, काकुम और ज्वार इत्यादि फसलें भी इस तकनीक से अच्छी तरह उगाई जा सकती हैं।

हाइड्रोपोनिक चारे में बीज, जड़ें, तना और पत्तियाँ सभी हिस्से होते हैं और यह चारा अत्यधिक स्वादिष्ट और बिना अपव्यय वाला होता है। जबकि परंपरागत चारे में सिर्फ तना और पत्तियाँ ही पशुओं को खिलाने में उपयोग होती है।

हाइड्रोपोनिक चारा उत्पादन की प्रणाली

1.बीज की तैयारी और धुलाई: अच्छी गुणवत्ता के बीज चुनें (क्योंकि क्योकि बीज की लागत कुल लागत का 85-90% होता है)। खराब या टूटे हुए बीज नहीं लेने चाहिए। बीजों को धूप में सुखाकर, 5 मिनट तक नल के पानी से धोना चाहिए ताकि मिट्टी और खराब बीज अलग हो जाएँ। फिर इन्हें 0.1-1.5% सोडियम हाइपोक्लोराइट या 1-2% हाइड्रोजन पेरोक्साइड घोल में कुछ घंटों तक भिगोना चाहिए (फसल के अनुसार समय अलग-अलग होता है)। अंत में 50-100 ग्राम नमक डालकर अंतिम बार धोना चाहिए जिससे बीजों में फफूंदी न लगे।

2.बीज भिगोना: बीजों को ताजे वायु संचालित पानी में 4 से 16 घंटे तक भिगोना चाहिए। यदि बीज कठोर हैं, तो गर्म पानी में डुबोकर रखे। ऊपर तैरते बीज (जो अंकुरित नहीं होंगे) हटा देना चाहिए।

3.अंकुरण : बीजों को 1 सेमी गहराई तक प्लास्टिक या धातु की ट्रे में फैलाना चाहिए। ट्रे में जल निकास के लिए छेद हों। पौधे की वृद्धि के लिए खनिज तत्वों से भरपूर पोषक घोल का प्रयोग किया जाता है। मक्का- 6.4-7.6 कि.ग्राम/वर्ग मीटर एवं अन्य फसलें- 4-6 कि. ग्राम/वर्ग मीटर बीज दर उपयुक्त है।

4.पर्यावरणीय परिस्थितियाँ: हाइड्रोपोनिक चारे के उत्पादन में आदर्श तापमान- 19-22° सेंटीग्रेड, आर्द्रता 60%, प्रकाश 2000 लक्स, रोशनी की अवधि 12-16 घंटे, वायु संचारण हर 2 घंटे पर 3 मिनट होना आवश्यक है। इस प्रणाली से ठंडे मौसम के लिए गेहूं और जई उपयुक्त हैं जबकि गर्म मौसम में मक्का का बेहतर उत्पादन होता है।

5.ट्रे लोडिंग और रैकिंग: हाइड्रोपोनिक चारा उगाने हेतु प्लास्टिक ट्रे(46×83×5 सेमी) का उपयोग होता है, जिनमें 1-1.25 कि.ग्राम बीज डालकर लगभग 5.5-7.5 कि. ग्राम हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। ट्रे रखने हेतु जस्ती लोहे की पाइपों या एंगल बार से बना ढांचा तैयार किया जाता है। बाजार में अन्य आकार जैसे 104×104×18 सेमी, 135×135×18 सेमी, 74×135×18 सेमी के ट्रे भी उपलब्ध हैं ।

6.ट्रे का रखरखाव: इन्हें साफ और कीटाणुरहित किया जाना चाहिए। अंकुरण के बाद ट्रे को स्प्राउटिंग सेक्शन में रखा जाता है, जहाँ पंक्तियों के बीच की ऊँचाई लगभग 5 इंच होती है।

7.सिंचाई और ट्रे स्थानांतरण: अंकुरित बीजों को ताजे पानी या पोषक तत्वों से युक्त घोल से सिंचित किया जाता है। ट्रे को सीधी धूप, तेज हवा और भारी वर्षा से बचाना चाहिए। गर्मी के मौसम में सिचाई के लिए हर 2 घंटे में पानी देना चाहिए। जबकि ठंडे मौसम में हर 4 घंटे में पानी देना चाहिए। ड्रिप या स्प्रे सिंचाई का उपयोग करके बीजों को नम रखा जाना चाहिए लेकिन पानी से भरपूर नहीं होना चाहिए। ट्रे को रोजाना एक स्तर ऊपर स्थानांतरित किया जाना चाहिए ताकि वह विकास चक्र में आगे बढ़े। अंकुरित ट्रे को कटाई तक न छेड़ा जाए अन्यथा उनकी वृद्धि प्रभावित हो सकती है।

8. कटाई और पशुओं को खिलाना: 7-8 दिन में हरे चारे की चटाई तैयार हो जाती है। चारे की चटाई को ट्रे से निकाल कर छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है ताकि पशु आसानी से खा सकें। इस चारे को सूखे चारे के साथ मिलाकर दिया जा सकता है। एक अध्ययन के अनुसार, 5-10 हाइड्रोपोनिक चारा रोज देने से 8-13 प्रतिशत तक दूध उत्पादन में वृद्धि देखी गई।

पोषण मूल्य: अंकुरण के दौरान स्टार्च का विघटन होकर घुलनशील शर्करा बनती है। इससे सूखा पदार्थ और कार्बनिक तत्व घटते हैं, परंतु ईथर एक्सट्रैक्ट (वसा तत्व) बढ़ते हैं। क्रूड फाइबर, न्यूट्रल डिटर्जेंट फाइबर, एसिड डिटर्जेंट फाइबर और लिनोलेइक एसिड की मात्रा बढ़ जाती है।

हाइड्रोपोनिक तकनीक के लाभ:यह तकनीक पर्यावरण के अनुकूल है। हाइड्रोपोनिक चारा बिना फफूंद के 15-32° सेंटीग्रेड तापमान और 80-85% आर्द्रता के बीच उगाया जा सकता है। यह चारा उच्च गुणवत्ता वाला, पोषक और रोगाणु-मुक्त होता है। इसमें जल और श्रम की बहुत कम आवश्यकता होती है। यह चारा पशुओं के स्वास्थ्य और प्रजनन क्षमता में सुधार करता है।

हाइड्रोपोनिक खेती के लिए सावधानियां: हाइड्रोपोनिक चारा उत्पादन के लिए केवल प्रमाणित संस्थानों से बीज खरीदें। कीटनाशकों या फफूंदनाशकों से उपचारित बीज का प्रयोग न करें। इनका अवशेष पशुओं के स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर डाल सकता है। हर 3 दिन में पानी बदलें ताकि रोगाणु न पनपें। हाइड्रोपोनिक चारा के लिए ग्रीन शेड नेट का उपयोग आवश्यक है, जिससे पर्याप्त प्रकाश, तापमान और आर्द्रता मिले और पत्तियाँ पीली न हों। छोटे किसान रु. 30,000-35,000 की लागत में 25-100 किग्रा/दिन उत्पादन की यूनिट लगा सकते हैं। चारा खिलाने की लागत 25-30 प्रतिशत तक घट सकती है।

निष्कर्ष: हाइड्रोपोनिक चारा उत्पादन भारत के दुग्ध उद्योग के लिए संजीवनी बन सकता है विशेष रूप से जहाँ जल संकट है, भूमि सीमित है, जलवायु परिवर्तन और ईंधन लागत जैसी समस्याएँ हैं। छोटे और सीमांत किसान इसे अपनाकर साल भर चारे की समस्या से छुटकारा पा सकते हैं। यह प्रणाली युवा उद्यमियों के लिए अवसर है, जो बड़े पैमाने पर यूनिट स्थापित कर ऑनलाइन फॉडर मार्केटिंग शुरू कर सकते हैं। हाइड्रोपोनिक तकनीक हरे चारे के उत्पादन का एक टिकाऊ समाधान है जो छोटे किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। यह खाद, पानी, भूमि और श्रम की बचत करते हुए पशुपालन को लाभकारी और पर्यावरण-अनुकूल बनाता है।

शीतला कृषि सेवा केन्द्र
बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)
99267-31867, 83055-69923
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।
पता: पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)
01/203-24

डॉ. दिनेश रजक (सह प्राध्यापक)
डॉ. विशाल कुमार (सह प्राध्यापक)
डॉ. देवेन्द्र कुमार (प्राध्यापक)
प्रसंसकरण एवं खाद्य अभियन्त्रिकी विभाग, कृषि अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी महविद्यालय, डॉ. रा.प्र.कें. कृ. वि. पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

तेल निष्कर्षण मशीनरी को अपनाने से किसानों के आर्थिक लाभ

परिचय

कई विकासशील क्षेत्रों में कृषि आज भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनी हुई है। विभिन्न कृषि उत्पादों में तिलहन जैसे सूरजमुखी, मूंगफली, तिल, सरसों और सोयाबीन न केवल नगदी फसलों के रूप में महत्वपूर्ण हैं, बल्कि स्थानीय आहार के आवश्यक घटक भी हैं। परंपरागत रूप से छोटे किसान आधुनिक प्रसंस्करण उपकरणों, विशेषकर तेल निष्कर्षण मशीनरी, तक सीमित पहुँच रखते थे। इसके परिणामस्वरूप वे अपने कच्चे उत्पादों को कम कीमतों पर बेचने के लिए मजबूर थे और तेल प्रसंस्करण से मिलने वाले मूल्य संवर्धन से वंचित रह जाते थे।

हाल के वर्षों में तेल निष्कर्षण मशीनरी की उपलब्धता और अपनाने में वृद्धि ने इस परिदृश्य को बदलना शुरू कर दिया है। तकनीक तक बेहतर पहुँच मिलने से किसान केवल उत्पादक ही नहीं रहे, बल्कि प्रसंस्करणकर्ता और उद्यमी भी बनते जा रहे हैं। यह बदलाव न केवल उत्पादकता और लाभप्रदता को बढ़ा रहा है बल्कि समावेशी ग्रामीण विकास को भी प्रोत्साहित कर रहा है। यह लेख इस बात की पड़ताल करता है कि तेल निष्कर्षण मशीनरी को अपनाने से किसानों के आर्थिक लाभ किस प्रकार बढ़ते हैं।

1. **किसानों पर आर्थिक प्रभाव:** तेल निष्कर्षण मशीनरी का प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ उस मूल्य संवर्धन में निहित है जिसे यह संभव बनाती है। पारंपरिक रूप से किसान कच्चे तिलहन को स्थानीय व्यापारियों या तेल मिलों को कम कीमतों पर बेचते थे। लेकिन मशीनरी तक पहुँच मिलने पर वे स्वयं तेल निकालकर बेच सकते हैं—अक्सर कच्चे बीजों की तुलना में दुगुने या तिगुने दाम पर।

उदाहरण के लिए, एक किसान जो पहले सूरजमुखी के बीज 0.40 प्रति किलोग्राम की दर से बेचता था, अब तेल निकालकर 1.50 प्रति लीटर में बेच सकता है। साथ ही, उप-उत्पाद जैसे खली (oilseed cake) भी बाज़ार में अच्छे दाम पर बिकते हैं। यह ऊर्ध्वाधर एकीकरण (vertical integration) न केवल आय में वृद्धि करता है बल्कि किसानों की सौदेबाजी की शक्ति भी बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, किसान स्थानीय स्तर पर तेल प्रसंस्करण करके परिवहन और प्रोसेसिंग लागत की बचत करते हैं। इन बचतों के साथ-साथ अधिक बिक्री मूल्य जुड़ जाने से घरेलू आय में उल्लेखनीय बढ़ोतरी होती है। कुछ क्षेत्रों में इस तकनीक को अपनाने के पहले दो वर्षों में किसानों की आय में 30-50% तक की वृद्धि देखी गई है।

रोजगार और उद्यमिता: तेल निष्कर्षण मशीनें केवल मशीन मालिक को ही लाभ नहीं देतीं, बल्कि इसके अतिरिक्त भी अवसर उत्पन्न करती हैं। मशीनों को चलाने और रखरखाव करने के लिए कुशल श्रमिकों की माँग ग्रामीण क्षेत्रों में नए रोज़गार के अवसर पैदा करती है। युवा, जो अन्यथा शहरों की ओर पलायन कर सकते थे, अब अपने समुदायों में ही सार्थक कार्य पा रहे हैं। इसके अलावा, उद्यमी किसान अपने पड़ोसियों को तेल निष्कर्षण सेवाएँ प्रदान करने लगे हैं, जिससे सूक्ष्म उद्यम (micro-enterprises) विकसित हो रहे हैं जो व्यापक समुदाय को लाभ पहुँचाते हैं। कुछ सहकारी समितियों ने छोटे तेल मिल स्थापित किए हैं जहाँ सदस्य अपनी फसल लाकर प्रसंस्करण कराते हैं और बदले में नाममात्र का शुल्क देते हैं। यह विशेष रूप से महिला-नेतृत्व वाली सहकारी समितियों में लाभकारी सिद्ध हुआ है, जहाँ तेल प्रसंस्करण सामुदायिक आर्थिक विकास का इंजन बन गया है। ये उद्यम अक्सर स्थानीय स्तर पर उत्पादित तेल की पैकेजिंग और ब्रांडिंग तक विस्तार करते हैं, जिससे आपूर्ति श्रृंखला (supply chain) से और अधिक मूल्य अर्जित किया जा सकता है और ग्रामीण औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

चुनौतियाँ और समाधान: स्पष्ट लाभों के बावजूद, तेल निष्कर्षण मशीनरी को अपनाने में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। उच्च प्रारंभिक लागत कई छोटे किसानों के लिए बाधा बनी रहती है। तकनीकी ज्ञान और रखरखाव सहायता की कमी भी सतत उपयोग को सीमित कर सकती है। दूरस्थ क्षेत्रों में बिजली या ईंधन की कमी संचालन को और जटिल बना देती है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए सरकारों और गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) ने सब्सिडी, प्रशिक्षण कार्यक्रम और सूक्ष्म-वित्त योजनाएँ शुरू की हैं। सहकारी स्वामित्व मॉडल लागत और जोखिम को साझा करने में मदद करते हैं। कुछ स्टार्टअप ने सौर-ऊर्जा से चलने वाली तेल निष्कर्षण इकाइयाँ पेश की हैं, जिससे अविश्वसनीय बिजली आपूर्ति पर निर्भरता घटती है। इसके अलावा, ग्रामीण तेल उत्पादकों को शहरी और अंतरराष्ट्रीय खरीदारों से जोड़ने वाले बाज़ार-सम्बंधन कार्यक्रमों की भी आवश्यकता है ताकि सतत माँग और उचित मूल्य सुनिश्चित किया जा सके। इन समाधानों को व्यापक स्तर पर लागू करने में नीतिनिर्माताओं और निजी क्षेत्र दोनों की अहम भूमिका है।

मूल्य संवर्धन से आय में वृद्धि: तेल निष्कर्षण मशीनरी का सबसे तात्कालिक और प्रत्यक्ष प्रभाव किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि है। स्वयं तेल बीजों को प्रसंस्कृत करके किसान अपने उत्पाद में मूल्य संवर्धन कर सकते हैं। कच्चे बीजों को कम कीमत पर बेचने के बजाय वे तेल निकालकर उसे अधिक मूल्य पर बेच सकते हैं। इसके अतिरिक्त, उप-उत्पाद – जैसे तेल की खली (oil cake) – भी पशु चारे या जैविक खाद के रूप में बाज़ार में बिक सकती है। उदाहरण के लिए, एक किसान जो 1,000 किलोग्राम मूंगफली का उत्पादन करता है, पहले इसे बिचौलिये को 400 में बेचता था। लेकिन तेल प्रेस की सुविधा होने पर वही किसान लगभग 400 लीटर तेल और 600 किलोग्राम खली निकाल सकता है, जिससे कुल 1,000 या उससे अधिक की आमदनी हो सकती है। यह अतिरिक्त आय किसानों के परिवारों को बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ और कृषि में पुनर्निवेश के अवसर प्रदान करती है।

स्थानीय रोजगार और ग्रामीण उद्यमिता: तेल निष्कर्षण मशीनरी केवल व्यक्तिगत किसान को ही नहीं, बल्कि स्थानीय रोजगार और उद्यमिता को भी प्रोत्साहित करती है। कई क्षेत्रों में किसान सहकारी समितियाँ या छोटे उद्यम बनाकर संयुक्त रूप से तेल प्रेस का स्वामित्व और संचालन करते हैं। ये समूह मशीन ऑपरेटर, रखरखाव कर्मी, पैकेजिंग और विपणन जैसे कार्यों के लिए रोजगार के अवसर पैदा करते हैं। साथ ही, तेल प्रसंस्करण इकाइयाँ अक्सर अन्य ग्रामीण व्यवसायों का केंद्र बन जाती हैं। महिलाओं की सहकारी समितियाँ विशेष रूप से तेल प्रसंस्करण को आय अर्जित करने और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के साधन के रूप में अपना रही हैं। कुछ समूह पैकेजिंग, ब्रांडिंग और प्रत्यक्ष बिक्री तक भी विस्तार कर रहे हैं, चाहे वह स्थानीय बाज़ार हों या खुदरा दुकानें। यह तरंग प्रभाव (ripple effect) ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अधिक विविध और मज़बूत बनाता है, एकल फसलों या बाज़ारों पर निर्भरता कम करता है और ग्रामीण से शहरी पलायन को घटाता है।

कटाई के बाद क्षति में कमी और बेहतर तरीके से बाज़ार तक पहुचना: तेल निष्कर्षण मशीनरी कटाई के बाद होने वाले नुक़सान को भी कम करती है। तिलहन जल्दी खराब हो सकते हैं और उनकी गुणवत्ता गिर सकती है यदि उन्हें समय पर बेचा या प्रसंस्कृत न किया जाए। स्थानीय स्तर पर मशीनरी उपलब्ध होने से किसान अपनी फसल को जल्दी प्रसंस्कृत कर सकते हैं, जिससे गुणवत्ता सुरक्षित रहती है और खराब होने की संभावना घटती है। इसके अलावा, तेल को कच्चे बीजों की तुलना में संग्रहित और परिवहन करना आसान होता है, और इसे अधिक लचीले ढंग से बाज़ार में बेचा जा सकता है। किसान तेल को स्थानीय स्तर पर बेच सकते हैं, शहरी बाज़ारों को आपूर्ति कर सकते हैं या यदि गुणवत्ता मानकों को पूरा किया जाए तो निर्यात भी कर सकते हैं। जैसे-जैसे किसान प्रसंस्करण और विपणन का अनुभव प्राप्त करते हैं, वे बेहतर बाज़ार संबंध और सौदेबाजी शक्ति विकसित करते हैं और आपूर्ति श्रृंखला में अधिक हिस्सा प्राप्त करते हैं।

निष्कर्ष: तेल निष्कर्षण मशीनरी को अपनाना तिलहन की खेती करने वाले किसानों के लिए बदलावकारी साबित हो रहा है। खेत स्तर पर मूल्य संवर्धन की सुविधा देकर यह न केवल आय बढ़ाता है बल्कि रोजगार सृजित करता है और ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाता है। अब किसान केवल कच्चा उत्पाद बेचने वाले नहीं रह गए, बल्कि छोटे पैमाने के उत्पादक और उद्यमी बनते जा रहे हैं।

डॉ सुनील कुमार मंडल एवं डॉ सुरेन्द्र प्रसाद
सहायक प्राध्यापक, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर- 847403
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि वि.वि., पूसा, समस्तीपुर, बिहार

नींबूवर्गीय फलों का तुड़ाई उपरांत रोगों का प्रबंधन

विश्व के लगभग 100 देशों में नीबू वर्गीय फलों की बागवानी व्यावसायिक स्तर पर की जाती है। विश्व स्तर पर नीबूवर्गीय फलों के संपूर्ण क्षेत्रफल का 41 प्रतिशत संतरा, 23 प्रतिशत नारंगी और लगभग 27 प्रतिशत नीबू व लेमन का उत्पादन की दृष्टि से संतरा लगभग 42.5 प्रतिशत, माल्टा 30.3 प्रतिशत और नीबू व लेमन का उत्पादन 22.3 प्रतिशत है। भारत में उगाए जाने वाले फलों नीबू वर्गीय में फलों का तीसरा स्थान है। देश में फलों के कुल क्षेत्रफल के लगभग 9 प्रतिशत हिस्से में ये फल उगाए जाते हैं तथा ये कुल फलोत्पादन का 8 प्रतिशत अंशदान करते है। भारत में यद्यपि ये फल कई शताब्दियों से पैदा किए जा रहे हैं, परन्तु इनकी व्यवसायिक खेती लगभग 30-40 साल पहले से ही आरंभ हुई। नीबू वर्गीय फलों के अंतर्गत माल्टा, संतरा, नीबू, लेमन, ग्रेपफरूट, चकोतरा, तुरंज और मीठा नीबू आदि फल आते हैं।

देश के विभिन्न राज्यों में विभिन्न नीबू वर्गीय फलों की किस्मों को उगाया जाता है। ये फलें लगभग प्रत्येक राज्य में उगाए जाते है। इन फलों को उगाए जाने की दृष्टि से महाराष्ट्र प्रथम, आंध्र प्रदेश द्वितीय एवं गुजरात तृतीय स्थान पर हैं। उत्पादन की दृष्टि से आंध्र प्रदेश प्रथम, महाराष्ट्र द्वितीय, व कर्नाटक तृतीय स्थान पर हैं, परन्तु इन फलों की सबसे अधिक उत्पादकता (22.5 मीट्रिक टन/हैक्टर) कर्नाटक की है। भारत में संतरे की व्यावसायिक बागवानी मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मेघालय, पश्चिम बंगाल और कर्नाटक में की जाती है। किन्तु बागवानी मुख्यतः पंजाब, राजस्थान, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश की निचली पहाड़ियों पर की जाती है। नारंगी की बागवानी महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में तथा नीबू और लेमन की बागवानी बिहार, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश और पंजाब में की जाती है। ग्रेपफ्रूट की बागवानी पंजाब तथा हरियाणा में तथा चकोतरा की बागवानी पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और असम आदि राज्यों में मामूली स्तर पर की जाती है।देश में उगाए जाने वाले नीबू वर्गीय फलों की विभिन्न किस्में हैं। कुछ किस्मों को बाहरी देशों से लाया गया है व कुछ देश में ही विकसित की गई है। देश में सन्तरे की मुख्यतः तीन किस्में हैं-कूर्ग, खासी तथा नागपुरी। कुछ किस्मों को विशेषकर किन्नू को दूसरे देशों से आयातित किया गया है। किन्नू की बागवानी उत्तर भारत के कई क्षेत्रों जैसे पंजाब, राजस्थान व हिमाचल प्रदेश की निचली पहाड़ियों में काफी सफल पाई गई है। इसकी बागवानी दिनों दिन बढ़ती जा रही है, क्योकि यदि पेड़ों को ठीक से देखभाल की जाए तो इसमें सूखे का रोग कम लगता है। इसके अतिरिक्त सतसुमा, विलो मैंडरीन, डैसी टेन्जरीन आदि किस्मों को दूसरे देशों से लाया गया है। परन्तु, इन किस्मों में से कोई भी देश में अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी। उत्तर-पूर्वी राज्यों में खासी व कर्ना आदि किस्में प्रचलित हैं। उत्तरी भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में श्रीनगर व नूरपुर लोकल किस्में भी प्रचलित हैं।

इन फलों का छिलका पैक्टिन का प्रमुख स्त्रोत है। ये फल कैल्शियम और फॉस्फोरस आदि पोशक तत्वों के भी अच्छे स्त्रोत होते है कुछ किस्मों के फूलों, पत्तियों और छिलकों से सुगंधित तेल भी निकाला जाता है। नीबू वर्गीय फल विटामिन-'सी' के अच्छे स्त्रोत माने जाते हैं। मीठे ग्रुप के फलों में साधारणतः 8-12% घुलनशील ठोस पदार्थ पाए जाते है एवं खट्टे रूप में अम्लता 0.5 से 1.5 विगलन (पेनिसिलियम डिजिटेटम), नीली मोल्ड विगलन (पेनिसिलियम इटेलिकम), एस्परजिलस विगलन (एस्परजिलस स्पीसिज), राइजोपस विगलन (राइजोपस स्टोलोनिफर) तथा खट्टे विगलन (जीवोट्राइकम सीट्री-औरेन्टी) आदि। इस सभी रोगों के रोग कारकों, लक्षणों और प्रबंधन का वर्णन निम्नलिखित है।

नीबू वर्गीय फलों के तुड़ाई उपरान्त प्रमुख रोगों के लक्षण और रोग कारक:

1. **मोल्ड विगलन:** यह रोग नीबू वर्गीय फलों में तुड़ाई उपरांत लगने वाले प्रमुख रोगों में से एक है। हरी मोल्ड विगलन रोग पेनिसिलियम डिजिटेटम नामक कवक के द्वारा होता है। यह रोग संतरा उगाए जाने वाले सभी देशों में पाया जाता है। रोग कारक बीजाणु फलों पर घाव लगे स्थान पर संक्रमण करते हैं तथा वहां पर शुरू में रोग कारक सफेद कवरकजाल विकसित करते हैं। वे हरे बीजाणु पैदा करते है। ये सफेद कवक जाल के साथ हरे बीजाणु फलों पर फैल जाते है, जिससे फल पर पहले सफेद तथा बाद मे हरे ऊतकक्षमी विक्षति दिखाई देती है। सर्वमिन फल सड़ने लगते हैं। इस कवक के बीजाणु हवा द्वारा या एक फल के दूसरे फल के संपर्क में आने पर फैलते हैं। इसके बीजाणु बगीचे, डिब्बाबन्दी घर में, औजार, भण्डारण कक्ष, परिवहन साधनों तथा फल मण्डी आदि स्थानों पर पाए जाते हैं और स्वस्थ फलों को सक्रमित करते हैं।

2. **नीली मोल्ड विगलन:** नीबू बर्गीय फलों में तुड़ाई उपरांत लगने वाले रोगों में यह दूसरा प्रमुख रोग है। नीली मोल्ड विगलन पेनिसिलियम इटेलिकम नामक कवक से होता है। यह नीबू वर्गीय फलों को उगाने वाले प्रत्येक क्षेत्र में पाया जाता है यह रोग कारक भी चोट लगे स्थान पर संक्रमण करता है, जिसमें फलों पर जलीय ऊतकक्षमी विक्षति बनती है। जिस पर पहले छिलके पर सफेद कवकजाल दिखाई देता है तथा बाद में उसे नीले मोल्ड कहते हैं। इनका संक्रमण होने पर फल सड़ने लगता है। कभी-कभी नीली मोल्ड के साथ हरी मोल्ड का संक्रमण भी एक ही फल पर होता है। नीली मोल्ड रोग कम तापमान पर अधिक सक्रिय होता है, जबकि तापमान बढ़ने पर इसकी सक्रियता में कमी आ जाती है। यह डिब्बे में फलों को अधिक नुकसान पहुंचाता है

3. **खट्टी विगलन:** यह रोग जीवाट्राइकम सीट्री-औरेन्टी नामक कवक से होता है। यह नीबू वर्गीय फलों के सभी किस्मों को संक्रमित करता है। यह रोग कारक भी चोट लगे स्थान पर आक्रमण करता है। इनका संक्रमण पके या अधिक पके हुए फलों पर होता है। इसके लक्षण शुरू में जलीय विक्षति के रूप में देखे जा सकते हैं जो बाद में हल्के से गहरे-पीले और उठे हुए विगलन क्षेत्र के रूप में फलों पर दिखाई देते हैं। छिलके की उपरी परत को हटाने पर, ये क्षेत्र आसानी से अलग हो जाते है। सड़े हुए फल के उतक से अस्लीय दुर्गन्ध आती है। ये कवक के बीजाणु को संक्रमित फलों से भण्डारण किए चोटिल दूसरे फलों तक पहुंचाती हैं जिससे स्वस्थ फल संक्रमित हो जाते हैं। यह कवक भूमि में पाया जाता है तथा फल की सतह पर हवा द्वारा मृदाकणों के माध्यम से पहुंचता है। इस रोग का विकास 23-30 सेल्सियस तापमान पर अधिक होता है।

4. **श्यामव्रण:** यह रोग कोलेटोट्राइकम ग्लोइयोस्पोराइड्स नामक कवक से होता है। इस रोग का संक्रमण तुडाई के पहले टहनियों और शाखाओं पर होता है तथा फलों पर इसके बीजाणु सुरक्षित अवस्थाओं में होते हैं। भण्डारण के समय फलों पर श्यामव्रण विक्षतियां प्रांरभ में सिलवरी धूसर तथा पपड़ी की तरफ तथा थोड़ी घसी हुई होती हैं। बाद में संक्रमित छिलके भूरे, काले व धूसर रंग के हो जाते हैं तथा विगलन बढ़ने से मुलायम हो जाते हैं। धीरे-धीरे इन विक्षतियों की आकृति और आकार बढ़ जाता है। आर्द्र मौसम में इन विक्षतियों पर गुलाबी रंग के बीजाणु बनते हैं, जिसके कारण चोटिल फलों पर सड़न होने लगता है जो सख्त व धसे हुए सूखे विक्षतियां पैदा करते हैं तथा बाद में इन विक्षतियों पर कवक के काले-काले बिन्दु बनते हैं।

5. **एल्टरनेरिया फल विगलन (काला विगलन):** काला विगलन रोग, एल्टरनेरिया सीट्री नामक कवक से होता है। इस रोग का संक्रमण तुड़ाई से पहले बगीचे से ही शुरू हो जाता है, लेकिन रोगकारक के सुसुप्तावस्था में रहने से इस रोग के लक्षण फलों पर स्पष्ट दिखाई नही देते हैं। भण्डारण के समय रोगकारक के लिए अनुकूल वातावरण मिलने पर इसके बीजाणु क्रियाशील होकर रोग के लक्षण प्रकट करते है। रोगकारक फल के अंदर प्रवेश करके उसके केन्द्रीय भाग को प्रभावित करता है और छिलके के आंतरिक ऊतकों तक फैल जाता हैं। फलों में विगलन के बाहरी लक्षण दिखने से पहले काले रंग का आन्तरिक भाग सड़ने लगता है। इस रोग से जूस बनाने वाली कंपनियों को समस्याएं होती हैं, क्योंकि जूस दूषित हो जाता है।

6. **एस्परजिलस विगलन:** यह रोग एस्परजिलस स्पीसिज, जिसमें एस्परजिलस नाइजर नामक कवक प्रमुख रूप से भण्डारण के समय संक्रमण करता है। फलों पर छोटे, गोलाकार, जलीय विक्षतियां शुरू में दिखाई देती हैं जो बाद में बढ़कर भूरे रंग में बदल जाती है। रोगकारक के सफेद कवकजाल प्रभावित वाले स्थानों पर दिखाई देते हैं, जो बाद में उसपर काले रंग के बीजाणु बनाते हैं। संक्रमण के 8-10 दिन बाद पूरा फल सड़ जाता है तथा सड़े हुए फलों से दुर्गन्ध आने लगती है। इस रोग का प्रकोप 30-35 सेल्सियस तापमान और अधिक सापेक्षिक आर्द्रता होने पर अधिक होता है।

डिप्लोडिया स्तंभ अंतः विगलन: यह रोग डिप्लोडिया नेटेलिन्सिस नामक कवक से होता है। इस रोग का संक्रमण भी बगीचे से शुरू होता है तथा रोगकारक के बीजाणु सुसुप्तावस्था में फूलों के बाह्य पुंज में रहते हैं और जब फलों का आकार मटर के दाने के बराबर होता हैं, तो वे फल के स्तंभ अंत भाग पर रहते हैं। भण्डारण के समय, अनुकूल वातावरण मिलने पर बीजाणु अंकुरित होते हैं और इस भाग को संक्रमित करते हैं। कोर भाग से रोग तेजी से बढ़ता है, जिससे मुलायम, भूरी-काली सड़न के लक्षण फलों के दोनों अंत पर दिखाई देते हैं। रोगकारक छिलकों पर एक समान विकसित नहीं होता है और काले-भूरे बदरंग विक्षति अंगुली की तरह दिखाई देती है। कवक घाव लगे स्थान से भी संक्रमित करता है और मुलायम भूरे - काले विक्षति विगलन तेजी से बढ़ते हैं, जिससे फल सड़ने लगता है। यह रोग डिब्बों में एक फल से दूसरे फलों में नहीं फैलता है।

7. **फोमोप्सिस स्तंभ अंतः विगलन:** यह रोग फोमोप्सिस सीट्री नामक कवक से होता है। इस रोग का संक्रमण भी बगीचे से शुरू हो जाता है। रोगकारक के बीजाणु सुसुप्तावस्था में फल के बटन तथा स्तंभ अंत भाग में रहते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर, कवक के बीजाणु अंकुरित होते हैं तथा फल को संक्रमित करते हैं। संक्रमित ऊतक सिकुड़ जाते हैं तथा एक सीधी रेखा जो संक्रमित तथा स्वस्थ ऊतकों को विभाजित करती है, स्पष्ट दिखाई देती है। सड़न बढ़ने से छिलके और कोर को प्रभावित करते हुए पूरे फल को सड़ा देता है, लेकिन दूसरे पास वाले स्वस्थ फलों को संक्रमित नहीं करता है। इस प्रकार के विगलन से स्तंभ अंतः विगलन गहरे हल्के भूरे रंग के दिखाई देते है। यदि फलों को कमरे के तापमान पर भण्डारण किया जाता है तो तुड़ाई के 10-20 दिन बाद इस रोग के लक्षण फलों पर दिखाई देने लगते हैं।

8. **राइजोपस विगलन:** यह रोग राइजोपस स्टोलोनिफर नामक कवक से भण्डारण के समय होता है। रोग के कारण फलों पर मुलायम, जलीय, धसे हुए विक्षतियों पर पहले रोगकारक के सफेद कवकजाल पाए जाते हैं। बाद में उस पर काले, छोटे, गोलाकार बीजाणुधानी बनती है, जो बहुत से बीजाणुओं को पैदा करती हैं। संक्रमित फल तेजी से सड़ते हैं और पड़ोसी फलों को भी संक्रमित कर देते हैं। इस रोग का प्रकोप भण्डारण तथा परिवहन के समय तापमान बढ़ने पर अधिक होता है।

निष्कर्षः देश के विभिन्न राज्यों में विभिन्न नीबू वर्गीय फलों की प्रजातियों का बागवानी की जाती है। नीबू वर्गीय फलों के अंतर्गत माल्टा, संतरा, नीबू, लेमन, ग्रेपफ्रूट, चकोतरा, मीठा नीबू आदि फल आते हैं। इन फलों के छिलकों में पैक्टिन पाया जाता है तथा ये कैल्शियम और फॉस्फोरस के अच्छे स्त्रोत होते है जो कि तुड़ाई, दुलाई, परिवहन, भंडारण और विपणन के दौरान चोट, घाव, दाब और विभिन्न रोगों के कारण लगभग 30-35 प्रतिशत फलों की क्षति हो जाती है। यदि वैज्ञानिक विधि से इनकी देखरेख की जाये तो इस क्षति को काफी कम किया जा सकता है।

इंजी. अमित गुप्ता, डॉ. दिलीप कुमार कुशवाहा
डॉ. पी.के. साहू, डॉ. उत्कर्ष द्विवेदी, इंजी. गौरब चौधरी
रोबोटिक्स एवं एआई लेबोरेटरी, कृषि अभियांत्रिकी संभाग,
भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,नई दिल्ली

बैटरियों के उचित रख-रखाव से किसान कैसे बढ़ाएं कृषि मशीनों का जीवनकाल

आज के समय में कृषि क्षेत्र में मशीनरी का उपयोग लगातार बढ़ रहा है, जिससे बैटरियों की आवश्यकता भी तेजी से बढ़ी है। आधुनिक कृषि उपकरण जैसे ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, ड्रोन, पंप सेट, स्वायत्त रोबोट और स्प्रेयर अब बैटरियों पर निर्भर होते हैं, जो उन्हें ऊर्जा प्रदान कर उनके संचालन को अधिक प्रभावी और कुशल बनाती हैं। पारंपरिक ईंधन पर चलने वाले उपकरणों की तुलना में बैटरी से चलने वाली मशीनें अधिक पर्यावरण अनुकूल होती हैं, क्योंकि ये कम ध्वनि और वायु प्रदूषण करती हैं। इससे किसानों को कृषि मशीनरी का रखरखाव में भी कम खर्च करना पड़ता है। वर्तमान में मुख्य रूप से लीड-एसिड और लिथियम-आयन बैटरियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें लिथियम-आयन बैटरियां हल्की और अधिक प्रभावशाली होती हैं, जबकि लीड-एसिड बैटरियां सस्ती होती हैं।

बैटरियों का सही उपयोग और रखरखाव कृषि मशीनों की कार्यक्षमता बनाए रखने के लिए बेहद आवश्यक है। बैटरियों से गैस और संक्षारक एसिड निकलते हैं, जिससे सुरक्षा नियमों का पालन करना जरूरी हो जाता है। गलत चार्जिंग प्रक्रिया और नियमित जांच में लापरवाही से बैटरियां जल्दी खराब हो सकती हैं, जिससे किसानों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। राष्ट्रीय बैटरी दिवस (18 फरवरी) हमें इन बातों की याद दिलाता है कि बैटरियों का सुरक्षित और प्रभावी उपयोग कृषि उत्पादन को बेहतर बना सकता है। सही बैटरी का चयन और उसका उचित रखरखाव आधुनिक खेती को सफल और लाभकारी बनाने में अहम भूमिका निभाता है। **विभिन्न प्रकार के कृषि मशीनों में उपयोग होने वाली बैटरियाँ, उनकी क्षमता व जीवनकाल को तालिका-1 में दिया गया है।**

तालिका-1: विभिन्न प्रकार के कृषि मशीनों/यंत्रों/ गैजेट्स में उपयोग होने वाले बैटरियाँ, उनकी क्षमता व जीवनकाल

कृषि मशीनरी	बैटरी का प्रकार	वोल्टेज (V)	क्षमता (Ah)	जीवनकाल
इलेक्ट्रिक ट्रैक्टर	लिथियम-आयन (Li-Ion)	72V–96V	200–400 Ah	8–15 वर्ष
डीजल ट्रैक्टर	लीड-एसिड (SMF/ट्यूबलर)	12V	80–200 Ah	4-7 वर्ष
कृषि रोबोट	लिथियम-आयन (Li-Ion)	24V–48V	40–100 Ah	5-10 वर्ष
कृषि ड्रोन	लिथियम पॉलिमर (Li-Po)	14.8V–22.2V	10–25 Ah	2-5 वर्ष
बैटरी चालित स्प्रेयर	लीड-एसिड (AGM/Gel)	12V–24V	15–50 Ah	3-6 वर्ष
जीपीएस और सेंसर सिस्टम	लिथियम-आयन (Li-Ion)	3.7V–12V	5-15 Ah	5-10 वर्ष
सिंचाई प्रणाली	लीड-एसिड (Gel/AGM) या LiFePOy	12V–48V	100–300 Ah	3-10 वर्ष
सोलर-पावर्ड फेंसिंग	लिथियम आयरन फॉस्फेट (LiFePOy)	12V–24V	20–100 Ah	8-15 वर्ष

लेड-एसिड बैटरियों के उपयोग के तरीके: मशीन का उपयोग करने के बाद बैटरी पैक को हमेशा चार्ज करना चाहिए, चाहे उसका उपयोग कम समय के लिए ही क्यों न किया गया हो। यह बैटरी की कार्यक्षमता और जीवनकाल बनाए रखने का सबसे अच्छा तरीका है। यदि आपकी बैटरियाँ पानी से भरी होती हैं, तो यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि बैटरी के अंदर की प्लेटें पूरी तरह से आसुत जल से ढकी हों, लेकिन उन्हें अत्यधिक भरना नहीं चाहिए, क्योंकि चार्जिंग के दौरान इलेक्ट्रोलाइट फैल सकता है। इसके अलावा, बैटरी को कभी भी खुली हवा में संपर्क में आई प्लेटों के साथ चार्ज नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह खतरनाक हो सकता है। मशीन को हमेशा एक हवादार कमरे में रखें क्योंकि चार्जिंग के समय बैटरी गैस उत्सर्जित करती है, जो अत्यधिक ज्वलनशील होती है। चार्जिंग के लिए हमेशा उसी चार्जर का उपयोग करें जो मशीन के साथ आया हो, क्योंकि गलत चार्जर बैटरी को ओवरचार्ज या अंडरचार्ज कर सकता है। बैटरी को पूरी तरह से चार्ज होने देना चाहिए, क्योंकि अधूरी चार्जिंग से बैटरियों की क्षमता और उपयोगिता कम हो जाती है। पूरी तरह डिस्चार्ज हुई बैटरियों को 100% चार्ज करने में 16 घंटे तक का समय लग सकता है, इसलिए चार्जिंग प्रक्रिया को पूरा होने देना महत्वपूर्ण होता है।

लेड-एसिड बैटरियों के महत्वपूर्ण पहलू: मशीन की बैटरियां चार्ज करते समय, सही चार्जिंग उपकरण का उपयोग करना तथा ओवरचार्जिंग या अंडरचार्जिंग को रोकने के लिए निर्माता के चार्जिंग निर्देशों का पालन करना महत्वपूर्ण है।

1.अधिक चार्ज: बैटरी को ओवरचार्ज करने से वह गर्म हो सकती है और बैटरी खराब हो सकती है। जब बैटरी को ओवरचार्ज किया जाता है, तो यह गैसों को अधिक मात्रा में उत्पन्न करती है, जिससे इसके अंदर दबाव बढ़ जाता है। इस दबाव के कारण बैटरी फट सकती है और संभावित रूप से आस-पास के किसी भी व्यक्ति को नुकसान हो सकता है। इन खतरनाक स्थितियों को होने से रोकने हेतु अपनी बैटरी को ओवरचार्ज करने से बचना महत्वपूर्ण है।

2.कम चार्ज: मशीन की बैटरी को कम चार्ज करने से उसके समग्र जीवनकाल और प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। जब बैटरी को कम चार्ज किया जाता है, तो बैटरी के अंदर की प्लेटें समय के साथ खराब होने लगती हैं। लेड एसिड बैटरी को कम चार्ज करने से प्लेट सल्फेशन होता है, जिसके परिणामस्वरूप, बैटरी अंततः पूर्ण चार्ज रखने की अपनी क्षमता खो देगी और पहले की तरह कुशलता से काम नहीं करेगी। इसलिए, यह सुनिश्चित करना है कि आपकी मशीन की बैटरी हमेशा पूरी तरह से चार्ज हो, इसके प्रदर्शन को अनुकूलित करने और इसके जीवनकाल को बढ़ाने के लिए अनुशंसित है।

3.बैटरियों का लंबे समय तक भंडारण: बैटरी को सही तरीके से स्टोर करने से नुकसान से बचा जा सकता है और बैटरी का जीवन काल बढ़ सकता है। बैटरी को ठंडे और सूखे वातावरण में स्टोर करें और निष्क्रिय रहने पर नुकसान से बचने के लिए अनुशंसित सावधानियों का पालन करें। विशिष्ट स्टोरेज अनुशंसाओं के लिए निर्माता के निर्देशों की जाँच करें। बैटरी को गर्मी से दूर रखना सुनिश्चित करें। भंडारण के दौरान उनके प्रदर्शन को बनाए रखने के लिए हर 3 से 6 महीने में बैटरियों को पूरी तरह से चार्ज करें।

4.बैटरी रखरखाव: बैटरी टर्मिनलों और केबलों का नियमित निरीक्षण और सफाई बैटरी टर्मिनलों को जंग लगने से रोक सकती है और इष्टतम प्रदर्शन सुनिश्चित कर सकती है। बैटरी टर्मिनलों की सफाई एक प्रभावी कनेक्शन की गारंटी देती है और उन समस्याओं से बचाती है जो बैटरी के जीवन को कम कर सकती हैं।

5.तापमान नियंत्रण : तापमान से संबंधित समस्याओं को रोकने और बैटरी की लाइफ बढ़ाने के लिए बैटरी के लिए आदर्श ऑपरेटिंग तापमान बनाए रखें। अत्यधिक तापमान से बैटरी समय से पहले खराब हो सकती है, जबकि कम तापमान बैटरी के अंदर रासायनिक प्रतिक्रियाओं को बाधित कर सकता है, जिसके परिणामस्वरूप क्षमता में कमी आ सकती है।

लिथियम-आयन बैटरियों के उपयोग के तरीके: कृषि क्षेत्र में लिथियम आयन बैटरियों का उपयोग आधुनिक तकनीकों को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। ये बैटरियाँ बैटरी चालित स्प्रेयर, ड्रोन, सोलर सिंचाई प्रणाली, इलेक्ट्रिक ट्रैक्टर और ऊर्जा भंडारण उपकरणों में व्यापक रूप से उपयोग की जा रही हैं। इनकी ऊर्जा दक्षता, हल्के वजन और लंबी कार्यक्षमता के कारण किसान अब पारंपरिक डीज़ल या बिजली पर निर्भर रहने की बजाय पर्यावरण अनुकूल विकल्पों की ओर बढ़ रहे हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां बिजली की आपूर्ति सीमित होती है, वहां लिथियम आयन बैटरियाँ सौर ऊर्जा के साथ मिलकर खेती को आसान, सस्ती और टिकाऊ बना रही हैं।

लिथियम-आयन बैटरियों के महत्वपूर्ण पहलू

1.लिथियम बैटरियों को पॉवर पैक में रखें : पावर पैक में बैटरियों के लिए प्रोटेक्शन सर्किट होते हैं, जो ओवरचार्जिंग, ओवर-डिस्चार्जिंग और शॉर्ट सर्किट से बचाते हैं। यह बैटरी सेल्स को बैलेंस करने में मदद करता है, जिससे उनकी क्षमता लंबे समय तक बनी रहती है। साथ ही, पावर पैक बेहतर तापमान नियंत्रण प्रदान करता है, जिससे अत्यधिक गर्मी के कारण बैटरियों की क्षति को रोका जा सकता है। यह उच्च क्षमता और वोल्टेज प्रदान करने के लिए कई बैटरियों को जोड़ने की सुविधा देता है, जिससे ऊर्जा भंडारण और उपयोग अधिक प्रभावी होता है।

2.लिथियम बैटरियों में प्लग का उपयोग: चार्जर और बैटरी के बीच जोड़ने के लिए प्लग लगाने से शॉर्ट सर्किट से बचाव होता है। यह प्लग चार्जर और बैटरी के कनेक्शन को सुरक्षित बनाता है और ओवरकरंट या गलत वायरिंग के कारण होने वाली क्षति को रोकता है। इस प्लग के उपयोग से बिजली का प्रवाह नियंत्रित रहता है, जिससे बैटरी को स्थिर और सुरक्षित चार्जिंग मिलती है। साथ ही, यह प्लग चार्जर और बैटरी के बीच मजबूत कनेक्शन सुनिश्चित करता है, जिससे ढीले कनेक्शन या स्पार्किंग की संभावना कम हो जाती है।

3.सी-रेटिंग का पालन करें : C-रेटिंग बैटरी की चार्ज और डिस्चार्ज क्षमता को दर्शाती है। निर्माता द्वारा निर्धारित सी-रेटिंग के अनुसार बैटरी को चार्ज और डिस्चार्ज करने से उसकी उम्र और सुरक्षा सुनिश्चित होती है। अगर बैटरी को अत्यधिक करंट पर चार्ज किया जाए तो यह गर्म होकर खराब हो सकती है और क्षमता भी कम हो सकती है। इसलिए, बैटरी को दिए गए निर्देशों के अनुसार चार्ज करना आवश्यक है।

4.सही वोल्टेज पर चार्ज करें : बैटरी को 4.20V प्रति सेल की बजाय 4.10V प्रति सेल पर चार्ज करने से इसकी जीवन अवधि लगभग दोगुनी हो सकती है। उच्च वोल्टेज पर चार्ज करने से बैटरी की रासायनिक स्थिरता प्रभावित हो सकती है और इसके खराब होने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए, बैटरी को आदर्श वोल्टेज पर चार्ज करना बेहतर होता है।

5.तापमान नियंत्रण का ध्यान रखें :बैटरी को हमेशा 0°C से 35°C के बीच चार्ज और उपयोग करना चाहिए। बहुत अधिक तापमान पर बैटरी जल्दी गर्म हो सकती है, जिससे उसकी क्षमता कम हो जाती है और वह जल्द खराब हो सकती है। अत्यधिक ठंड में भी बैटरी का प्रदर्शन प्रभावित हो सकता है। इसलिए, इसे उपयुक्त तापमान पर रखना आवश्यक है।

6.तेज़ चार्जिंग से बचें : बैटरी को सुरक्षित रखने के लिए इसे एक सी (1C) या उससे कम करंट पर चार्ज करना चाहिए। तेज़ चार्जिंग बैटरी की आंतरिक संरचना पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है, जिससे इसकी क्षमता और जीवनकाल कम हो जाता है। धीमी चार्जिंग बैटरी को कम गर्म करती है और उसे लंबे समय तक उपयोग में बनाए रखती है।

7.लिथियम बैटरी को पूरी तरह डिस्चार्ज नहीं करना चाहिए : बैटरी को पूरी तरह से खत्म होने देने की बजाय, जब 20-30% चार्ज बचा हो तब चार्ज करें। इससे बैटरी के चार्ज साइकिल बढ़ते हैं और यह ज़्यादा समय तक चलेगी।

निष्कर्षः किसानों के लिए अपनी कृषि मशीनों के जीवनकाल को बढ़ाने के लिए, बैटरियों का उचित रखरखाव महत्वपूर्ण है। नियमित सफाई, उचित चार्जिंग, और सही भंडारण जैसी सरल, लेकिन महत्वपूर्ण, प्रक्रियाओं का पालन करके, किसान अपनी बैटरियों की उम्र बढ़ा सकते हैं और मशीन की समग्र दक्षता में सुधार कर सकते हैं।

परवल की वैज्ञानिक खेती

स्वागत रंजन बेहेरा, उमा पंत
अंजना सुरेश
सब्जी विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, (उत्तराखण्ड)

पूजा पलड़िया उद्यान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पंतनगर, उत्तराखण्ड

परवल दुनिया के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाई जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण कद्दूवर्गीय सब्जियों में से एक है। अन्य कद्दूवर्गीय सब्जियों की तुलना में अधिक पोषक तत्व होने के कारण परवल को "लौकी के राजा" कहा जाता है। परवल में प्रोटीन की मात्रा लौकी की तुलना में 10 गुना तथा चिचिण्डा, तुरई और सफेद पेठा की तुलना में 4 गुना है। यह कार्बोहाइड्रेट, विटामिन ए, विटामिन सी और खनिजों का अच्छा स्रोत है। अपरिपक्व फलों का उपयोग सब्जी, भजिया और अचार बनाने में किया जाता है। फलों को चीनी की चाशनी में डालकर बनाई जाने वाली मिठाई भारत में, मुख्यतः बिहार में, प्रसिद्ध है।

परवल वानस्पतिक रूप से प्रसारित (अलैंगिक), द्विलिंगी (प्रत्येक पौधा या तो नर या मादा सदस्य होता है) और बारहमासी कद्दूवर्गीय सब्जी है। यह फसल व्यापक रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, असम, ओड़िशा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात के कुछ हिस्सों तथा तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के कुछ पहाड़ी इलाकों में उगाई जाती है। यह सबसे पौष्टिक कद्दूवर्गीय सब्जियों में से एक है, जिसकी बरसात और गर्मी के मौसम में भारत के बाजार में बहुत अच्छा प्रतिष्ठा है। पौधा बेल की तरह बढ़ता है। बेलें मोटी आकार की, पेंसिल जैसी संरचना वाली होती हैं जिनमें अंडाकार, आयताकार, हृदयाकार, बिना खंड वाली, कठोर, गहरे हरे रंग की पत्तियाँ होती हैं। पौधे की प्रक्रियाओं को प्रबंधित करने के लिए लंबी नल (मूसला) जड़ प्रणाली से साथ-साथ जड़ें कंदयुक्त होती हैं। फल आम तौर पर हरे तथा 5-9 सें.मी. लम्बे होते हैं, जिनका उपयोग व्यावसायीक रूप से तरकारी तथा भजिया बनाने में किया जाता है। यह फल पकने पर गोलाकार व नारंगी-लाल रंग के हो जाते हैं।

जलवायु व मृदा

परवल गर्म और आर्द्र जलवायु में अच्छी तरह से पनपता है, लेकिन यह पाले और ठंड के प्रति संवेदनशील होता है। यह पानी के तनाव को झेल सकता है लेकिन जलभराव को नहीं। इसकी वृद्धि और विकास के लिए इष्टतम तापमान 25-30 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है, हालांकि, नए अंकुरों का पुनर्जनन आम तौर पर 20 डिग्री सेल्सियस से नीचे बाधित होता है और अत्यधिक ठंड (5 डिग्री सेल्सियस से नीचे) फसल के लिए हानिकारक होती है। अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट से दोमट मिट्टी अच्छी गुणवत्ता वाले फलों के उत्पादन के लिए आदर्श है। भारी चिकनी मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है।

Qyk l ynh gb cy

उन्नत किस्में

* राजेंद्र परवल-1 फल लंबे, हरे, सफेद धारियों वाले और दोनों सिरों पर पतले होते हैं। फल का औसत वजन 40 ग्राम और उपज क्षमता 17.5-19.0 टन प्रति हेक्टेयर है। इसकी लंबी दूरी की परिवहन गुणवत्ता अच्छी है और यह फल मक्खी के प्रति सहनशील है। इसे राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, समस्तीपुर द्वारा विकसित किया गया है।

* राजेंद्र परवल-2 फल ढोल के आकार के, सफेद-हरे रंग के, बहुत हल्की धारियों वाले और मुलायम होते हैं। फल का औसत वजन 30 ग्राम और उपज क्षमता 16-18 टन प्रति हे. है। यह बेल सड़न के साथ-साथ फल मक्खी के प्रति भी सहनशील है।

* फैजाबाद परवल-1 फल आकर्षक, गोलाकार और हरे रंग के होते हैं। औसत उपज 15-17 टन प्रति हेक्टेयर है। इस किस्म को आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा विकसित किया गया है और इसे उत्तर प्रदेश तथा आसपास के बिहार के हिस्सों में व्यावसायिक खेती के लिए अनुशंसित किया गया है।

* फैजाबाद परवल-3 इसके फल धुरी के आकार के, हरे और कम धारीदार होते हैं, और पाक प्रयोजन के लिए उत्कृष्ट होते हैं। इसकी औसत उपज 12-15 टन प्रति हेक्टेयर है और यह पूर्वी तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में खेती के लिए उपयुक्त है।

* फैजाबाद परवल-4 फल हल्के हरे रंग के, धुरी के आकार के और पतले सिरे वाले होते हैं। यह पुनः प्राप्त सोडिक मिट्टी के साथ-साथ बोवर प्रणाली (पंडाल पद्धति) की खेती के लिए अनुशंसित है।

* स्वर्ण रेखा यह तेजी से बढ़ने वाली तथा अधिक उपज देने वाली किस्म है। फल हरे-सफेद, धारीदार, 8-10 सें.मी. लंबे और दोनों सिरों पर पतले होते हैं। वर्टिकल बोवर प्रणाली (पंडाल पद्धति) पर इसकी औसत उपज 20-23 टन प्रति हेक्टेयर है। इसे ओड़िशा के मैदानी इलाकों, बिहार के पठारी क्षेत्र, बिहार और उत्तर प्रदेश के दियारा भूमि तथा मैदानी इलाकों और तेलंगाना में व्यावसायिक खेती के लिए अनुशंसित किया गया है। इसे बागवानी और कृषि वानिकी अनुसंधान कार्यक्रम, रांची में क्लोनल चयन के माध्यम से विकसित किया गया है।

* स्वर्ण अलौकिक यह एक अधिक उपज देने वाली किस्म है जो कुंद सिरे वाले हल्के हरे रंग के फल पैदा करती है। फल 5-8 सें.मी. लंबे, ठोस, पतले छिलके वाले होते हैं और सब्जी के साथ-साथ मिठाई बनाने के लिए भी अच्छे होते हैं। वर्टिकल (ऊर्ध्वाधर) स्टेकिंग पर इसकी औसत उपज 23-28 टन प्रति हेक्टेयर है। इसकी अनुशंसा बिहार के ऊंचे और पठारी क्षेत्रों, बिहार और उत्तर प्रदेश के गंगा किनारे की दियारा भूमि तथा ओड़िशा, पश्चिम बंगाल और तेलंगाना के मैदानी इलाकों के लिए की जाती है। इसे बागवानी और कृषि वानिकी अनुसंधान कार्यक्रम, रांची में क्लोनल चयन के माध्यम से विकसित किया गया है।

* काशी सुफल फल आकर्षक, हल्के हरे रंग के, हल्के धारीदार, नरम बीज के साथ मांसल, बेहतर गुणवत्ता रखने वाले और पाक प्रयोजनों के साथ-साथ मिठाई बनाने के लिए उपयुक्त हैं। पौधे में फल लम्बे समय तक बने रहते हैं। इसकी औसत उपज 18-20 टन प्रति हेक्टेयर है और यह किस्म उत्तर प्रदेश में खेती के लिए अनुशंसित है।

* काशी अमूल्य फल अधिक गूदेदार तथा कम वितरित सफेद धारियों के साथ आकर्षक हल्के हरे रंग के होते हैं और मिष्ठान्न प्रयोजन के लिए उपयुक्त हैं। इनमें बीज कम होते हैं (सामान्य किस्मों में 25-30 बीजों की तुलना में प्रति फल 5-8 बीज)। इसकी औसत उपज 20-22 टन प्रति हेक्टेयर है और यह किस्म उत्तर प्रदेश में खेती के लिए अनुशंसित है।

* सी.एच.ई.एस. संकर-1 यह देश में विकसित परवल की पहली किस्म है। फल बहुत आकर्षक, बड़े आकार और गहरे हरे रंग की धारियों वाले होते हैं। इसकी औसत उपज 28-30 टन प्रति हेक्टेयर है और यह फल मक्खी के संक्रमण के प्रति प्रतिरोधी है। इसे बिहार, उत्तर प्रदेश, ओड़िशा, पश्चिम बंगाल और असम के कुछ हिस्सों के ऊपरी इलाकों में अपनाया जाता है।

प्रवर्धन या प्रसारण

परवल का प्रवर्धन बेल की कलमों और कंदयुक्त जड़ों की कलमों के माध्यम से किया जाता है। बीज की खराब व्यवहार्यता व अंकुरण, लगभग 50 प्रतिशत नर पौधों का उत्पादन तथा देर से फूल आने के कारण परवल में बीज के माध्यम से प्रवर्धन अवांछनीय है। अधिकतर, एक साल पुराने पौधों से 8-10 गांठों वाली लगभग 60 सें.मी. से 1 मीटर लंबी और आधे से.मी. मोटाई (पेंसिल के आकार की) बेल की कलम अक्टूबर में ली जाती है, जब फल लगना लगभग समाप्त हो जाता है, और एक अंगूठी के आकार में लपेट दिया जाता है। फिर इन कलमों को रूटिंग हार्मोन से उपचारित किया जाता है और जमीन में सड़ी हुई गोबर की खाद तथा मिट्टी के बराबर अनुपात मिलकार भरे हुए गड्ढों में लगाया जाता है। वैकल्पिक रूप से, जड़ों को बढ़ावा देने के लिए उन्हें मिट्टी, रेत और अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद के समान अनुपात से भरे पॉलीबैग (पॉलीथीन के थैलों) में डाला जा सकता है। हजारा की सहायता से कम मात्रा में पानी लगाया जाता है और पॉलीबैग को छाया में या पॉलीहाउस में रखा जाता है। समय से सिंचाई तथा देखभाल करते रहने से लगाने के लगभग 10-12 दिनों के बाद अंकुरण देखा जा सकता है। इन कलमों को 2 महीने के बाद मुख्य खेत में प्रत्यारोपित किया जा सकता है। इस विधि से एक ही स्थान पर एक ही किस्म के बड़ी

संख्या में पौधे तैयार होते हैं। परिपक्व लताओं से ली गई 8-10 सें.मी. लंबी और पेंसिल मोटाई की कंदयुक्त जड़ों को मुख्य खेत में टीलों पर भी लगाया जा सकता है तथा नये अंकुर आने तक उन्हें आवश्यकतानुसार पानी देते रहना चाहिए।

भूमि की तैयारी

पारंपरिक तरीके से 1.25 मीटर चौड़ाई और सुविधाजनक लंबाई के साथ 15-20 सें.मी. ऊंचे क्यारियां तैयार किए जाते हैं। दो क्यारियों के बीच 50-60 सें.मी. की दूरी बनाए रखी जाती है जो सिंचाई व जल निकासी नाली के रूप में काम करती है। ऊँची क्यारी विधि में दोनों तरफ 1 मीटर की दूरी पर तथा पंडाल पद्धति में बीच में 75 सें.मी. की दूरी पर टीले तैयार किए जाते हैं।

बुआई का समय व विधि

उपनल भूमि की स्थिति में अगेती रोपण (अगस्त के अंत से सितंबर के मध्य तक) किया जा सकता है, लेकिन मध्यम भूमि की स्थिति में यह फायदेमंद नहीं है क्योंकि भारी वर्षा के कारण कलमों की स्थापना में बाधा आती है। इसी प्रकार, सर्दियों की शुरुआत के बाद कलमों के रोपण से उनके अंकुरण और स्थापना में देरी होती है। उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में परवल की रोपाई का आदर्श समय अक्टूबर के पहले सप्ताह से दूसरे सप्ताह तक है तथा दियारा भूमि में अक्टूबर के अंत से नवंबर तक है। उत्तर प्रदेश और बिहार की दियारा भूमि में कठोर सर्दियों (नवंबर से फरवरी) के दौरान परवल की फसल को आवश्यक सिंचाई के साथ नदी के किनारे की रेत में जड़ वाले कलमों को रोपकर लगाया जा सकता है।

पंडाल पद्धति में 1 हेक्टेयर क्षेत्र में परवल की फसल उगाने के लिए 2 मीटर (पंक्तियों के बीच) और 75 सें.मी. (पौधों के बीच) की दूरी के साथ लगभग 7,000 कलमों की आवश्यकता होती है, जबकि ऊंची क्यारियों में 1 मीटर (पंक्तियों के बीच) और 60 सें.मी. (पौधों के बीच) की दूरी के साथ 16,500-17,000 कलमों की आवश्यकता होती है। नदी के किनारे की खेती के तहत 1 हेक्टेयर में 2 मीटर (पंक्तियों के बीच) और 2 मीटर (पौधों के बीच) की दूरी के साथ एक स्वस्थ फसल उगाने के लिए लगभग 2,500-3,000 कलमों की आवश्यकता होती है।

खाद एवं उर्वरक

टीले तैयार करते समय 20-25 टन प्रति हेक्टेयर की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद डालनी चाहिए। अगेती रोपण (सितंबर-अक्टूबर) में प्रति हेक्टेयर 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फेट और 40 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है। एक तिहाई नाइट्रोजन को पूर्ण फॉस्फेटिक और पोटाश उर्वरकों तथा सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ बेसल खुराक के रूप में दिया जाना चाहिए और शेष नाइट्रोजन को दो विभाजित खुराकों मेंदूरोपण के 90-100 दिन बाद और बाकी को एक महीने बाददूखड़ी फसल में दिया जाना चाहिए। शीतकालीन धान की कटाई के बाद देर से रोपण (दिसंबर) में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फेटिक और पोटाश उर्वरकों की पूरी खुराक को बेसल के रूप में दिया जाना चाहिए और शेष आधी नाइट्रोजन को रोपण के 110-120 दिन बाद दिया जाना चाहिए।

ijoy d Qyk d vkdkj vkj jx e fHkUurk

सिंचाई

मिट्टीपॉलीथीन के थैलों में बेल और कंदयुक्त मूल की कलमों को रोपने के बाद सिंचाई प्रदान करना बेहद महत्वपूर्ण है। गर्मियों में 8-10 दिनों के अंतराल पर तथा सर्दियों में 25-30 दिनों के अंतराल पर खेत की सिंचाई करें। बरसात के मौसम में आमतौर पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। सिंचाई का पानी केवल जड़ क्षेत्र तक ही सीमित रखना चाहिए क्योंकि बेलों, पत्तियों और विकसित हो रहे फलों का बार-बार गीला होना बेलों और फलों में सड़न रोग को बढ़ावा देता है।

परागण प्रबंधन

परागण की कमी के कारण परवल में फल का अविकसित होना एक आम समस्या है। खेत में अधिकतम फल लगने के लिए 10 प्रतिशत नर पौधों की संख्या पर्याप्त होती है। परागणकर्ताओं की आबादी की कमी, कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग तथा पर्यावरण प्रदूषण के कारण मादा फूलों में हाथ से परागण आजकल व्यापक रूप से किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक परागण की तुलना में फलों के लगने में 2.5 गुना वृद्धि होती है। हाथ परागण अधिमानतः सुबह 5:30 बजे तक पूरा हो जाना चाहिए। एक नर फूल के परागकण 4-5 मादा फूलों को प्रभावी ढंग से परागित करने के लिए पर्याप्त होते हैं। बरसात के मौसम में नर फूलों को दोपहर में तोड़ लिया जाता है और उन्हें रात भर पानी में रखा जाता है। मादा फूलों का परागण सुबह के समय होता है जब मौसम अनुकूल होता है।

सधाई व छंटाई

परवल की बेलों को बांस और तारों से बनी 1 मीटर ऊंचाई की मचान या जाली या बोवर (पंडाल पद्धति) पर चढ़ाकर उगाया जा सकता है। यह प्रणाली जमीन पर चढ़ाने की तुलना में प्रभावी परागण, फलों के लगने में वृद्धि, फलों की गुणवत्ता में सुधार तथा उनकी लंबे समय तक उपलब्धता, कीटों की कम आक्रमण और उपज में वृद्धि की सुविधा प्रदान करती है। पेड़ी की फसल में बेलों की छंटाई से फल की पैदावार बढ़ाने में मदद मिलती है। सर्दी (अक्टूबर-नवंबर) शुरू होने से पहले बेलों को जमीन से 15-30 सें.मी. छोड़कर काट देना चाहिए और उसके बाद उर्वरक डालना चाहिए।

प्रमुख कीट व रोग

फल मक्खी

यह परवल का सबसे गंभीर तथा विनाशकारी कीट है। अंडे सेने पर कीड़े फलों के अंदर भोजन करते हैं। संक्रमित फलों को रालयुक्त तरल की उपस्थिति से पहचाना जा सकता है जो अंडे देने के लिए मक्खियों द्वारा बनाए गए छिद्रों से निकलता है। सूक्ष्मजीवों के द्वितीयक संक्रमण के कारण फल सड़ने लगते हैं। यह कीट फरवरी से अक्टूबर तक सक्रिय रहता है, किन्तु वर्षाकाल में इसका प्रकोप अधिक हो जाता है। किसानों को फल मक्खी के प्रबंधन के लिए सर्वप्रथम सड़े हुए या गिरे हुए या इससे ग्रसित फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। बेलों के आसपास अच्छी तरह से निराई-गुड़ाई करनी चाहिए और खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए। कद्दूवर्गीय सब्जियों के चारों तरफ मक्का की फसल लगानी चाहिए। इमिडाक्लोप्रिड कीटनाशक की 50 मि.ली. मात्रा को आधा कि.ग्रा. गुड़ एवं 50 लीटर पानी के साथ घोलकर छिड़काव करें या कार्बेरिल घुलनशील चूर्ण 50 प्रतिशत की एक कि.ग्रा. मात्रा का प्रति हेक्टेयर की दर से फसल पर छिड़काव करें।

रूट नॉट नेमाटोड (सूत्रकृमि)

यह जड़ों पर प्रचुर मात्रा में गाठें बनाता है, जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण जड़ प्रणाली विकृत हो जाती है और पौधे के अंदर भोजन तथा पानी की आपूर्ति सीमित हो जाती है। गंभीर मामलों में विकास रुक जाता है और मृदा जनित रोगजनकों के द्वितीयक हमले से पौधा मर जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पूरी फसल बर्बाद हो जाती है। कटाई पूरी होते ही फसल की जड़ों को हटाने तथा उसके बाद दो से तीन बार मिट्टी की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करने से सूत्रकृमि की आबादी को कम किया जा सकता है। कार्बोफ्यूरान 3जी का 33 कि.ग्रा. मात्रा का प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में प्रयोग संतोषजनक नियंत्रण देता है। इसी प्रकार, बेलों को 0.1 प्रतिशत कार्बोफ्यूरान में डुबोना भी अंकुरण बढ़ाने तथा सूत्रकृमि की आबादी को दबाने में उपयोगी है।

बेल व फल सड़न

यह रोग अधिकतर बरसात के मौसम में देखा जाता है, खासकर जब पानी जमा हो जाता है। कोमल टहनियों, पत्तियों और फलों पर सफेद रुई जैसी वृद्धि दिखाई देती है।

डाउनी मिल्ड्यू (कोमल फफूंदी)

यह रोग उच्च आर्द्रता में प्रचलित है, खासकर जब गर्मियों में बारिश नियमित रूप से होती है। पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले, कम या ज्यादा कोणीय धब्बे दिखाई देते हैं, जबकि इन धब्बों के निचले सतह पर बैंगनी रंग की कोमल वृद्धि दिखाई देती है। यह रोग तेजी से फैलता है, अंततः पत्ते झड़ने के कारण पौधा नष्ट हो जाता है। यह रोग को डाइथेन एम 45 (0.2 प्रतिशत) या डेकोनिल या डिफोलटन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव से प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। एक छिड़काव से 9 दिन तक सुरक्षा मिलती है। संक्रमित पौधे के हिस्सों को हटाकर नष्ट कर देना चाहिए।

फल की तुड़ाई एवं उपज

तुड़ाई आमतौर पर रोपण के 90-120 दिन बाद शुरू होती है। सामान्यतः फल लगने के 15-18 दिन बाद फल विपणन योग्य परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं। समय पर तुड़ाई नहीं करने पर फल सख्त हो जाते हैं तथा उन में परिपक्व बीज बनने लगते हैं। परवल की उपज किस्म, रोपण के समय, फसल प्रबंधन, मचान या जाली पर चढ़ाने तथा परागण प्रबंधन के आधार पर भिन्न-भिन्न होती है, हालांकि इसकी औसत उपज 10-35 टन प्रति हेक्टेयर के बीच होती है। फल की पैदावार दूसरे वर्ष के बाद बढ़ती है और चौथे वर्ष के बाद कम हो जाती है।

मध्य भारत कृषक भारती

रत्नों कि नगरी रतलाम में होने जा रहा है....

मध्यभारत का सबसे बड़ा

कृषि मेला

MADHYA BHARAT **Agri Expo**

- स्थान: अंबेडकर ग्राउन्ड, रतलाम
- दिनांक: 25-26-27 अक्टूबर 2025

कृषि मेले के मुख्य आकर्षण

- कृषि यंत्रों कि प्रदर्शनी, कृषि ड्रोन।
- मिनी, बड़े ट्रैक्टर ओर इलेक्ट्रिक ट्रैक्टर।
- कंबाइन हार्वेस्टर, रीपर।
- रोटावेटर, सुपर सीडर।
- ड्रिप इरीगेशन,मोटर पम्प,एवं सिंचाई के साधन।
- कीटनाशक एवं उर्वरक, बायो खाद।
- पोली पोंड, ग्रीनहाउस आदि।
- जैविक उत्पादों की खरीदी बिक्री।
- जैविक अनाज,सब्जी,तेल,गुड़।
- नर्सरी एवं फलों के पौधे।
- मिट्टी परीक्षण लेब।
- फूड प्रोसेसिंग एवं लघु उद्योग।
- पशुआहार, डेयरी उत्पाद एवं डेयरी यंत्र।
- जैविक खेती प्रशिक्षण एवं निशुल्क वर्कशॉप।
- राज्य एवं केंद्र सरकार द्वारा कृषि कल्याणकारी योजनाओं की संपूर्ण जानकारी।

Contact Us: +91 7771020371,7771020354
Email: madhyabharatagriexpo@gmail.com

STALL NUMBER B-07

नाबार्ड एवं कृषि यंत्र सब्सिडी योजना	सभी प्रकार की मशीनों का लाइव डेमो
युवाओं के लिए रोजगार एवं डीलरशिप के अवसर	जैविक खेती एवं गौ-उत्पाद प्रशिक्षण एवं निशुल्क वर्कशॉप

ORGANISERS
Balaji Event & Exhibition

Media Partner

अक्टूबर-2025

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

KRUSHIPARV

INTERNATIONAL AGRICULTURE EXHIBITION AND CONFERENCE

26 - 29 December 2025

India's Premier International Agriculture Exhibition And Conference

Nemane Estate, Kedgaon Rd, Ahilya Nagar, Maharashtra - 414005, India.

Soil to Soul : India's Green Power

BE there BE seen

Scan Me

Organised By	Knowledge Partner	Media Partner	Associate Partner
EXPO INDIAN OCEAN PVT LTD ONE STEP FOR BUSINESS	TAURAN ADVISORS	GrowInAgri	

www.krushiparva.org

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना,ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)